# वीर सेवा मन्दिर
## दिल्ली

★

क्रम संख्या

काल नं०

खण्ड

Kushala Astrological Research Institute

SERIES NO I.

# TRAILOKYA PRAKASHA

OF

## Shri Hemaprabha Suri

**The Disciple of Shri Devendra Suri**

EDITED

*From manuscripts in Jain and Nagari characters, with Hindi commentary*

BY

Ram Sarup Sharma

Director, Kushala Astrological Research Institute
Model Town LAHORE.

*And with English Foreword*

BY

**Dr. Banarsi Das Jain, M.A., Ph.D., (London).**
Reader in Hindi, University Oriental College,
Lahore.

*First Edition* 1946 *500 Copies*

श्रीदेवेन्द्रसूरिशिष्यश्रीहेमप्रभसूरिविरचितः

# त्रैलोक्यप्रकाशः

स च

जैनदेवनागरीलिपिलिखितानि पत्रादर्शपुस्तकानि
पर्यालोच्य पाञ्चनदप्रान्तस्थलवपुरोपकण्ठ-
वर्तिमाडलटाऊनवसत्यन्तर्गत-

**श्रीकुशलअस्ट्रालोजीकलरिसर्चइन्स्टीच्यूट**

इत्याख्यस्य अनुसन्धानकार्यालयस्य

अध्यक्षेण

**ज्योतिर्विद्याविशारदेन**

**आचार्यश्रीरामस्वरूपशर्मणा**

परिष्कृत्य
नानार्थावगाहिन्या भूमिकया हिन्दीव्याख्यया च
सह सम्पादितः

तस्येदं प्रथमं संस्करणम्   १९५४   ५०० प्रतयः

प्रकाशक:-लाला जीवनदत्त अध्यक्ष इण्डियन हऊस, गणपत रोड, लाहौर।
मुद्रक:—लाला जीवनदत्त इण्डियन नेशनल प्रेस, गणपत रोड, लाहौर।
इस पुस्तक का कागज़, मैसर्ज़ रामलाल कपूर ऐण्ड सन्ज़ से कण्ट्रोल रेट पर प्राप्त किया।

*Dedicated*

TO

Shri Shri 108 Shri Mahant GIRDHARI DASS JI
*E. M. L. A.*,
BHUMAN SHAH, (Distt. Montgomery)

# समर्पणम्

जनताजनितानन्दो
गुणगणकन्दो वदान्यमूर्धन्यः ।
विलसति बी. ए. विरुदो
गिरिधारीदाससन्महन्तोऽयम् ॥ १ ॥

मुम्मनशाहस्थाना-
ध्यक्षो नियतेन्द्रियैकविख्यातः ।
एम्. एल. ए. श्रिम्चितः
सद्गुणभरितशिवरं जयतु ॥ २ ॥

तस्योत्साहशतानां
कृतज्ञतापाशसन्नद्धः ।
रामस्वरूपशर्मा
समर्पयत्येतमुपहारम् ॥ ३ ॥

उज्ज्वलकोमलप्रकृतिः
कृती मनस्वी शरण्यमूर्धन्यः ।
विविधोपकारयूपो
विलसति लक्ष्मणस्वरूपोऽयम् ॥ १ ॥
प्राच्यप्रतीच्यविद्या-
नन्दननिष्कुटविहारिविबुधेन्द्रः ।
प्राच्यमहाविद्यालय-
सकलाध्यक्षः शतं समा जयतु ॥ २ ॥

Dr. LAKSHMAN SARUP,
*M.A., D.Phil., (Oxon),*
OFFICIER D'ACADEMIE (FRANCE)
*Principal,*
ORIENTAL COLLEGE, LAHORE
Who performed the opening Ceremony of the
Kushal Astrological Institute,
LAHORE.

ॐ श्रीगणेशाय नमः

# विषय-सूची


| विषय | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १ | मंगलाचरण | १ |
| २ | लग्नप्रशंसा | २-६ |
| ३ | लग्नाश्रितषड्वर्गशुद्धिप्रशंसा | ७ |
| ४ | लग्नप्रयोजन | ८ |
| ५ | ग्रन्थनामप्रयोजन | ६-१० |
| ६ | सौम्य-क्रूर ग्रह नाम | ११ |
| ७ | बुध—इन्दु का पाप ग्रह के साथ पड़ने का फल तथा स्त्री पुरुष संज्ञा | १२ |
| ८ | ग्रहों की अवस्था | १३ |
| ६ | स्त्रीग्रह निश्चय होने पर ग्रहों का अवस्थाविशेष | १४-१६ |
| १० | ग्रह बल में मार नाम वर्णन | १७-१८ |
| ११ | ग्रहों की जलचरादि संज्ञा | १६ |
| १२ | ग्रहों की प्रातः कालादि संज्ञा | २० |
| १३ | ,, दृष्टिसंज्ञा | २१ |
| १४ | ,, प्रकृतिसंज्ञा | २२ |
| १६ | ,, रससंज्ञा | २३ |
| १७ | ,, न्यूनाधिकबलसंज्ञा | २४ |
| १८ | ,, द्विपदादिसंज्ञा | २५ |
| १६ | ,, विप्रादिवर्णसंज्ञा | २६ |
| २० | ,, राजा आदिसंज्ञा | २७ |
| २१ | ,, आकृतिसंज्ञा | २८ |
| २२ | ,, रक्तादिवर्णसंज्ञा | २६ |
| २३ | ,, ह्रस्वादिसंज्ञा | ३० |
| २४ | ,, मर्त्यलोकादिसंज्ञा | ३१ |
| २५ | ,, सुवर्णादि धातु संज्ञा | ३२-३३ |
| २६ | ,, जलादिस्थानसंज्ञा | ३४-३५ |

| | | |
|---|---|---|
| २७ | भौम स्वामी वस्तुएं | ३६ |
| २८ | शनि स्वामी ,, | ३७ |
| २९ | बुध-शुक्र ,, ,, | ३८ |
| ३० | सूर्य-चन्द्र-बुध ,, ,, | ३९ |
| ३१ | गुरु ,, ,, | ४० |
| ३२ | जीवचिन्तानिश्चय होने पर जीवचिन्तासंज्ञा | ४१-४२ |
| ३३ | जीवादिचिन्तन में विशेष दृढता | ४३ |
| ३४ | भाव दौर्बल्य विचार | ४४ |
| ३५ | जीवादि चिन्तन में रागादि विशेष विचार | ४५ |
| ३६ | ग्रहों का दशाज्ञानविचार | ४६ |
| ३७ | ग्रहों के स्वामी | ४७ |
| ३८ | मांस आदि के स्वामी | ४८ |
| ३९ | ज्ञान आदि के स्वामी | ४९ |
| ४० | ग्रहों की नीरसादिसंज्ञा | ५० |
| ४१ | ग्रहों का छः बल विचार | ५१ |
| ४२ | ,, स्थिति वश से बलविचार | ५२-५५ |
| ४३ | ,, दिन रात्रि बल विचार | ५६ |
| ४४ | ,, तिथिसम्बन्ध से बलविचार | ५७ |
| ४५ | ,, प्रत्येक चार घंटे के बाद बलविचार | ५८ |
| ४६ | ,, वर्षादिबलविचार | ५९ |
| ४७ | ,, दृष्टिविचार | ६० |
| ४८ | ,, वक्री मार्गी आदि फल विचार | ६१ |
| ४९ | ,, दशाओं का विशेष बल | ६२ |
| ५० | ,, नीचादि में स्थित होने से अशुभ | ६३-६४ |
| ५१ | ,, दीप्तादि अवस्था विचार | ६५-६६ |
| ५२ | ,, मैत्री-शत्रु विचार | ६७-६८ |
| ५३ | राहु का उच्चनीचादिकथन | ६९ |
| ५४ | मेषादि-संज्ञा विचार | ७०-७६ |
| ५५ | षड् वर्गनाम | ८६ |
| ५६ | राशिस्वामी | ९० |
| ५७ | होराविचार | ९१ |
| ५८ | द्रेष्काण तथा नवांशविचार | ९२ |

| | | |
|---|---|---|
| ५६ | त्रिशांशविचार | ६३ |
| ६० | भावसंज्ञा | ६४ |
| ६१ | भावपर्याय | ६५-६८ |
| ६२ | केन्द्रादिसंज्ञा | ६६-१०० |
| ६३ | राशियों का दिनरात्रिबल | १०१ |
| ६४ | ग्रहों का उच्चनीच राशि-अंशवर्णन | १०२-१०३ |
| ६५ | भावराशिग्रहबलविचार | १०४-११० |
| | इति लग्नज्ञानम् | |
| १ | चन्द्रबुधयोगविशेषफल | |
| | धनी होने का योग | १११-११२ |
| २ | सुख तथा धन योग | ११३ |
| ३ | पुत्रोत्पत्ति होने पर धन योग | ११४-११५ |
| ४ | शत्रुरोगभय | ११६ |
| ५ | स्त्रीप्रभुत्वयोग | ११७ |
| ६ | २२ वें वर्ष के तीसरे अंश में योग | ११८ |
| ७ | धनयोग | ११६ |
| ८ | राज्यप्राप्तियोग | १२० |
| ६ | प्रश्न काल में शत्रु मित्र गृह में स्थितिफल | १२१ |
| १० | अधिकधनलाभयोग | १२२ |
| ११ | राजा से धनव्यययोग | १२३ |
| | नवांश के अभिप्राय से कथन | |
| १२ | धन नवांश में चन्द्रफल | १२४ |
| १३ | चतुर्थ ,, ,, ,, | १२५ |
| १४ | सुत ,, ,, ,, | १२६ |
| १५ | रिपु ,, ,, ,, | १२७ |
| १६ | भार्यांश में चन्द्र फल | १२८ |
| १७ | मृत्यु अंश में ,, ,, | १२६ |
| १८ | पुण्यस्थानांश में ,, | १३० |
| १६ | ,, ,, ,, ,, | १३१ |
| २० | भार्यांश में ,, ,, | १३२ |
| २१ | लाभांश में ,, ,, | १३३ |
| २२ | व्ययांश में ,, ,, | १३४ |
| २३ | जन्मकुण्डली स्थित शुभ पाप ग्रह स्थितिफल | १३५ |

| | | |
|---|---|---|
| | जन्मलग्न से धन प्राप्ति वर्षविचार | १३६ |
| २५ | ,, ,, अशुभ फल प्राप्ति ,, | १३७ |
| २६ | ,, ,, मिश्र ,, ,, ,, | १३८ |
| २७ | ,, ,, ग्रहदशाफलक्रम | १३९ |
| २८ | कार्यसिद्धियोग | १४०-१४१ |
| २९ | पादयोग-अर्द्धयोग | १४२ |
| ३० | न्यूनयोग | १४३ |
| ३१ | पूर्णयोग | १४४ |
| ३२ | कार्य साधन में योग चतुष्टय | १४५-१४९ |
| ३३ | विविध योग ग्रह फलतारतम्य कथन | १५०-१५९ |
| | राजयोग | |
| ३४ | भावों की श्रेष्ठता | १६१-१६२ |
| ३५ | राजयोग | १६३-१६९ |
| ३६ | कोटिपतियोग | १७० से १७७ |
| ३७ | द्वादश भावों से फलविचार | १७८-१९१ |
| ३८ | शुभ फल प्रार्थना मंगलाचरण | १९२ |
| ३९ | शुभनक्षत्र | १९३ |
| ४० | अशुभ नक्षत्र | १९४ |
| ४१ | मध्यम नक्षत्र | १९५ |
| ४२ | शुभक्रूरवारकथन | १९६ |
| ४३ | नन्दादितिथियोग | १९७ |
| ४४ | राजयोग | १९८ |
| ४५ | वर्षादि तथा दिवसादि जन्मफल | १९९ |
| ४६ | मध्यरात्रिजन्मफल | २०० |
| ४७ | विजययोगफल | २०१ |
| ४८ | वर्षान्त तथा दिनान्त जन्मफल | २०२ |
| ४९ | मास में जन्मफल | २०३ |
| ५० | शनि बुधवार फल | २०४ |
| ५१ | कन्या की रविवारोत्पत्ति में विशेषफल | २०५ |
| ५२ | रविवारफल | २०६ |
| ५३ | शुक्रवार ,, | २०७ |
| ५४ | गुरु वार ,, | २०८ |
| ५५ | उत्तम मध्यम अधम फल | २०९ |

| | | |
|---|---|---|
| ५६ | गौरवर्ण प्रश्नकर्ता के उत्तर में विचार | २१० |
| ५७ | कृष्ण " " " " " | २११ |
| ५८ | घातप्रघात गात्र " " | २१२ |
| ५६ | छिन्नभिन्न " " " " | २१३ |
| ६० | पृष्टोदयादिलग्नफल | २१४ |
| ६१ | भीत तथा रोगी गात्र " " | २१५ |
| ६२ | अभीष्ट सिद्धि योग फल | २१६ |
| ६३ | अभ्युदय काल कथन | २१७-२२२ |
| ६४ | सिंह लग्न में विशेष फल कथन | २२४ |
| ६५ | भाव के शुभाशुभ फल कथन का प्रकार | २२५ |
| ६६ | केन्द्र नामगुणवर्णन | २२६ |
| ६७ | भावों के दक्षिण—उत्तर संज्ञा वर्णन | |
| ६८ | " फलकथन | २२७-२३२ |
| ६६ | कौन वर्ष हमारे लिये शुभ है इस प्रश्न में फलकथन | २३३-२४० |
| ७० | भावफलकथन | २४१ |
| ७१ | भावों की अवस्था का वर्णन तथा पुरुष की अवस्था का फल | २४२-२५४ |
| ७२ | शास्त्र प्रशंसा तथा आत्मप्रशंसा | २५५ |


## चतुर्थभाव में निधानप्रकरण


| | | |
|---|---|---|
| १ | सम्पत्तिलाभयोग | २५६-२५८ |
| २ | पूर्वजों की सम्पत्ति का योग | २५६ |
| ३ | " अन्य प्रकार से सम्पत्ति प्राप्ति | २६०-२६८ |
| ४ | गृहभागस्थितिवश से सम्पत्तिफल | २६६-२७४ |
| ५ | दृष्टिवश से ऊपर नीचे निधि | २७५—२७७ |
| ६ | कितने बार खोदने से निधि मिले | २७८ |
| ७ | निधि का विशेष स्थान निर्णय | २७६—२८० |
| ८ | भूमि में कितनी दूरी पर निधि है | २८१—२८२ |
| ६ | निधि की वस्तु का निर्णय | २८३—२८५ |
| १० | निधि मकान के अन्दर है कि बाहर | २८६ |
| ११ | राशियों की बाह्य आभ्यन्तर संज्ञा | २८७ |
| १२ | गृहमध्य में निधिस्थितियोग | २८८ |
| १३ | निधि किस दिशा में है ? | २८६—२६१ |

| | | |
|---|---|---|
| १४ | अङ्कसंख्यानिधियोग | २६२ |
| १५ | पुरुषशीश की निधि का योग | २६३ |
| १६ | कितने पात्रों में निधि है ? | २६४ |
| १७ | पात्र किस धातु से बने हैं | २६५ |
| १८ | किस भाग में निधि है ? | २६६ |
| १९ | निधिस्थान का चक्रनिर्माण | २६६ |
| २० | प्रकारान्तर से दशाज्ञान | २६८ |
| २१ | ग्रन्थप्रशंसा | २६६ |


## चतुर्थभाव में भोजनप्रकरण


| | | |
|---|---|---|
| १ | मंगलाचरण | ३०० |
| २ | षट्रसों का सुन्दर भोजन योग | ३०१ |
| ३ | अवश्य भोजन प्राप्ति योग | ३०२ |
| ४ | भोजन की प्राप्ति न हो बल्कि शस्त्र से चोट लगे | ३०३ |
| ५ | अधिक लवण होने का योग | ३०४ |
| ६ | कटु तथा मांस भोजन | ३०५ |
| ७ | सरस—नीरस—कलहयुक्त भोजन योग | ३०६ |
| ८ | कषाय तथा मधु भोजन योग | ३०७ |
| ९ | शुभ या शोक स्थान में भोजन योग | ३०८ |
| १० | सुन्दर स्त्रियों द्वारा खट्टे रस भोजन का योग | ३०९ |
| ११ | अनादर के साथ दासियों द्वारा भोजन का योग | ३१० |
| १२ | तैलभोजनयोग | ३११ |
| १३ | राजगृह अथवा नीच गृह में भोजन योग | ३१२ |
| १४ | भोजन कितनी बार मिलेगा ? | ३१३ |
| १५ | सम्मानपूर्वक सुन्दर स्त्रियों द्वारा परोसा हुआ भोजन मिले | ३१४ |
| १६ | दानरूप में वस्त्रों सहित भोजन प्राप्ति हो | ३१५ |
| १७ | सुवर्ण वस्त्रभोजन योग | ३१६ |
| १८ | विवाह रेडियो गीत वाद्यादि होते समय भोजन मिले | ३१७ |
| १९ | बहिन या पिता के घर भोजन प्राप्ति का योग | ३१८ |
| २० | पुत्र-पौत्र शत्रु अथवा स्त्री स्नेह से युक्त | ३१९ |
| २१ | होटल आदि भोजन का योग | ३२० |
| २२ | स्त्री अथवा स्वजनों के पास भोजन योग | ३२१ |

| | | |
|---|---|---|
| २३ | विजय प्राप्त करने पर स्नेहपूर्वक भोजन का योग | ३२२ |
| २४ | कैसे मकान में भोजन मिलेगा ? | ३२३ |
| २५ | भोजनविषयविचार | ३२४ |
| २६ | भोजनदिशाविचार | ३२५ |
| २७ | रसविचार | ३२६ |
| २८ | ग्रन्थप्रशंसा | ३२७ |


## ग्रामपृच्छाप्रकरण


| | | |
|---|---|---|
| १ | नगरी के चारों तरफ पर्वत का योग | ३२६ |
| २ | नगरी में विशाल उच्च वप्रयोग | ३३०—३३१ |
| ३ | बागों से युक्त नगरी का योग | ३३२ |
| ४ | कितने गढ़े होंगे ? | ३३३ |
| ५ | समृद्ध नगरी का योग | ३३४ |
| ६ | धर्म स्थानादि से युक्त होने का योग | ३३५ |
| ७ | वृक्ष, ईंटों के पुञ्ज, छप्पड़ होने का योग | ३३६ |
| ८ | सुन्दर भवन तथा सड़कों से युक्त योग | ३३७ |
| ६ | सुरक्षित नगरी का योग | ३३८ |
| १० | सुवर्ण कलशों से युक्त ग्राम योग | ३३६ |
| ११ | कितने हाथ ऊँचा किला होगा ? | ३४० |
| १२ | धन शालिनी नगरी का योग | ३४१ |
| १३ | ग्रन्थ प्रशंसा | ३४२ |


## पुत्रप्रकरण


| | | |
|---|---|---|
| १ | पुत्र-पुत्री योगविचार | ३४३-३४५ |
| २ | कब प्रसव होगा | ३४६—३४७ |
| ३ | पुत्र अथवा पुत्री योग | ३४८ |
| ४ | अपत्य जीवित रहेगा या नहीं | ३४६—३५० |
| ५ | दिन अथवा रात्रि में जन्मयोग | ३५१—३५२ |
| ६ | इस वर्ष में सन्तति होगी या नहीं | ३५३—३५४ |
| ७ | सन्तानोत्पत्ति का अद्भुत योग | ३५५—३५६ |
| ८ | अवश्य भावी पुत्र योग | ३५७ |
| ६ | कितने मास शेष होंगे ? | ३५८ |

१० सन्तति हीन होने का योग ३५६
११ पुत्रजन्म का योग ३६०—३६२
१२ पुत्र मृत्यु योग ३६३
१३ कितना एक समय में पैदा होगा ३६४—३६५
१४ द्वयोत्पत्तियोग ३६६
१५ कितनी सन्तानें होंगी ३६७
१६ स्त्रीग्रह से कन्या और पुरुष ग्रहों से पुत्रसंख्याविचार ३६८
१७ सन्तानायुःकथन ३६९
१८ राजतुल्य पुत्र योग ३७०
१९ एक-दो तीन-चार पुत्र पुत्री का विशेष योग ३७१
२० छः सात पुत्र पुत्री योग ३७२
२१ ग्रथप्रशंसा ३७३


छठा रोगप्रकरण


१ रोगी के समीप कितने स्त्री पुरुष हैं ? ३७४-३७५
२ रोगी किस हालत में है ? ३७६
३ रोगी कितनी दूर है ३७७
४ रोगनाम कथन—रक्त रोग ३७८
५ अतिसार तथा न्यूनबल योग ३७९
६ सन्निपात रोग योग ३८०
७ सन्ताप अथवा चित्तरोग ३८१
८ कुष्ठरोगयोग ३८२
९ हस्तपादकम्पन-वायुरोग ३८३
१० औषधिविचार ३८४
११ वैद्योषधिविचार ३८५
१२ रोग-रोगी-वैद्य-औषधि की मैत्री ३८६
१३ रोगी जीवन योग ३८७
१४ सन्निपात ज्वर से मृत्यु ३८८
१५ भूख-अजीर्ण से मृत्यु ३८९
१६ रोगी जीवन योग ३९०-३९१
१७ साँप द्वारा मृत्युयोग ३९२
१८ मृत्युयोग ३९३
१९ मृत्यु से बच जाने का योग ३९४

## सप्तमप्रकरण

| | | |
|---|---|---|
| १ | पति तथा पत्नी की आज्ञा पालन का योग | ३६५ |
| २ | समान प्रीति योग | ३६६ |
| ३ | परस्पर प्रीति योग | ३६७-३६८ |
| ४ | प्रधान स्त्री योग | ३६६ |

## चतुर्भंग्या प्रीतिः

| | | |
|---|---|---|
| १ | पति से उत्तम होने का योग | ४०० |
| २ | रंक कुलोत्पन्न कन्या भी रानी होती है | ४०१ |
| ३ | मृता भार्या होने का योग | ४०२ |
| ४ | भार्या मृत्यु योग | ४०३-४०४ |
| ५ | दोनों पत्नी सुन्दर होने का योग | ४०५ |
| ६ | कितनी स्त्रियाँ होंगी ? | ४०६ |
| ७ | स्व-पर स्त्री सुख योग | ४०७ |
| ८ | सुन्दर स्त्री योग | ४०८ |
| ९ | अवस्था वर्णन | ४०९ |
| १० | सुन्दर होने का योग | ४१० |
| ११ | स्त्री स्वभाव योग | ४११-४१२ |
| १२ | स्त्री का आचार कैसा है ? | ४१३ |
| १३ | निर्दोष कन्या योग | ४१४-४१५ |
| १४ | दूषित कन्या योग | ४१६-४१८ |
| १५ | स्त्रीप्रसव ज्ञान | ४१९-४२० |
| १६ | अन्य पुरुष से सन्तान | ४२१ |
| १७ | अपने पति से सन्तान | ४२२ |
| १८ | मिश्र सन्तान योग | ४२३ |
| १९ | गर्भपितृनिर्णय | ४२४-४२७ |
| २० | स्त्री पुरुष में प्रेम तथा अप्रेम | ४२८-४२९ |
| २१ | स्त्री प्रकरण समाप्त | ४३० |

## स्त्रीजातक

| | | |
|---|---|---|
| १ | स्त्री का पति से दुर्व्यवहार | ४३१ |
| २ | पतिद्वेषिणी स्त्री | ४३२ |
| ३ | विषकन्या | ४३३ |
| ४ | विधवायोग | ४३४ |

| | | |
|---|---|---|
| ५ | दुर्भगा तथा सुभगा कन्या लक्षण | ४३५ |
| ६ | स्त्रीसम्पत्ति योग | ४३६ |
| ७ | अन्यपति की इच्छा | ४३७ |
| ८ | पति के साथ स्वेच्छा पूर्वक रमण | ४३८ |
| ९ | पतिपरित्यक्ता योग तथा यौवन में वार्द्धक योग | ४३९ |
| १० | पतित्यक्ता योग, पतिमृत्युयोग, सौभाग्यवतीयोग | ४४० |
| ११ | योनिदोषवती स्त्रीयोग तथा पतिप्रिया स्त्रीयोग | ४४१ |
| १२ | ऋतुकाल में वर्ज्य नक्षत्र | ४४२ |
| १३ | स्त्रीरतिसुखयोग | ४४३ |
| १४ | युवक को स्त्रीसुखयोग | ४४४ |
| १५ | दुःख सुख योग तथा केवल सुखयोग | ४४५ |
| १६ | मैथुनसुख | ४४६-४४७ |
| १७ | सुवासित मैथुन | ४४८ |
| १८ | आनन्दशून्य मैथुन | ४४९ |
| १९ | तीन बार मैथुन | ४५० |
| २० | उत्तम तथा जीर्ण देवालय में मैथुन | ४५१ |
| २१ | रसोई घर में समय मैथुन, जलाश्रय स्थान में सानन्द मैथुन | ४५२ |
| २२ | वापी मैथुन तथा कुञ्ज मैथुन | ४५३ |
| २३ | गर्त मैथुन, गोशाला मैथुन | ४५४ |
| | **परचक्रागमनप्रकरण** | |
| २४ | शत्रु के आक्रमण तथा अनाक्रमण का योग | ४५५-४५७ |
| २५ | शत्रु के लौटने का योग, तथा दो बार आने का योग, पराजय का योग | ४५८ |
| २६ | शत्रु लौटने का योग | ४५९ |
| २७ | शत्रु के आक्रमण तथा अनाक्रमण के योग | ४६०-४६६ |
| २८ | मार्ग में शत्रु की मृत्यु | ४६७ |
| २९ | शत्रु का मार्ग में लौटना | ४६८ |
| | **गमनागमनप्रकरण** | |
| १ | आना जाना आसानी से तथा बिलम्ब से होना | ४६९ |
| २ | यात्राज्ञान | ४७०-४७५ |
| ३ | गमनागमन की निष्फलता | ४७६ |
| ४ | पुत्र परदेश से कब लौटेगा ? | ४७७ |

| | | |
|---|---|---|
| ५ | पुत्र का परदेश से शीघ्र लौटना | ४७८-४८१ |
| ६ | विलम्ब के कारण | ४८२ |
| ७ | यात्री को घर में विश्राम | ४८३ |
| ८ | लग्नेश के अनुसार पथिक की स्थिति | ४८४ |
| ९ | मार्ग में पथिक को अनिष्ट | ४८५ |
| १० | प्रवासी मनुष्य की मृत्यु | ४८६-४८७ |
| ११ | पथिक का रोगी होकर घर लौटना | ४८८ |
| १२ | उदय तथा शुभ शकुन | ४८९ |
| १३ | मार्ग में भय, चोर से उपद्रव | ४९०-४९१ |
| १४ | मार्ग में तालाब, कुआँ आदि | ४९२ |
| १५ | मार्ग में महाभय का योग, राजा से निधि लाभ के योग | ४९३ |
| १६ | राजगृह से लाभ, मार्ग में व्याधि | ४९४ |
| १७ | मार्ग में शास्त्र से घात | ४९५ |
| १८ | भय होने पर भी प्रहार तथा हानि न होना | ४९६ |
| १९ | मार्ग में सानन्द मैथुन | ४९७ |
| २० | दो जगह तथा तीन जगह विश्राम | ४९८ |
| २१ | गमनागमन का होना तथा न होना | ४९९ |


## युद्ध प्रकरण


| | | |
|---|---|---|
| १ | युद्ध प्रकरण का आरम्भ | ५०० |
| २ | युद्धयोग | ५०१, ५०२ |
| ३ | राजा का नाश | ५०३ |
| ४ | युद्धयोग | ५०४-५०७ |
| ५ | युद्ध न होने का योग | ५०८, ५०९ |
| ६ | युद्धयोग | ५१०-५१२ |
| ७ | युद्धनिर्णय | ५१३ |
| ८ | नागरभाव और यायिभाव | ५१४ |
| ९ | नागर राजा के जय तथा पराजय योग | ५१५ |
| १० | यायी द्वारा नगर का ग्रहण तथा अग्रहण | ५१६ |
| ११ | नगर वालों का जय तथा पराजय। स्थायी तथा यायी राजाओं के जयपराजय विचार | ५१७-५४० |
| १२ | राजाओं की परस्पर सन्धि | ५४१ |
| १३ | युद्ध होने तथा न होने का विचार | ५४२ |

| | | |
|---|---|---|
| १४ | सेनापति नाश विचार | ५४३ |
| १५ | राज्यनाश | ५४४ |
| १६ | युद्धप्रवेशलग्न | ५४५ |
| १७ | स्थायी और यायी राजा का जयपराजय | ५४६ |
| १८ | मृत्युयोग आने पर बच जाना | ५४७-५४८ |
| १९ | प्रश्नकर्ता के शत्रु का पराजय | ५४९ |
| २० | सेना का आघात | ५५० |
| २१ | भाई का मरण, मामा को आतङ्क, पुत्रनाश | ५५१ |
| २२ | स्त्रीनाश, शरीरघात, मृत्यु | ५५२ |
| २३ | द्विजनाश | ५५३ |
| २४ | बलवान शत्रु का नाश | ५५४ |
| २५ | युद्ध प्रश्न में धन का लाभ | ५५५ |
| २६ | ग्रहदृष्टिविचार | ५५६-५६१ |
| २७ | कुला और अकुला तिथियां | ५६२ |
| २८ | कुल और अकुल ग्रह | ५६३ |
| २९ | कुल और अकुल नक्षत्र | ५६४ |
| ३० | यायी और स्थायी का जय तथा परस्पर सन्धि का निर्णय | ५६५ |
| ३१ | अङ्क गणना से जयनिर्णय | ५६६ |
| ३२ | अश्व, शस्त्र आदि का बल | ५६७ |
| ३३ | गजाकार चक्र | ५६८-५७० |
| ३४ | गजचक्र से जय निर्णय | ५७१ |
| ३५ | गज चक्र से मृत्यु और भय | ५७२ |
| ३६ | गजत्याग | ५७३ |
| ३७ | सेनाभूषण हाथी | ५७४ |
| ३८ | अश्वाकार चक्र | ५७५-५७६ |
| ३९ | अश्वाकार चक्र से जयनिर्णय | ५७७ |
| ४० | महायुद्ध में विभ्रम, भंग, हानि | ५७८ |
| ४१ | अश्वप्रशंसा | ५७९ |
| ४२ | खड्गचक्र | ५८० – ५८२ |
| ४३ | खड्गचक्र से जय निर्णय | ५८३ |
| ४४ | धनुर्बाणचक्र | ५८४ |
| ४५ | धनुर्बाणचक्र से शुभाशुभ | ५८५ |

| | | |
|---|---|---|
| ५६ | धनुर्बाणचक्र से मृत्यु, जय, भंग और धनक्षय | ५८६–५८९ |
| ५७ | कुन्तचक्र और उससे शुभाशुभज्ञान | ५९०–५९१ |
| ५८ | द्वादश पत्रों का चक्र | ५९२ |
| ५९ | महामारी भूमि उससे जयाजय निर्णय | ५९३ |
| ६० | रुद्रभूमि उससे जयाजय निर्णय | ५९४ ५९५ |
| ६१ | क्षेत्रपाली भूमि उससे जयाजय निर्णय | ५९६–५९८ |
| ६२ | शरीर छाया से आक्रमण में श्रेष्ठ दिशा का ज्ञान | ५९९ |
| ६३ | सूर्य, चन्द्र, योगिनी, आदि का दिग्विचार | ६००–६०१ |
| ६४ | नरचक्र | ६०२–६०४ |
| ६५ | नरचक्र से घात-अघात विचार | ६०५ ६१२ |

सन्धिविग्रहप्रकरण

| | | |
|---|---|---|
| १ | शत्रु-विग्रह योग | ६१३–६१५ |
| २ | सन्धि में लाभ | ६१६–६१७ |
| ३ | सन्धि में हानि | ६१८ |
| ४ | सन्धि-विग्रह योग | ६१९ |

अष्टमप्रकरण

| | | |
|---|---|---|
| १ | वृत्तज्ञान | ६२०– ६२२ |
| २ | वृत्तों का बल तथा अबल | ६२३ |
| ३ | स्त्री का पुष्पवती न होना | ६२४ |
| ४ | स्त्री का पुष्पवती होना | ६२५ |
| ५ | पुष्प के वर्ण | ६२६—२७ |
| ६ | योनिस्थान में ग्रहों के स्वभाव से पुष्पज्ञान | ६२८–३० |

दोषप्रकरण

| | | |
|---|---|---|
| ७ | सूर्य और चन्द्रमा से पीड़ा | ६३१ |
| ८ | मंगल से पीड़ा | ६३२ |
| ९ | बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु से क्लेश | ६३३–३४ |
| १० | पाप ग्रहों से क्लेश | ६३५ ६३८ |
| ११ | उच्च नीच विचार | ६३९ |
| १२ | केन्द्र त्रिकोण मे दोष विचार | ६४० |
| १३ | अस्तग्रह तथा नीचग्रहविचार | ६४१ |
| १४ | क्षेत्रपालकृत, यक्षकृत तथा गोत्र कृत दोष | ६४२ |
| १५ | शाकिनी आदि दोष | ६४३–६४५ |

| | | |
|---|---|---|
| १६ | पीड़ा, ताप, आदि के दोष | ६४६–४७ |
| १७ | क्षेत्रपाल आदि से दोष | ६४८–४६ |
| १८ | जलाश्रय आदि दोष | ६५० |
| १६ | स्त्री कृत आदि दोष | ६५१ |
| २० | स्वगोत्र कृत आदि दोष | ६५२ |

## जीवितमृत्युप्रकरण

| | | |
|---|---|---|
| १ | रोग होने पर भी जीना | ६५३ ५४ |
| २ | मनुष्य की मृत्यु | ६५५–६६१ |
| ३ | मनुष्य का जीवन | ६६२ |
| ४ | नौका––प्रश्न | ६६३ |
| ५ | रोग से मृत्यु का न होना | ६६४ |
| ६ | शस्त्राहत मनुष्य का भी जीना | ६६५ |
| ७ | रोगी का जीना | ६६६ |
| ८ | प्रेत योग से मनुष्य की मृत्यु | ६६७––६८ |

## प्रवहणप्रकरण

| | | |
|---|---|---|
| १ | नौकागमन पर चार प्रश्न | ६६६ |
| २ | नौका का न डूबना | ६७० |
| ३ | नौका का भ्रमण करना | ६७१ |
| ४ | पोत स्वामी की मृत्यु | ६७२ |
| ५ | पोत का डूबना | ६७३ |
| ६ | व्यवहार से लाभ न होना | ६७४ |
| ७ | व्यवहार से लाभ | ६७५ |
| ८ | जल से लाभ | ६७६ |
| ६ | परदेश की वस्तु के व्यवहार से लाभ | ६७७–७८ |
| १० | बेड़ा प्रश्न में दूसरा प्रकार | ६७६–६८३ |

## नवम प्रकरण

| | | |
|---|---|---|
| १ | प्रव्रज्याकारक योग | ६८४ ६८५ |
| २ | व्रतत्याग | ६८६ |
| ३ | प्रव्रज्या कारक योगों की दृढ़ता तथा निर्बलता | ६८७ |
| ४ | रोग के कारण दीक्षा | ६८८ |
| ५ | भोजन के लिये व्रत | ६८६ |
| ६ | शान्तचित्त से प्रव्रज्या ग्रहण | ६६० |

| | | |
|---|---|---|
| ७ | दीक्षा योग | ६६१–६६६ |
| ८ | शाक्त योग | ६६७ |
| ९ | स्त्री परिहार | ६६८ |
| १० | पाप योग | ६६९ |
| ११ | जैन मार्ग योग तथा ब्रह्महत्या योग | ७०० |
| १२ | पुण्यशील राजा होने का योग | ७०१ |
| १३ | धार्मिक राजा तथा राजपूज्य गुरु होने का योग | ७०२ |
| १४ | दीक्षासिद्धि योग समाप्त | ७०३ |

दशमप्रकरण

| | | |
|---|---|---|
| १ | राजयोग | ७०४ |
| २ | पदप्राप्ति योग | ७०५ |
| ३ | राजयोग | ७०६ ७०७ |
| ४ | पदच्युति और पदप्राप्ति | ७०८ |
| ५ | पद प्राप्ति और पदच्युति | ७०९ |
| ६ | उच्च पद प्राप्ति | ७१० |
| ७ | अचानक पद प्राप्ति | ७११ |
| ८ | इच्छासिद्धि न होना | ७१२ |
| ९ | पदप्राप्ति योग | ७१३-७१४ |
| १० | स्थिरपद, राज्यप्राप्ति, पदभ्रंश | ७१५ |
| ११ | आकस्मिक राज्यप्राप्ति | ७१६ |
| १२ | यशस्वी होना | ७१७ |

वृष्टिप्रकरण

| | | |
|---|---|---|
| १ | वृष्टिप्रकरण | ७१८ |
| २ | वृष्टियोग | ७१९-७२६ |
| ३ | पादोनवृष्टि योग तथा अवृष्टियोग | ७२७ |
| ४ | अर्धवृष्टियोग | ७२८ |
| ५ | त्रिभागवृष्टियोग | ७२९ |
| ६ | दुर्भिक्ष और विद्युद्योग | ७३० |
| ७ | वृष्टियोग | ७३१-७३५ |
| ८ | दुर्भिक्षयोग | ७३६ |
| ९ | सुभिक्षयोग | ७३७-७३८ |
| १० | दुर्भिक्षयोग | ७३९-७४० |

| | | |
|---|---|---|
| ११ | सस्योत्पत्तियोग | ७४१-७४४ |
| १२ | महावृष्टि-अनावृष्टि योग | ७४५ |
| १३ | मूषक आदि का अधिकता में होना | ७४६-७४७ |
| १४ | धान्योत्पत्ति योग | ७४८-७५० |
| १५ | लग्न से ईति का विचार | ७५१ |
| १६ | भूमिमण्डल | ७५२ |
| १७ | तेजमण्डल | ७५३ |
| १८ | जलमण्डल, वातमण्डल | ७५४ |
| १९ | तत्त्वफल | ७५५-७६० |
| २० | मीन संक्रान्ति से मेष संक्रान्ति | ७६१-७६३ |
| २१ | आषाढ़ी पूर्णिमा से वृष्टिज्ञान | ७६४-७६६ |
| २२ | वृष्टियोग | ७६७-७६९ |
| २३ | अग्नियोग, पृष्ठयोग आदि | ७७०-७७६ |

ग्यारहवां प्रकरण

| | | |
|---|---|---|
| १ | अर्घकाण्ड का प्रारम्भ | ७७७ |
| २ | क्रेता और विक्रेता का विचार | ७७८ |
| ३ | लाभविचार | ७७९ |
| ४ | क्रयविचार | ७८० |
| ५ | क्रेता और विक्रेता के सम्बन्ध से लाभालाभविचार | ७८१-७८२ |
| ६ | समर्घयोग | ७८३ |
| ७ | समर्घ-महर्घ योग | ७८४—७८९ |
| ९ | अन्य प्रकार से समर्घ-महर्घ योग | ७९०—८२४ |

स्त्रीलाभप्रकरण

| | | |
|---|---|---|
| १ | कन्याप्राप्ति | ८२५ |
| २ | स्त्रीलाभ | ८२६—८२९ |
| ३ | स्त्रीप्राप्ति | ८३० |
| ४ | गुणवती स्त्री की प्राप्ति | ८३१ |
| ५ | शीघ्र स्त्रीलाभ | ८३२ |
| ६ | स्त्रीलाभ | ८३३ |
| ७ | कन्यालाभ | ८३४—८३६ |
| ८ | कन्याप्राप्ति, पतिप्राप्ति | ८३७ |
| ९ | कन्याप्राप्ति तथा वरप्राप्ति | ८३८—८३९ |
| १० | लक्ष्मीवान् वर, लक्ष्मीवती कन्या की प्राप्ति | ८४० |

| | | |
|---|---|---|
| ११ | परस्पर धनप्राप्ति | ८४१ |
| १२ | वधूवरसमृद्धि | ८४२ |
| १३ | स्त्री-पुरुष का प्रेमपूर्वक तथा वैरभाव से रहना | ८४३ |
| १४ | दूसरी स्त्री को धन देना, तथा जार को सम्पत्ति देना | ८४४ |
| १५ | स्त्रीपुरुष का परस्पर प्रेम | ८४५ |
| १६ | नवोढ़ा के साथ सुरत | ८४६ |
| १७ | कन्या को पति की प्राप्ति | ८४७—८४९ |
| १८ | कन्या-वर स्वस्थता | ८५० |
| | **नष्टलाभप्रकरण** | |
| १ | नष्ट लाभ प्रकरण का आरम्भ | ८५१ |
| २ | नष्ट वस्तु लाभ योग | ८५२ |
| ३ | नष्ट वस्तु का लाभ तथा अलाभ | ८५३—५६ |
| ४ | नष्ट वस्तु की चोर से प्राप्ति तथा अप्राप्ति | ८५७ |
| ५ | नष्ट वस्तु का लाभ, चोर की मृत्यु | ८५८ |
| ६ | नष्ट वस्तु का अलाभ वा लाभ, नष्ट वस्तु का राजा के अधीन होना | ८५९ |
| ७ | नष्टवस्तुनिर्णय प्रकार | ८६० |
| ८ | वस्तु का नष्ट न होना | ८६१ |
| ९ | नष्टवस्तुलाभ | ८६२-८६३ |
| १० | नष्टवस्तुस्थाननिर्णय | ८६४-८६६ |
| ११ | नष्टवस्तुलाभ | ८६७ |
| | **लाभप्रकरण** | |
| १ | मेष आदि राशियों का अन्धबधिरादिविचार | ८६८ |
| २ | शीघ्र लाभ विचार योग | ८६९ |
| ३ | शीघ्र लाभयोग, तथा दरिद्रता योग | ८७० |
| ४ | लाभयोग | ८७१-८८१ |
| ५ | लाभ का अभाव | ८८२ |
| ६ | लाभ प्रकरण समाप्त | ८८३ |
| १ | दिनचर्या फल | ८८४ |
| २ | शास्त्र चुराने पर पाप | ८८५ |
| ३ | दिनफल तथा मासफल से सूर्य आदि का फल | ८८६ |
| ४ | विंशोपक दृष्टि | ८८७ |
| ५ | सुन्दर भोजन प्राप्ति | ८८८-८८९ |

| | | |
|---|---|---|
| ६ | सुन्दर भोजन, पुत्र और धन की प्राप्ति | ८६० |
| ७ | रोग, संताप, स्त्रीसुख आदि | ८६१ |
| ८ | सुन्दर स्त्री सुख | ८६२ |
| ९ | मरण तथा दृढ़ बन्धन | ८६३ |
| १० | शस्त्रवध | ८६४—६६ |
| ११ | पुण्यकर्म तथा विभव का उदय | ८६७ |
| १२ | अकस्मात पद लाभ | ८६८ |
| १३ | निधि वस्त्रादि प्राप्ति | ८६९ |
| १४ | शुभकार्यों में सद्व्यय | ९०० |
| १५ | बन्धन के लिये अवरोध | ९०१ |
| १६ | मृत्यु योग होने पर भी रक्षा | ९०२ |
| १७ | दिनश्रेष्ठ योग | ९०३ |
| १८ | मृत्यु योग होने पर भी रक्षा | ९०४ |
| १९ | मासफल | ९०५ |
| २० | ग्रहों का उच्च, स्वगृह, मित्रादि योग | ९०६ |
| २१ | प्रतापी और शत्रुओं से अधृष्य होने के योग | ९०८ |
| २२ | दुस्थिति, धननाश, पुत्रपीड़ा आदि योग | ९०९ |
| २३ | शत्रुनाश आदि योग | ९१० |
| २४ | विशिष्ट पदादियोग | ९११ |

गुरुफल

| | | |
|---|---|---|
| १ | बृहस्पति के द्वादश राशियों में फल | ९१२—१८ |

शुक्रफल

| | | |
|---|---|---|
| १ | शुक्र के द्वादश राशियों में फल | ९१९—२३ |

बुधफल

| | | |
|---|---|---|
| १ | बुध के द्वादश राशियों में फल | ९२४—९२६ |

भौमफल

| | | |
|---|---|---|
| १ | भौम के द्वादश राशियों में फल | ९२७ - ३० |

राहुफल

| | | |
|---|---|---|
| १ | राहु के द्वादश राशियों में फल | ९३५—३८ |

अंशकुण्डलिका

| | | |
|---|---|---|
| १ | त्रिंशांशकुण्डलिका | ९३९-७४५ |

| | | |
|---|---|---|
| २ | द्वादशांशकुण्डलिका | ६४६-६४८ |
| ३ | नवांशकुण्डलिका | ६४९-६५० |
| ४ | हेमप्रभसूरिविषयक श्लोक | ६५१-६५२ |
| | **अर्घकाण्ड** | |
| १ | शुभसमययोग | ६५३-६५४ |
| २ | सुभिक्ष और दुर्भिक्ष योग | ६५५ |
| ३ | सुखसम्पत्तियोग | ६५६ |
| ४ | बृहस्पतिसंचार से सुभिक्ष | ६५७ |
| ५ | सुभिक्ष और विग्रह का अभाव | ६५८ |
| ६ | राजमारी आदि उपद्रव | ६५९ |
| ७ | रसक्षय आदि | ६६० |
| ८ | सुभिक्ष, आरोग्य, सुवृद्धि | ६६१-६६२ |
| ९ | दुर्भिक्ष और भय | ६६३ |
| १० | शुक्रास्तफल | ६६४-६६५ |
| ११ | महर्घयोग | ६६८-६७० |
| १२ | ईति का उपद्रव | ६७१ |
| १३ | महर्घयोग | ६७२ |
| १४ | दुर्भिक्ष और राजविग्रह | ६७३ |
| १५ | दुःस्थिति और राजविग्रह | ६७४-६७५ |
| १६ | सुभिक्ष | ६७६ |
| १७ | सुभिक्ष-दुर्भिक्ष | ६७७-९९४ |
| १८ | त्रिकयोग | ९९५ |
| १९ | पञ्चकयोग | ९९६ |
| २० | क्रयविक्रययोग | ९९७ |
| २१ | क्रययोग | ९९८ |
| २२ | विक्रययोग | ९९९ |
| २३ | क्रयविक्रययोग | १०००-१००१ |
| | **मासार्घवर्षार्घा:** | |
| २४ | महर्घयोग | १००२-१००५ |
| २५ | दौस्थ्ययोग | १००६ |
| २६ | सौस्थ्ययोग | १००७ |
| २७ | सुभिक्ष | १००८-१००९ |
| २८ | दुर्भिक्ष | १०१० |
| २९ | नाशक्षय | १०११ |

३० दुस्थिति, दुर्भिक्ष १०१२-१०१३
३१ क्रय-विक्रय-योग १०१४
३२ दुर्भिक्ष १०१५
३३ रोहिणी का शुभाशुभ फल १०१६-१०२६

आषाढ़ीयोग

३४ आषाढ़ीयोग से वृष्टि का होना अथवा न होना १०२७-१०४८
३५ नक्षत्र क्रम से समर्घ-महर्घ तथा तिथि, छत्रभंग आदि योग १०४९-१०६९
३६ चन्द्रमा के परिवेष से वृष्टिज्ञान १०७०
३७ इन्द्रधनुष से वृष्टि ज्ञान १०७१
३८ राशिक्रम से महर्घ आदि १०७२-७४
३९ वारुणा परिवेष से वृष्टि १०७५
४० सर्प के वृक्ष पर चढ़ने से वृष्टि निर्णय १०७६
४१ गडरी के ऊर्ध्वाभिमुख होने से वृष्टिज्ञान १०७७
४२ तक्रआदि के पात से वृष्टिहानि १०७८
४३ महर्घ-समर्घज्ञान १०७९-१०८१
४४ अङ्क प्रकार से अर्घज्ञान १०८२-१०८९
४५ मण्डलप्रकार से अर्घज्ञान १०९०-११०९
४६ हेम प्रभ सूरि के अनुसार अर्घकाण्ड १११०-१११४
४७ चैत्रार्घ १११५-१११७
४८ अर्घशास्त्र की सत्यता १११८
४९ आश्विन और आषाढ़ मे अर्घ १११९
५० नक्षत्र क्रम से अर्घ ११२०-११२६
५१ राशि संख्या से अर्घ ११२७-११२८
५२ ग्रह संख्या से अर्घ ११२९-११३३
५३ ग्रह, नक्षत्र, राशि संख्या से अर्घ ११३४-११३६
५४ अर्घ त्रिगुण ११३७
५५ अर्घ द्विगुण ११३८
५६ लब्धार्घ से घटा कर अर्घ निश्चय ११३९
५७ राशि, नक्षत्र, ग्रह क्रम से अर्घ ११४०-११४८
६८ संवका, माषक, पल्लिका, आदि जानने का प्रकार ११४८-११५६
६९ धान्य महर्घ जानने के प्रकार ११५७-११५८
७० पात्रापात्र को अर्घकाण्ड देने का फल और अफल ११५९-११६०

## FOREWORD

When a little over two years ago Prof. Ram Swarup Bhargava, Jotishacharya, founded the Kushal Astrological Research Institute at 52 C, Model Town, Lahore, he asked me to recommend an old work on astrology which he could publish from his institute. I happened to have in my possession at that time a manuscript of Hemaprabha Suri's Trailokyaprakasa belonging to the Jain Bhandar attached to the Svetambar temple, Ambala city. I suggested this work to Prof Ram Swarup. He readily accepted it and the act of copying it was commenced at once. After two years' labour it is now published, and I am asked to write a foreword to it. Naturally I am glad to see my suggestion carried out so ably and promptly and it gives me much pleasure to add a foreword to the book.

Prof Ram Swarup has earned a wide reputation in the Punjab as an efficient astrologer. The staff working under him is well-trained and highly qualified. The editing of the Trailokyaprakasa has been carefully done. I should however point out one instance where I differ from the learned editor. It is the reading of verse 7. He has selected तुला तु (?) मुल्ययन्त्राणि whereas the readings found in other MSS are श्रभाव. शुलाव, श्वभाव, शुभाव in place of तुला तु Mr Mul Raj Jain who published a brief notice of *Trilokyaprakasa* in the *Jain SatyaPrakash* of Ahmedabad for June 1944 committed the same mistake by accepting तुला तु in preference to शुलाव Evidently the instrument referred here is *sularb* a synonym of *usturlab* which means an Astrolabe, an important instrument of the Greeks and the Arabs. Both the forms surlab and usturlab are recorded by Steingass in his *Persian-English Dictionary*, Oxford, 1930 The readings relegated to the footnote by Prof. Ram Swarup amply support my suggestion. Clearly तुला तु is a copyist's error while the other words are Indian modifications of surab, as there are so many other examples of modified words.

Here I may add a few words on the place of astrology in Jainism So far as theories and dogmas go, the Jains believe that every soul is the maker of its own career—both past and future Every moment the souls moving in the cycle of transmigration, are doing actions by deed, word or thought and

their happiness or misery are the direct result of these actions. In short the course of destiny cannot be changed.

In practice, however, Astrology plays an important role in the life of Jains Even in their oldest scriptures we find refereces to lucky moments for doing auspicious acts. The Prakrit words सोहणंसि तिहिकरणमुहुत्तंसि *i e* (the ceremony was performed) at an auspicious moment, in an auspicious *Karana* and on an auspicious hour, clearly refer to favourable time determined by astrological calculations At the birth of a child, even if it be a would-be Tirthankara astrologers were consulted. Kings always kept astrologers at their court and performed their acts according to the advice of the astrologers. The highest belief in astrology is shown by the statement of of the *Kalpasutra*, a Svetambara scripture, where it is said that Lord Mahavira died at a moment when the *Kshudra* or Bhasma-graha entered his nama-rasi. The effect of this was that his followers did not receive due honour for 2,000 years after his demise [1]

Having thus shown the importance and prevalence of Astrology among the Jains, I shall now state what place it holds in a monk's life. As is universally known, the life of a Jain monk is very hard He is indeed forbidden for selfish motives from practice of Astrology, medicine and other similar sciences. Their study, however, is not prohibited There are numerous works written by monks which amply reveal the authors' mastery over these sciences Several instances are found in which the monks actually took practical advantage of these sciences, but that was for the benefit of the whole community, and not for their personal gain [2]

The prohibition against practice of Astrology was confined to those monks whom for the sake of convenience we may term the *Samvigna* monks *i e*, those indifferent to worldly affairs. Such monks engaged themselves in the mortification of their self. They kept quite aloof from worldly attachments. In short they had broken all family ties They had reached the stage of *Samnyasa* described in the *Smritis*. They took abode in deserted huts away from habitation. Their wants were very few, they having discarded everything commonly needed by man. They

1. H Jacobi. Translation of the *Kalpasutra* in the Sacred Books of the East Series, *Vol*. XXII *p*. 266.

2. cf. अवद्येनापि यः कुर्याज् जैनप्रवचनोन्नतिम् ।
स शुध्यति प्रतिक्रान्तः सुधीः कालकसूरिवत् ॥
विनयचन्द्र कृत कालककथा, श्लो० २

visited cities or villages on their begging tours only for meals. That, too, was not frequent. They would preach the law of morality to those persons who happened to meet them. Apparently such monks did not stand in need of Astrology or medicine

There was however another class of monks who thought that the *samvigna* monk was no good to the world at large. The monks of this class were called *caityavasin* i e living in a *caitya* or temple They argued that after having acquired perfect control over the senses, one should strive to do good to humanity Though a *samvigna* and a *caityavasin* monk were on the same footing so far as self-control was concerned, yet in a way the latter was super or to the former so far as the service to humanity was concerned It required a stronger mind to become a *caityavasin* than a *samvigna* monk. The latter was safe in his seclusion whereas the former had to move in society and to play with fire as it were. A little carelessness would drag him down and send him to a far degraded position. Consquently very few people came forward to assume the role of a caityavasin monk, because he had to exert full self-control and yet serve humanity in all its sufferings. It was to relieve and guide his fellow creatures that he freely took aid of medicine and astrology.

In the course of time, however the caityavasin life attracted easy-going people and the whole organisation deteriorated Only a few noble souls escaped this deterioration. At present the successors of caityavasins are called Pujya, Yati, Gor Ji etc Rajputana is their stronghold. From there they spread to other parts of India Among the Digambaras the caityavasins have come to be called *Bhattarakas*. They are just like Hindu *mahants*, trustees of charitable institutions in name, but sole managers, approaching to owners, in practice

At one time the Pujyas were found in almost every town or city of the Punjab There was a network of their *gaddis* called *upasrayas* They were regarded as high class physicians and astrologers, and they extended their hand of service to all without distinction of caste or creed Many stories about their skill in these sciences can be heard even to day from the lips of the few old people still alive. Thus it is proved beyond question that the Jains have always regarded Astrology as a very useful and important sciece They derived full benefit from it in all the periods of history—from the days of the Tirthankaras down to the present day As a result of this numerous works on Astrology were written by the Jains in various languages of India. So much importance was attached to Astrology that Jaina authors did not hesitate to borrow from foreign sources. The *Trailokyaprakasa* expressly states

म्लेच्छेषु विस्तृतं लग्नं कलिकालप्रभावत:
प्रभुप्रसादमासाद्य जैने धर्मेऽवतिष्ठते ॥ ६ ॥*

On account of the effects of the Kali Age the science of *Lagna* (Horoscope) spread among the Mlecches, but with Lord's grace, the same is still found among the Jains. Instead of अवतिष्ठते, some MSS read अवतार्यंते which clearly refers to a borrowing of the sciece from the Mlecchas Probably the original reading was अवतार्यते which was subsequently changed to अवतिष्ठते by some zealous copyist.

Prof. Ram Swarup has done well by giving a brief account of Jaina Cosmology and Astrology for the benefit of such readers as are not acquainted with them. But he is silent about the Jaina school of Astrology. He does not say in what respects it differs, if it does so, from the Hindu School. This is a subject worth studying. Perhaps the Jains did not develop a separate system of Astrology. They took it at a later date in the form it was then current.

I avail of this opportunity to invite the attention of scholars to the importance of the Punjab Jain Bhandars. A preliminary catalogue of five of these Bhandars was prepared by the writer of these lines and published by the University of the Panjab in 1939. The manuscript of the *Trailokyaprakasa* was first found in one of these Bhandars. There are several other works on Astrology and kindred sciences registered in the above catalogue and some of them might be worth publishing. I am sure that many more works of great value will be discovered among these bhandars if a thorough search is made. Some of the Pujyas of the Punjab were great scholars and must have written on these subjects. Their manuscript collections are preserved in these bhandars.

For the benefit of those who are not familiar with Sanskrit Prof. Ram Swarup has added a Hindi translation to the text But an index of subjects is sorely missing. A full index of subject matter world have greatly enhanced the value of the work.

JAIN VIDYA BHAVAN,
6, Nehru Street,
Krishan Nagar, Lahore.
January 12, 1946.

BANARSI DAS JAIN.

---

* Cf मणित्थताजिक v.9

## INTRODUCTION.

***A detailed description of manuscripts.***

The manuscript material utilized in the edition on Hemaprabhasuri's Trailokyaprakasa may be described in the following way :—

The text of the Trailokyaprakasa, edited[1] and translated here for the first time, is based on a manuscript existing in the Svetambara Jain Bhandar at Ambala, Punjab, (India).

This manuscript was obtained from the custodians of the said Bhandar through the courtesy of Dr Banarsi Das Jain, M A., Ph D (London), Reader in Hindi, Oriental College Lahore. I then informed about it to Prof. Dr. Lakshman Sarup, M A D Phil (Oxon), Officer d' Academie (France), the Principal, University Oriental College, and Head of the department of Sanskrit at the University of the Punjab, Lahore. The learned doctor put this manuscript at the disposal of the director, the present editor, assisted by the expert staff of the Kushal Astrological Research Institute, Model Town, Lahore. He also advised me to secure some other manuscripts on behalf of the Institute for collation purposes.

This basic manuscript begins :—

श्री गुरुपदपङ्कजेभ्यो नमः ।

श्री मत्पार्श्वाभिधं देवं केवलज्ञान भास्करं

वाग्देवीं खेचरांश्चापि नत्वा लग्नमहं ब्रुवे ॥१॥

लग्नं देवः प्रभुः स्वामी लग्नं ज्योतिः परं मतं ।

लग्नं दीपो महान् लोके लग्नं तत्वं दिशन गुरुः ॥

It consists of 33 leaves. It has generally 15 lines to a page. Many pages have 16 lines also. Syllables per line range from 46 to 53, making 1300granthas in all.

---

1 Dr H. D. Velankar states that the text was published by Bhimsi Manek of Bombay but we failed to procure a copy of it. Again Dr. Velankar notes that there are several other titles under which this work is known *e.g.*, भुवनप्रदीप, त्रैलोक्य प्रदीप, मेघमाला etc. Of these the first two are names of independent works by other authors whereas the third is a different treatise by our own author.

It is written on Indian hand made paper and is in a good condition The whole of the text is written in black ink. It is in old Jain script, bold, beautiful and even hand. It has clean margins without notes and corrections Left hand marginal top of each folio on its reverse bears a cipher representing the serial number of the folio.

The manuscript ends as follows :—

श्रीमद्देवेन्द्र शिष्य श्री हेम प्रभसूरि विरचितं त्रैलोक्यप्रकाशे समाप्तं ।

धने चक्रं यदा खेटाः कुर्वन्ति मिलिता घनाः ।<br>
तदा धान्यं महर्घं स्यात्सर्वं पण्यौघमध्यतः ॥<br>
रणे वक्रं यदा यान्ति सर्वेऽपि मिलिता ग्रहाः ।<br>
तदा धान्यं समर्घं स्यात् जायते भुवि वै मतं ॥<br>
अपात्रदानतोऽपुण्यं पुण्यं सत्पात्रदानतः ।<br>
इत्यपात्रे न दातव्यमर्घकाण्डमहोदयं ॥<br>
प्रतिमास्वल्पदेवानां यावन्तः परिमाणवः ।<br>
तावद्युगसहस्राणि कर्तुर्भोगभुजः फलं ॥

The scribe's historically important colophon runs as follows :—

इति त्रैलोक्यप्रकाशो ग्रन्थः समाप्तः ॥छ॥ श्रीः ॥छ॥छ॥श्री॥छ॥छ॥श्री॥ सं० १५७० वर्षे आषाढशुदि ८ ( अष्टमी ) शुक्रे अद्येह श्री अहिमदावादनगरे लिखितं विप्रत्रिणायगेन शुभं भवतु ॥ छ ॥ श्रीरस्तु ॥ श्रीः ॥ छ ॥ लेखक-पाठकयोः शुभं भवतु ॥ छ ॥ श्रीः ॥ छ ॥ श्रीः ॥ छ ॥ श्रीः ॥ ग्रंथाग्रं १३०० श्लोकसंख्यया मितिः ॥ १ ॥ छ ॥ श्रीः ॥ छ ॥ शुभं भव ॥ श्रीरस्तु ॥

The manuscript is generally correct but unfortunately it is incomplete It breaks off at leaf 23 b and begins at leaf 28a i e, four leaves are missing After the verse 824 it reads

इत्यायेऽर्घकाण्डं । अथ लाभप्रकरण एवार्घकाण्डं निरूप्य स्त्रीलाभ प्रकरणं ।

The rest of the matter on leaves 24-27 which cover verses 825-972 is wanting as the leaves are missing from the manuscript. The manuscript leaf 28 begins with the matter भद्रपदाधिष्ण्ये etc , of verse 972, thus leaving out the opening word पूर्वा of this verse probably on the missing leaf 27.

**(2)** Five manuscripts of the Trailokyaprakasa exist at the Central Library, Baroda. Of these five manuscripts, only two

were made accessible to us for collation. They have been designated here as A, A[1].

MS A.

Its No. is 3155 It is complete. Size 11″×6″. It has generally 11 lines a page, syllables per line ranging from 36 to 39. It is written on Indian hand made paper and is in a good condition The whole of the text is written in black ink. It is in old Devanagari script, bold, beautiful, even hand. It has generally clean margins with occasional corrections. Left hand marginal top of each folio on its reverse bears a serial number of the folio. It bears the following historically important colophon:

इति त्रैलोक्यप्रकाशो नाम ग्रन्थः समाप्तः ॥ शुभं भवतु ॥ शार्दूलविक्रीडितं ॥

अस्ति श्री वटपत्तने क्षितिपतिः श्रीमान् मनीषी वशी

कर्तुं पुस्तकसंग्रहं धृतरतिर्ग्रन्थालये वै निजे ।

भर्ता गुर्जरनीवृतोऽखिलकलाविद्यादिरक्तः सदा

ख्यातो यश्च शियाजिराव वसुधाधीशो गुणैरुज्ज्वलैः ॥

गीतीच्छन्द ॥ तच्छिष्टो गोसाईनारायणभारतीति विख्यातः ।

विद्वद्गोष्ठ्या नंदीप्रज्ञो यस्वन्तभारतीशिष्यः ॥

आर्याच्छन्द ॥ संवद्विक्रमकालात्सोणीवेदाङ्कचन्द्रसंख्याते ।

वर्षे च हेमलंबेत्याख्ये संवत्सरे चारौ ॥

गीतीच्छन्द ॥ मार्गे मासे कृष्णे पक्षे गुरुवासरे द्वितीयायां ।

लेखयति स्म ग्रन्थं खलु पत्तणहिल्लाख्ये ॥

श्लोक संख्या १२४६ ।

(3) The manuscript A[1] belongs to the Central Library, Baroda Its No is 393; its size 11″×6″, leaves 65; lines per page 11, syllables per line 32. Its brief colophon runs as follows:

इति त्रैलोक्यप्रकाशो नाम ग्रन्थः समाप्तः । ग्रंथाग्रं० संख्या १२४० ॥ ६ ॥ शुभं भवतु । कल्याणमस्तु ॥ ६ ॥ ६ ॥ मिलित्वा श्लोकसंख्या चत्वारिंशताधिकचतुर्दशप्रमाणं० ।

(4) A manuscript 'Bh' belongs to the Bhandarkar Research Institute, Poona. It offers a few variants from our basic ms But such variants as are given in footnotes call for our special attention and scrutiny. At places it improves indeed upon our text. It has been of considerable help specially in reconstituting the portion of the Arghakanda which is missing in the Ambala manuscript. At the end of the Trailokyaprakasa we have **Meghamala**.

It has leaves 68* + Meghamala = 74*.

It has size 8½″ × 4″; Lines per page ranging from 10 to 12. Letters 26.

It begins ओं नमः सिद्धचक्रादिसच्चित्रे । श्रीमत्पार्श्वाभिधं etc. It ends इति श्रीमद्देवेन्द्रसूरिशिष्य श्रीहेमप्रभसूरिविरचिते चित्रार्घकाण्डं समाप्तं ।

Then begins मेघमाला at the end of which we read

इति ज्योतिषग्रन्थो जैनकृतः समाप्तः । संवत् १८५३ शाके १७१६ पिंगल-नामाब्देऽश्विनशुक्ल १ प्रतिपद्गुरौ संगवेरे बानाभिध्थानाधंकोटितीर्थदक्षिणकूले हंसाख्यप्राकृतसंज्ञाक्षेत्रे कीर्तनोपाख्यशिवात्मजबालभट्टेन लिखितं लेखापयितं च स्वोपकारार्थं ६ ६ ६

Unfortunately this ms. is incomplete. Leaves 21-23 are missing.

(5-6) Two other manuscripts deserve notice. They hail from Bikaner. One of them contains only the Arghakanda of Trailokyaprakasa. It contains leaves 7, its size is 10″ × 4½″. Lines per page number 9; letters per line ranging from 30 to 33. It is designated as B[1].

Another manuscript from Bikaner is only a shorter recension of the present work. It has therefore been dismissed for the collation work except at places where the verses are tolerably in consonance with the text of adoption. Its size is 10″ × 4½″; leaves 12, lines per page 16, letters per line 52. It is incomplete *

*Relation of manuscripts.*

A, A[1], Amb and Bh. with slight variations fall into one group whereas B. representing, a shorter recension falls into another. The relationship of different groups may be made clear in the following diagram :—

N

A, | A[1], Amb, Bh. | B.

It may be remarked that sometimes, though very rarely, B makes a group with A, A[1], and Bh. separate from Amb. which

---

* The Arghakanda portion of the text has been compared also with the text of a manuscript from the Pattan Bhandar. This manuscript was in the possession of Mukhtar Shri Jugal Kishore, at Sarsawa, Saharanpur District who obtained it from Shri Punyaviaya ji of Pattan. The Arghakanda portion of the text was copied from the manuscript by a Shastri on behalf of our Institute.

then stands alone. For example, the verse 34 as it stands in the Amb. text is read differently by A. A[1], B and Bh. as noted in the footnotes.

The Tp is a Jain work on Astrology which science is closely associated with Astronomy because its predictions are based on positions of planets determined by astronomical calculations. Consequently it is advisable to say a few words on Jain astronomy. In order to understand the nature of the Jain system of Astronomy let us cast a glance over their cosmography.

*Jain Cosmography.* The Jains believe that the Universe is eternal, without a beginning or an end. They have, therefore, no cosmology, but have a cosmography—peculiar to themselves, especially with regard to the upper regions. The Universe proper or *Loka* extends as far as the *dharmastikaaya* and the *adharmastikaya*—the media of motion and rest respectively—exist. Beyond the *Loka* there is *Aloka* or absolute space. The *Loka* is conceived to be in the form of a standing woman with her arms akimbo. It is divided into three parts corresponding to the three parts of the woman's body. The upper[1] region(ऊर्द्धलोक) represents the bust of the figure and comprises the aerial abodes (विमान) of the Vaimanika gods. The middle region(तिर्यग लोक)represents the waist and consists of that portion of the earth Ratnaprabha upon which men live together with the part of the sky occupied by the heavenly luminaries.

---

(1) The conception of the regions being upper or lower has a reference to the Rucaka point formed of four particles at the centre of the Meru. Perpendicularly above the Rucaka there is a similar point in the heavens. The middle region extends 900 yojanas below and 900 yojanas above the Rucaka point Thus it comprises the upper layer of the Ratnaprabha earth to a thickness of 900 yojanas together with the atmosphere to the same height.

जगत्त्रयं त्वधस्तिर्यगूर्ध्वलोक विभेदत: ।
अधस्तिर्यगूर्ध्वभावो रुचकापेक्षया पुन: ॥ ४८१ ॥
मेर्वन्तर्गोस्तनाकारचतुर्व्योमप्रदेशक: ।
रुचकोऽधस्तादूगूर्ध्वं मेव मष्ट प्रदेशक: ॥ ४८२ ॥
तिर्यग् लोकस्तु रुचकस्योपरिष्टादधोपि च ।
योजनानां नव नव शतानि भवति स्फुटम् ॥ ४८३ ॥

Trishashtisalakapurushacaritra, Parvan II, Canto 3.

The lower regions (अधोलोक) represents the lower limbs and includes the seven earths in the midst of each of which lies a hell named after its own earth. These earths which gradually increase in size as we go down, are named रत्नप्रभा' paved with sharp stones, or abounding in diamonds, rubies etc' शर्कर प्रभा 'paved with pointed stones of sugar-loaf shape' वालुका प्रभा 'sprinkled with sand', पंकप्रभा 'full of mud', धूमप्रभा 'filled with smoke' तमःप्रभा 'filled with darkness', and महातमःप्रभा 'filled with thick darkness.'

The middle region is a flat round surface formed of concentric rings which represent alternately seas and islands, with the continent of Jambudvipa lying at the centre.

Jambudvipa is surrounded by the Salt sea ( लवण समुद्र ), the latter by the island (or Continent) of Dhatakikhanda, this again by the Black Sea ( कालोदधि ); and around this lie successively the islands of Pushkara, Varuna, Kshira, *Ghrita*, Ikshvaku, Nandisvara, Aruna and many others each of which is encircled by a sea of the same name. The total number of islands and seas is countless, the last sea being the Svayambhuramana. Each succeeding ring of island and sea has a width double the perceding one ; thus the Jambudvipa has a diametre of 100,000 Yojanas ; the width of the Salt sea ring is 200,000 Yojanas, that of the Dhataki Khanda ring 400,000, of the Black sea ring 800,000 Yojanas and so on.

The seas and islands are separated from one another by high walls called Jagati which like the rampart of a town, have four gates one in each direction, In the centre of the Jambudvipa stands the mountain Meru, 100,000 Yojanas high and 10,000 Yojanas wide at the base. There are six more ranges which run parallel to each other from east to west and divide the whole continent into seven countries. There are several river systems all of which fall into the salt sea. The names of the the countries and mountain ranges from South to North are Bharata, Himavat (*mt.*) ; Haimavanta, Mahahimavat (*mt.*) ; Hari, Nishadha (*mt.*) ; Mahavideha ; Nila (*mt,*) ; Ramyaka, Rukmin (*mt.*) . Hairanyavata Sikharin (*mt.*) ; and Airavata. Bharata and Airavata are further divided into Northern and Southern halves by their Vaitadhya Mountains.

---

(1) *Trishashtisalaka purushacaritra*. Parvan I. Sarga I, *vv.* 22-36 : cf. *Markandeya* Purana, *chap.* 56 (Bombay edition) ; *chap.* 59 (Calcutta edition).]

The central country of Mahavideha (or simply Videha) is the largest of all, Its two halves. lying to the East and West of Mount Meru are called the Purva (Eastern) and Apara (Western) Videha respectively. Each of these halves is subdivided into sixteen provinces named Vijayas.

Around the Mount Meru there are two small regions in the form of semi-circles, called the Uttarakuru (Northern) and the Devakuru (Southern). They are lands of twins whose wants are satisfied by the desire-granting trees ( कल्प वृक्ष ). The condition of the first Ara is always present there.

A little above the surface of the earth commences the series of the heavenly bodies or the Jyotishka gods which are divided into five classes, *viz.*, the suns, the Moons, the planets ( ग्रह ) the constellations (नक्षत्र) and other stars (तारक) The nearest to the earth are the stars, being 790 from it. Ten Yojanas above them are the suns. Eighty Yojanas above the suns are the Moons. Four Yojanas above them are the constellafions. Four Yojanas further are the Budhas, three Yojanas above them are the Sukras three yojanas above them are the *Brihaspatis* : three Yojanas above them are the Mangalas ; and three Yojanas above them are the Sanaiscaras. Thus the heavenly bodies exist upto 900 Yojanas above the earth.

Far above the heavenly bodies begins the upper region comprising a reries of celestial abodes of gods ( विमान ) These abodes are divided into three classes according to their distance from the earth and the status of their denizens. The lowest class consists of twelve *Kalpas* which form the breast of the *Loka*-figure. Above the Kalpas stands the series of nine *Graiveyaka* vimanas, respresenting the neck of the *Loka*-figure. Above them are the five Anuttara or the best abodes which correspond to the crown of the *Loka*-figure The denizens of *Kalpas* have different social ranks among them as men have on the earth, whereas the denizens of the Graiveyoka and Anuttara abodes are all equal among themselves. They are consequently called *Ahamindras i. e.*, masters of their self.

Above these abodes or vimanas the universe (loka) tapers into an end in the region called *Ishat-Pragbhara*, which is shaped like an umbrella It is called the *Siddha-sila* on account of its vicinity to the end of the *Loka*—the resting place of the *Siddhas* or the redeemed souls.

Now we come to our proper subject of Astronomy and Astrology. According to the Jains the heavenly bodies are separate worlds similar to ours inhabited by creatures called Jyotishka or luminary gods having human form but possessing supernatural powers. They are of five kinds, *i e*, the Suns, the Moons, the planets, the consiellations and miscellaneous stars. They in their vimanas revolve round the Meru mountain over the regions inhabited by man and make it possible to measure time. With other aspects of these gods, such as their birth, age, bodily stature, physical power, their stately magnificence, their nature, their religion, their relation with man etc. we are not concerned here.

The Jains in common with the Puranas regard the earth to be a flat and circular surface surrounded alternately by innumerable rings of seas and continents This view of the Jains has been characterised as fanciful by Bhaskaracarya in his *Siddhanta-siromani* who held that the earth was a sphere.

As regards the orbits of the planets the Jains conceive them to be concentric circles ( मण्डल ) separated by equal spaces. The opinion that the *mandalas* were spiral is also recorded in the Jain sutras. The method of reckoning time also is peculiar to the Jains. In some respects it resembles that found in the *Jyotirvedanga*. The following points are worth noting :—

1. The Jaina calculation of time is based on a 5-yearly yuga containing 60 months or 1830 days. This makes a year to be of 366 days and a month of $30\frac{1}{2}$ days.

2. The begininng of the yuga is marked by

   (*a*) the sun's commencement of its journey to the south ( दक्षिणायन ),

   (*b*) the moon's course being northward ( उत्तरायण ),

   (*c*) the tithi being the first of the dark half of Sravana

   (*d*) the Karana being Balava, and

   (*e*) the naksharra being Abhijit.

3. A yuga contains 62 luner months, (candramasa) each of $29\frac{32}{62}$ solar days.

4. A lunar year (candravarsha) contains $354\frac{12}{62}$ solar days.

5. A tithi is a lunar day (candra dina) of $29\frac{32}{62}$ muhurta or 59[illegible] ghatikas.

6. The moon changes its course (अयन) in the Abhijit and the Pushya nakshatras.

7. There are two intercalarory launar months in a yuga, i.e. the first two years are ordinary, the third is abhivardhita (leap) having two Ashadha months, the fourth is ordinary and the fifth is leap having two Pausha months.

8. There are 28 nakshatras including the Abhijit. Their names and order are the same as in the Hindu system but their duration in muhurtas (=2 ghatikas) is 30, 15, 30, 45, 30, 15, 45, 30, 15, 30, 30, 45, 30, 30, 15, 45, 30. 15, 30, 30, 45, $9\frac{27}{60}$ (Abhijit), 30, 30, 15, 30, 45, 30.

## Jaina literature on Astronomy and Astrology.

(1) *The Canon.*

The sacred scriptures (sruta) of the Jains are called the Angas, twelve in number of which the twelfth is lost for ever. The eleven Angas, now available, are held authoritative by the Svetambaras only. Corresponding to the 12 angas there are 12 upangas The division into Angas and upangas is arbitrary without any regard to their contents. The upangas Nos. 5—7, i.e., Jambudvipaprajnapti, Suryaprajnapti and Candraprajnapti are "Scientific" works and deal with geography, astronomy cosmology and chronometry, Of these the Jambuvipaprajnapti contains the mythical geography of the Jains In the description of Bharatavarsha (India), however, the legends of King Bharata occupy much space.

The Suryaprajnapti contains a systematic presentation of the astronomical views of the Jains. It deals with the orbits which the sun describes during the year, with the rising and setting of the sun, with the speed of the course of the sun through each of its 184 circuits, the light of the sun and the moon, the measure of the shadow at various seasons of the year, the connection of the moon with the lunar mansions, the waxing and waning of the moon, the velocity of the five kinds of heavenly bodies, the qualities of the moonlight, the number of suns in Jambudvipa etc. As the work deals with the sun as well as with the moon, it almost looks as though the original Candraprajnapti had been worked in the Suryaprajnapti. The Candraprajnapti as its title shows should deal with an astronomical theory of the heavens based upon the moon. But coriously enough the Candraprajnapti is almost wholly identical in all available manuscripts with the Suryaprajnapti. It is probable that the Candraprajnapti was originally a separate work from the Suryaprajnapti.

2. *"Secondary" or "Substitute" Canon.*

The Digmabaras hold that the original canon is lost and what the Svetambaras regard as canon is not authoritative. They have, however, produced a "secondary canon" which might perhaps be more correctly termed a "substitute Canon." They sometimes describe it as the "four Vedas" This "Canon" cosists of a number of important texts of later times classified into four groups (anuyogas) :

(1) Prathamanuyoga—legendary works describing the biographies of the 63 eminent persons (salakapurushas) *i.e.* 24 Tirthankaras, 12 Cakravatins, 9 Baladevas, 9 Vasudevas and 9 Prativasudevas This group includes the Puranas (Padma—, Harivamsa—, Trishashtilakshana—, Maha—, and Uttara—Purana)

2 Karananuyoga—Cosmological works Suryaprajrnapati, Candraprajuati and Jayadhavala ;

3. Dravyanuyoga—philosophical works of Kunda-Kunda, Umasuami's Tattvarthadhigama—Sutra with commentaries and Samantabhadra's Aptamimansa with commentaries

4. Carananuyoga—ritual and disciplinary works such as Vattakera's Mulacara and Samantabhadra's Ratnakarandasravakacara and Trivarnacara We are concerned with the second class, *viz* the Karananuyoga.

3. *Non-Canonical works*

In the course of centuries several works were produced both by the Svetambaras as well as by the Digambaras, that deal, systemically with the subjects explained in the prajnaptis noted above. A few such works can be picked up from any catologue of manuscripts Fragmentary treatises dealing with particular subjects are numerous.

Having given a short account of Jaina Cosmology (including Astronomy) and of the old literature on the subject for the sake of readers not acquainted with them, I now come to the Trailokyaprakasa itself; its contents, its author, time and language.

The Trailokyaprakasa is essentially a *lagna*-work, *i.e.*, it deals with the methods of prediction by examination of a horoscope. Works of this type were very popular in India and the production of new ones continued till as late as a century or two ago. Tp. is divided into a number of sections ( प्रकरण ).

Tp. too, was fairly popular as is shown by a pretty large number of its manuscripts still extant.

## CONTENTS

After saluting the Jina Parsva natha, the author praises the *lagna* (horoscope) as the best of everyrhing in the world. He calls it by all auspicious names like God, Master, brightest Light, father, mother, brother, the planets etc.

In *v.* 6 it is admitted that the science of horoscope was widely prevalent among the mlecchas from whom it was borrowed by the Jains.

In the next vetse stress is laid on the use of instruments (तुला तु मुख्य यन्त्राणि) which provide accurate data to proceed with the sixfold calculations. In the succeeding verses the author explains the title of the work, *i.e.*, it sheds light on the three worlds (the upper, middle and lower regions) through all the three ages (past, present and future) Hereafter the technical terms are defined in a few verses. All sorts of attributes connected with man and nature are applied to the planets and the *rasis, e, g.* caste, colour, smell, age, anger. kindness, wisdom. folly, male, female, neuter, enemy, friend, etc. etc.

Next come the predictions They relate to the different aspects of human life and needs such as birth of a son ; recovery of health ; acquision of wealth, land etc ; marriage ; knowledge ; profit or loss in trade, going on a journey ; victory or defeat in war or law suit ; approach of death ; forecast of weather esp fall of rain ; rise and fall in prices, etc. Various methods are described to predict about the matters just enumerated.

*The Author.*

The author's name is mentioned as Hemaprabha Suri disciple of Devendra Suri at several places in the text, *e.g.*, in Vv. 225, 299, 328, 373, 1113, etc. In verse 225 the name is skilfully woven and can be msde out by taking the first two letters of each pada as श्री हे । मप्र । भसू । रिभि: ॥ The colophons at the end of the sections and the work repeat the name देवेन्द्र सूरि शिष्य हेम प्रभ सूरि This leaves no doubt about the authorship of the treatise. No information about the author, however, is available beyond this. About his personality absolutely nothing is known. Hemaprabha does not give his guruparampara (genealogy of teachers) beyond naming his immediate teacher, nor he mentions the name of the gaccha to which he belonged. Under these circumstances it is difficult to say anything more with certainty.

The names Devendra and Hemaprabha are very common in Jain history. About half a dozen authors bore the first

name and three or four the second. No other reference has so far come to light where both these names are mentioned together having the relation of teacher and disciple In the Nagendra gaccha there was a Devendra and a Hemaprabha who flourished about the time when the Tp. was composed, *viz.*, Sam. 1305, the year given by Prof H. D. Velankar in his Jinaratnakosa as the date of composition of the Tp. perhaps on the authority of some manuscript.

*Language.*

Usually the writers of works on technical sciences like astrology, medicine, etc, are careless in grammatical matters. But our author writes a correct language. No case of deviation from grammar has been found in his work. Of course the Arabic words like मुथशिल (मुत्तसिल), मचकूल (मक़बूल), have not been spelt correctly. The author has ingeniously worked his name in verse 225 which reveals his poetic tendencies.

*Other works of Hemaprabha.*

Besipes the Tp. Hemaprabha is the author of a Meghamala containing about 100 verses noted in the *Jaina-Granthavali*, p. 356. Prof. H. D. Velankar, however, thinks it to be another title of Tp but that is an independent work by our Author as is shown by the Poona manuscript which contains it along with Tp. The Jaina-Granthavali p. 356 mentions another Meghamala of 400 verses without giving the author's name.

*Hindi Explanation.*

For the use of such readers as find it hard to follow Sanskrit, a Hindi explanation has been added to all the verses.

*Thanks,*

It is now my pleasant duty to offer thanks to those who co-operated in any way in the production of the present book First of all I should thank Dr L. Sarup, Principal Oriental College for inaugurating the copying work of manuscript of the TrailokyaPrakasa and for taking general interest in the Research work carried on by the Kushal Astrological Research Institute.

I must also thank Dr. Banarsi Das Jain, Reader in Hindi, Oriental College, Lahore for lending me the MS of the TP belonging the Jaina Bhandar of Ambala city and for writing a foreword to the present edition.

Pt. Jagdish Lal Shastri Assistant Director, Publications Department, and Pt. Raghu Nath Sahai Shastri, Manager deserve thanks for the help they gave me in their own way. Pt. Satya Narayan Pathak Acharya Vishvabandhu, Pt. Bhagavad Datt, Tyagmurti Gosvami Ganesh Datta and Pt. Murali Dhar Jyotishacarya are to be thanked for occasional suggestions given by them.

I must thank Mr. S. S. Saith and Pt. Bala Sahai Shastri of the Panjab University Library for the facilities they afforded me in consulting MSS and books in their charge.

Dr. P.K. Gode of the Bhandarkar Research Institute Poona; the Director Gaekwad Institute Baroda; Shriyut Agar Chand Nahta of Bikaner and Shriyut Jugal Kishor Mukhtar of the Vir Sewa Mandir Sarsawa (Saharanpur) deserve my thanks for the loan of MSS, and for furnishing copies of passages and references from other works.

M/s. Ram Lal Kapur and sons put me under obligation by supplying paper at control rate.

Last but not the least, I am indebted to Mahant Girdhari Das, Rai Bahadur Janki Das Kapur, Proprietor Janki Das & Co. L. Bishan Das Kapur, 23 B Model Town, Lahore and Gos. Ishwar Das for financial help given by them to meet the cost of publication of the TP.

BHRIGU ASHRAM,
52 C Model Town
Lahore.
*Basant Panchmi Sam*, 2002

R. S. SHARMA.

## ADDITIONAL NOTES.

p. 9 § 1. See H. D. Velankar: *Jinaratnakosa s. v.* (I) त्रैलोक्य प्रकाश where two different works of the same name are mentioned.

p 9 § 3. This account is based on "Jaina Cosmology" an appendix in Dr. Banarsi Das's *Jaina Jatakas*, Lahore, 1924.

p. 9 § 3. The heavenly bodies (planets and stars) are included in the middle region. The Vaimanika gods of the upper region are different from the Jyotishka gods.

p 10 § 1. For Pauranic descriptions of the hells see :

| | | |
|---|---|---|
| *Markandeya Purana* | | Chaps. 12 and 14 |
| Vayu | ,, | Chap. 101. |
| Brahmanda | ,, | IV. 2. |
| Vishnu | ,, | II. 6 VI. 5. |
| Matsya | ,, | Chap. 39. |
| Vamana | ,, | Chap. 11. |
| Varaha | ,, | Chap. 198-206. |
| Brahma | ,, | Chap. 214-18. |
| Garuda | ,, | Smriti chapters of Uttarakhanda |

p. 10 § 2. For the mythical geography of India, read W. Kirfel: *Kosmographie der Inder*, Bonn and Leipzig 1920.

p. 11 § 3. In the Jambudvipa alone there are two sets of 88 grahas and other stars—*Trilokasara* vv. 363-70. According to the Jainas there are 8 mahagrahas, *viz.*, (1) Chandra, (2) Surya, (3) Sukra, (4) Budha, (5) Brihaspati, (6) Angara (mangala), (7) Sanaiscara and (8) Ketu. (Sthananga, Sutar 612). The theory of multiplicity of the heavenly bodies has been bitterly criticised by Hindu astronomers, "But what shall I say of thy folly, O Jain, who without object or use, supposest a double set of constellations, two suns and two moons? Dost thou not see that the visible circumpolar constellations take a whole day to complete their revolutions?" W. Brennand's *Hindu Astronomy* p. 86, quotation from Suryasiddhanta.

p. 12 § 1. ( १ ) ज्योतिष्का: सूर्यश्चन्द्रमसो ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णतारकाश्च ॥१३॥

मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥ १४ ॥

तत्कृत: कालविभाग: ॥ १५ ॥

*Tattvarthadhigamasutra*, Chapter IV.

p. 13 § 4. G. Thibaut: *On the Suryaprajnapti* in JASB 1880, 49, 107 ff., 181 ff.

p. 13 § 4. Cf. the Brahmanic term Sruti. The terms Anga, upanga and sutra are common to both the faiths, even to the Buddhist.

p. 13 § 4. Taken from Winternitz: History of Indian Literature, Vol. II, p. 457.

p. 14 § 1. *Ib.* p. 474.

p. 15. See *Jaina Granthavali*. Section on जैन विज्ञान

p 16 Mohanlal Dalichand Desai: जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास (Index of authors).

p. 14 *Ibid* Sections 495 and 598.

ॐ स्वस्ति श्रीगणेशाय नमः ।

## श्रीहेमप्रभसूरिविरचितः

# त्रैलोक्यप्रकाशः

श्रीमत्पार्श्वाभिधं[1] देवं केवलज्ञानभास्करम् ।
वाग्देवीं खेचरांश्चापि नत्वा लग्नमहं ब्रुवे ॥१॥
लग्नं देवः प्रभुः स्वामी लग्नं ज्योतिः परं मतम् ।
लग्नं दीपो महान् लोके लग्नं तत्त्वं दिशन् गुरुः ॥२॥
लग्नं माता पिता लग्नं लग्नं बन्धुर्निजः स्मृतम्[3] ।
लग्नं [4]वृद्धिर्महालक्ष्मीर्लग्नं देवी सरस्वती ॥३॥
लग्नं सूर्यो विधुर्लग्नं लग्नं भौमो बुधोऽपि च ।
लग्नं गुरुः कविर्मन्दो लग्नं राहुः सकेतुकः ॥४॥

---

वक्रतुण्ड ! महाकाय ! सूर्यकोटिसमप्रभ !
अविघ्नं कुरु मे देव ! सर्वकार्येषु सर्वदा ॥

मैं, ज्ञानसूर्य अपने इष्टदेव पार्श्वनाथ, सरस्वती और नक्षत्रों को नमस्कार कर, लग्न के विषय में कहता हूँ ॥१॥

लग्न ही देवता है, लग्न ही स्वामी है, लग्न ही परम प्रकाश अर्थात् ज्ञान है । लग्न ही संसार में महान् दीप है और लग्न ही तत्त्व को दिखलाने वाला गुरु है ॥२॥

लग्न ही माता है, लग्न ही पिता है और लग्न ही अपना बन्धु है । लग्न ही वृद्धि का कारण महालक्ष्मी है । लग्न ही देवी सरस्वती है ॥३॥

लग्न ही सूर्य है, लग्न ही चन्द्रमा है, लग्न ही मंगल और बुध है । लग्न ही बृहस्पति, शुक्र और शनि है । लग्न ही राहु और केतु है ॥४॥

---

1. श्रीसर्वज्ञाभिधं for श्रीमत्पार्श्वाभिधं A, A[1]. 2. The opening verse is a salutation to *Sriparsvadeva*, Vagdevi, i.e, the goddess of speech and the grahas. It is clear, therefore, that the author of this work is Jain. 3. सताम् for स्मृतम् A, A[1], B, Bh. 4. मूर्ति० for वृद्धि० Bh.

लग्नं पृथ्वी जलं लग्नं लग्नं तेजस्तथानिलः ।
लग्नं व्योम परानन्दो लग्नं विश्वमयात्मकम् ॥५॥
म्लेच्छेषु विस्तृतं[1] लग्नं कलिकालप्रभावतः ।
प्रभुप्रसादमासाद्य जैने धर्मेऽवतिष्ठते[2] ॥६॥[3]
तुला तु[4] (?) मुख्ययन्त्राणि तिष्ठन्ति किल ताजिके ।
षड्वर्गशुद्धिमाख्यान्ति लग्ननिश्चयमिच्छताम् ॥७॥
दिव्यज्ञान[5]प्रतिच्छन्दं[6] करणी[7] केवलस्य च ।
उपकाराय लोकानां लग्नशास्त्रं करोम्यहम्[8] ॥८॥

---

लग्न ही पृथ्वी है, लग्न ही जल है, लग्न ही अग्नि और वायु है। लग्न ही आकाश है। ब्रह्माण्डस्वरूप लग्न ही परम आनन्द है ॥५॥

कलियुग के प्रभाव से लग्न म्लेच्छों में विस्तृत है। प्रभु की प्रसन्नता से जैन धर्म में भी विद्यमान है ॥६॥

ताजिक में भावों के जानने के लिये मुख्य साधन यन्त्र हैं। इन से लग्न का निश्चय करने वालों को छः वर्गों का शुद्ध ज्ञान हो जाता है ॥७॥

दिव्यज्ञान तथा केवलज्ञान के कारणरूप इस लग्नशास्त्र को मैं उपकार के लिये बनाता हूं ॥८॥

---

1. विश्रुतं for विस्तृतं Bh. 2. ऽवतार्यते for ऽवतिष्ठते B., Bh. 3. The science of astrology and astronomy was to a greater extent prevalent amongst the Greeks in the days of Alexander the Great. This was due to the iron age, according to our author.

If the reading 'अवतार्यते' instead of 'अवतिष्ठते' is adopted it would suggest that this science is borrowed from foreigners, Greeks and the like who are called here Mlecchas.

The fact of the foreign influence in this branch of literature is disputed by some Indian scholars.

4. प्रभाव, for तुला तु A; शुलाव A[1]; प्रभाव B., शुभावेमुख्य for तुला तु मुख्य Bh. 5. ज्ञातृ for ज्ञान A[1]. 6. ० च्छन्दः for ० च्छन्दं Bh. 7. करणं for करणी A, A[1]. 8. धर्मशास्त्रं स्मराम्यहम् for लग्नशास्त्रं करोम्यहम् B.

त्रीन् कालान् त्रिषु लोकेषु यस्माद्बुद्धिः प्रकाशते ।
तत् त्रैलोक्यप्रकाशाख्यं ध्यात्वा शास्त्रं प्रकाश्यते ॥९॥
ब्रह्मणाऽऽचेष्टितं साक्षात्[1] ज्ञानमानन्दमिश्रितम् ।
स्फुटीकर्तुमिवारब्धं चतुर्जैनतनूद्भवम् ॥१०॥
ब्रूमो ग्रहरहः,[2] सौम्याः सोमज्ञगुरुभार्गवाः ।
तमोऽर्कार्किकुजाः क्रूराः राहोः केतुश्च सप्तमः ॥११॥
सक्रूरो ज्ञः शश्यफल[3]श्चतुर्दश्याद्यह[4]स्त्रये ।
शनिराहुबुधाः क्लीबाः शुक्रेन्दू स्त्री परे नराः ॥१२॥
बुधः शिशुर्युवा भौमः शुक्रेन्दू मध्यमौ परे ।
वृद्धा बुधे विधौ काले[5] बालिका स्त्री प्रकीर्तिता ॥१३॥

तीनों कालों में, तीनों लोकों में, जिस से बुद्धि का प्रकाश होता है, इस प्रकार के त्रैलोक्यप्रकाश नामक शास्त्र का मैं ध्यानपूर्वक प्रकाश करता हूँ ॥६॥

आनन्दयुक्त जिस ज्ञान का ब्रह्मा ने साक्षात् अनुभव किया, जैन के चार आश्रमों से उत्पन्न उस ज्ञान को मैंने प्रकट करना आरम्भ किया है ॥१०॥

ग्रहों के रहस्य को हम कहते हैं। चन्द्र, बुध, बृहस्पति और शुक्र शुभ ग्रह हैं। राहु, सूर्य, शनि और मंगल पापग्रह हैं। राहु से सातवां केतु भी ( पापग्रह ) है ॥११॥

बुध अथवा चन्द्रमा यदि क्रूरग्रह के साथ पड़े हों तो चतुर्दशी आदि तीन दिनों में उनका शुभ फल नहीं होता। शनि, राहु और बुध – ये नपुंसकग्रह हैं। शुक्र और चन्द्रमा स्त्रीग्रह हैं। इनके अतिरिक्त अन्य ग्रह पुरुष है ॥१२॥

बुध बालक है। मंगल युवा है। शुक्र और चन्द्रमा मध्यम अवस्था के हैं। इनके अतिरिक्त अन्य ग्रह वृद्ध हैं। प्रश्नकाल के लग्न में बुध या चन्द्रमा हो तो स्त्री बालिका होती है ॥१३॥

1. This *pada* clearly expresses the antiquity and the Aryan origin of this science, although owing to the perversity of the age it spread amongst the Mlecchas ( Cf. v. 6 ). 2. ग्रहहरं for ग्रहरहः A[1], 3. शस्यफल० for शश्यफल० Bh. 4. श्चतुर्दिशाद्य for श्चतुदश्याद्य A,A[1]. 5. बाले for काले A[1], B.

चन्द्रात्सप्तमगेऽर्के विधवामसतीं कुजे बुधे चापि ।
ससुतां गुरौ च शुक्रे ससपत्नीं निःस्वतां च शनौ ॥१४॥[1]
शनौ वन्ध्या[2] गुरौ सूता[3] भौमे दैत्यगुरौ रवौ ।
मूर्तौ[4] वा सप्तमे स्थाने यद्यायान्ति ग्रहा अमी ॥१५॥
दन्तुरां श्यामिकां जीर्णां शनौ राहौ वयोतिगाम् ।
प्रश्ने नारीं सदा ब्रूयात् पुमांसं चापि लग्नवित् ॥१६॥
आषाढो भास्करो ज्ञेयो ज्येष्ठमासः कुजे पुनः ।
श्रावणः सबले शुक्रे चन्द्रे भाद्रपदः पुनः ॥१७॥
पौषश्च मार्गशीर्षश्च गुरौ ज्ञेऽश्विनकार्तिकौ ।
चैत्रवैशाखकौ[5] राहौ मन्देऽथ माघफाल्गुनौ ॥१८॥

---

प्रश्नकाल में यदि सूर्य चन्द्रमा से सप्तम हो तो कन्या विधवा होगी, मंगल और बुध हों तो व्यभिचारिणी, बृहस्पति हो तो पुत्रयुक्ता, शुक्र हो तो सौतिनवाली, शनि हो तो दरिद्रा होगी ॥१४॥

यदि ( चन्द्रमा अथवा लग्न से सप्तम ) शनि हो तो वन्ध्या, बृहस्पति, मंगल, शुक्र और सूर्य में से कोई ग्रह हो तो सन्तान प्राप्त करने वाली कन्या का जन्म होगा ॥१५॥

यदि प्रश्नकाल में प्रश्नलग्न से सप्तम शनि वा राहु हों तो ऊंचे दांत वाली, श्यामवर्णा, दुर्बल और वृद्ध स्त्री वा पुरुष होंगे ॥१६॥

प्रश्नकाल में यदि सूर्य ( बली ) हो तो आषाढ़ में, मंगल ( बली ) हो तो ज्येष्ठ में, शुक्र बली हो तो श्रावण में, चन्द्र बली हो तो भाद्रपद में ( प्रसव होगा ) ॥१७॥

प्रश्नलग्न में यदि गुरु बली हो तो मार्गशीर्ष वा पौष, यदि बुध हो तो आश्विन वा कार्त्तिक, यदि राहु हो तो चैत्र वा वैशाख और यदि शनि बली हो तो माघ वा फाल्गुन में (प्रसवकाल समझना चाहिए) ॥१८॥

---

1. This verse is missing in B. 2. वृद्धां for वन्ध्या A., B. 3. सुतां for सूता A, B. For this line Bh. reads :— शनौ वृद्धां गुरुसुतां भौमादित्ये गुरौ रवौ । 4. I have adopted the reading of मूर्तौ for मूर्ते (Amb.) 5 One of the peculiarities of this ms. is the use of ष for ख, as in वैशाख ।

मार्गवेन्दू जलचरौ ज्ञजीवौ ग्रामचारिणौ ।[1]
राहुक्षितिजमन्दार्कान् भवतेऽरण्यचारिणः ॥१९॥
प्रातःकाले जीवबुधौ मध्याह्ने कुजभास्करौ ।
अपराह्ने चन्द्रसितौ[2] सन्ध्याकाले तमःशनी ॥२०॥
ऊर्द्धदृष्टी कुजादित्यावधोदृष्टी तमःशनी ।
तिर्यग्दृष्टी भृगुबुधौ चन्द्रजीवौ समेक्षणौ ॥२१॥
भौमार्कौ पित्तमाख्यातौ श्लेष्मिकौ चन्द्रभार्गवौ ।
समधातू गुरुबुधौ ग्रहाः शेषास्तु वातिकाः ॥२२॥
कटुकौ[3] कुजमार्तण्डौ क्षाराम्लौ चन्द्रभार्गवौ ।

---

शुक्र और चन्द्रमा जलचर हैं। बुध और बृहस्पति ग्रामचारी हैं। राहु, मंगल, शनि और सूर्य बनचर कहे गये हैं ॥१९॥

बुध और बृहस्पति प्रातःकाल में, मंगल और सूर्य दोपहर में, चन्द्र और शुक्र अपराह्नकाल में, राहु और शनि संध्याकाल में बली होते हैं ॥२०॥

मंगल और सूर्य की दृष्टि ऊपर की ओर होती है। राहु और शनि की दृष्टि नीचे की ओर होती है। शुक्र और बुध की दृष्टि तिरछी होती है। चन्द्र और गुरु की दृष्टि चारों ओर होती है ॥२१॥

सूर्य और मंगल की प्रकृति पित्तवाली होती है। चन्द्र और शुक्र कफप्रकृतिक हैं। गुरु और बुध कफ-पित्तप्रकृतिक होते हैं। और अन्य ग्रह वातप्रकृतिक होते हैं ॥२२॥

सूर्य और मंगल कडुवे रस वाले, चन्द्र और शुक्र क्षार तथा खट्टे रस वाले, बुध और बृहस्पति कषाय रस वाले, शनि और राहु मधुर और तिक्त रस वाले होते हैं ॥२३॥

---

1. B. and Bh. often differ from the Amb. text. For this line they read :—जीवबुधौ ग्रामचरौ जलजौ चन्द्रभार्गवौ। It may be remarked here, that the readings of the ms B. have not been recorded in all places as the ms. is only a shorter recension of the present work. It has therefore been dismissed for the collation work except at places where the verses are tolerably in consonance with the text of adoption. 2. मितौ for सितौ A. 3. A, B. The text is कुटकौ which is obviously incorrect.

बुधः काषायिको जीवो मधुतिक्तौ तमःशनी ॥२३॥[1]

जीवो[2] गुरुबुधौ केतु[3]शनिराहुकुजेन्दवः ।

शुक्रार्कौ मूलमाधिक्यं बलं[4] यस्याधिकं तु तत् ॥२४॥

द्विपदौ भार्गवगुरू भूपुत्रार्कौ[5] चतुष्पदौ ।

पक्षिणौ बुधसौरी च चन्द्रराहू सरीसृपौ ॥२५॥

विप्रौ शुक्रगुरू क्षत्रं कुजार्कौ[6] शूद्र इन्दुजः ।

इन्दुर्वैश्यः स्मृतो म्लेच्छौ सैंहिकेयशनिश्चरौ ॥२६॥[7]

राजा मुनिः स्वर्णकारो द्विजो वणिग् विशां पतिः ।

दासोऽन्त्यजः सूर्यमुख्याः[8] क्रमादष्टौ ग्रहा अमी ॥२७॥

---

गुरु और बुध में गुरु का बल अधिक है । केतु, शनि, राहु, मंगल और चन्द्रमा से शुक्र और सूर्य का बल अधिक होता है ॥२४॥

शुक्र और गुरु दो चरण वाले ग्रह माने गये हैं । सूर्य और मंगल चतुष्पद अर्थात् चार चरणों वाले ग्रह हैं । बुध और शनि पक्षिजातिक हैं । चन्द्रमा और राहु कीटजातिक हैं ॥२५॥

गुरु और शुक्र ब्राह्मण हैं । सूर्य और मंगल क्षत्रिय हैं । बुध शूद्र है । चन्द्रमा वैश्य है । शनि और राहु म्लेच्छ माने गये हैं ॥२६॥

सूर्य आदि आठों ग्रह क्रम से राजा, मुनि, सुनार, ब्राह्मण, बनिया, वैश्य, दास और चाण्डाल कहे गये हैं ॥२७॥

---

1. B. adds, after this verse, the following: कटुकक्षारतिक्तौ मिश्रौ मधुराम्लकषायकौ । यद्वार्काद्यबलाधिक्ये रसाधिक्यस्य निर्णयः । 2. Bh. adds a verse here : कटुक्षारास्तिक्तमिश्रे मधुराम्लकषायकाः । यद्वार्की ह्यबलाधिक्ये रसाधिक्ये सनिर्णयः 3. The reading केतु (A) for भानु is better, since the sun occurs in the third *pada* of this verse (शुक्रार्कौ) । 4 बले for बलं B., बाल Bh. 5. भूमिजार्कौ for भूपुत्रार्कौ A. 6. भौमार्कौ for कुजार्कौ A, A1. 7. For this verse B. and Bh. read :—ब्राह्मणौ भृगुजीवौ क्षत्रियौ रविमङ्गलौ । वैश्यस्तु चन्द्रमाः शूद्रो बुधो म्लेच्छौ तमःशनी । 8. If the reading of the text सूर्याख्याः is adopted a syllable would run too short and the metrical symmetry be ignored. The reading सूर्यमुख्याः as found in A, A1 and B is there-

स्थूल इन्दुः सितः खण्डश्चतुरस्रौ कुजोष्णगू ।
वर्तिलौ सौम्यधिषणौ दीर्घौ शनिभुजंगमौ ॥२८॥
भौमो रक्तो गुरुः पीतो बुधो नीलः शशी सितः ।
कविः शुभ्रो रविर्गौरः कृष्णौ राहुशनी पुनः ॥२९॥
कुजो ह्रस्वो बुधो मध्यः शशी दीर्घो लघुः सितः ।
सूक्ष्मः शनिस्तु शुषिरो दीर्घश्चोक्तो विशेषयोः ॥३०॥
मर्त्यौ चन्द्रबुधौ स्वर्ग्यौ गुरुसितौ विवरं परे ।
स्वस्थानस्थाः प्रयच्छन्ति नष्टद्रव्यादिकं ग्रहाः ॥३१॥
शुक्रे चन्द्रे भवेद्रौप्यं बुधे स्वर्णमुदाहृतम् ।
गुरौ रत्नयुतं हेम सूर्ये मौक्तिकमुच्यते ॥३२॥[1]

---

चन्द्रमा की आकृति स्थूल है । शुक्र कृश है । मंगल और सूर्य मध्यम शरीर वाले हैं । बुध और गुरु गोलाकार हैं । शनि और राहु लम्बे आकार वाले हैं ॥२८॥

मंगल का वर्ण सुरख है । गुरु पीला है । बुध नीला है । चन्द्रमा और शुक्र सफेद हैं । सूर्य का गौर वर्ण है । शनि और राहु काले वर्ण के है ॥२९॥

मंगल का स्वरूप छोटा है, बुध का मध्यम अर्थात न बड़ा न छोटा । चन्द्रमा का स्वरूप लम्बा है, शुक्र का छोटा है । शनि का स्वरूप सूक्ष्म और बृहस्पति का लम्बा कहा गया है ॥३०॥

चन्द्रमा और बुध मर्त्यलोक के ग्रह हैं । शुक्र और बृहस्पति स्वर्ग के ग्रह हैं । अन्य ग्रह पाताल के कहे जाते हैं । अपने अपने स्थान में बैठे हुए सभी ग्रह नष्ट वस्तु को देने वाले होते हैं ॥३१॥

चन्द्रमा अथवा शुक्र अपने स्थान में यदि हों तो रुपयों की प्राप्ति होती है । बुध के रहने पर सुवर्ण, बृहस्पति के रहने पर रत्न और सूर्य के रहने पर मोती की प्राप्ति होती है ॥३२॥

---

adopted. B and Bh. read for this verse:—चतुरस्रौ रविकुजौ वृत्तौ गुरुबुधौ स्मृतौ । राहुमन्दौ तथा दीर्घौ सितोध्वं स्थूलकः शशी ।

1. For this verse A., A[1], B. and Bh. read;—शुक्रे चन्द्रे भवेद्रौप्यं हेमजीवे सरत्नकम् । रवौ मुक्ता तमस्यस्थि कुजे त्रपु शनावयः ॥

भौमे प्रपु शनौ लौहं राहावस्थीति कीर्तयेत् ।
धातोर्विनिश्चये जाते विशेषोऽस्मादुदाहृतः ॥३३॥
शुक्रे चन्द्रे जलचारो देवतावसतिर्गुरौ ।
रवौ चतुष्पदस्थानमिष्टिकानिचयो बुधे ॥३४॥[1]
दग्धं स्थानं कुजे प्रोक्तं शनौ राहौ च बाह्यभूः ।[2]
तूर्ये स्थाने निधिर्वीक्ष्यो नष्टस्थापित एव च ॥३५॥
इष्टिकारक्तपाषाणताम्रशृङ्गिचतुष्पदाः ।
शृङ्खलायुधभेदानां धान्यधातोः कुजोऽधिपः ॥३६॥
चर्मरोमोपलारोहमहिषीदन्तसूकराः ।
मद्यपा मूषका रोगाः कथ्यन्ते सबले शनौ ॥३७॥

---

मंगल यदि अपने स्थान में हो तो मूंगे की प्राप्ति, शनि के रहने पर लोहे की, राहु में हड्डी की प्राप्ति कहनी चाहिये। इस प्रकार धातु के निश्चय होने पर इसी से विशेष बातें भी कहनी चाहिएं ॥३३॥

चन्द्रमा और शुक्र यदि अपने अपने स्थान में हों तो गोशाला में, गुरु यदि अपने स्थान में हो तो मन्दिर में, सूर्य यदि अपने स्थान में हो तो गोशाला में, बुध यदि अपने स्थान में हो तो ईंटों के ढेर अर्थात् भट्ठे आदि स्थानों पर निधि कहनी चाहिये ॥३४॥

मंगल के चौथे स्थान में होने से किसी जले हुए स्थान पर निधि होगी। शनि और राहु चौथे स्थान के हों तो बाहर की भूमि में निधि होनी चाहिये ॥३५॥

ईंटे, लाल पत्थर, तांबा, सींगों वाले पशु, जंजीर, शस्त्रविशेष तथा धान्य आदि धातुओं का मंगल स्वामी है ॥३६॥

चमड़ा, बाल, पत्थर के घर, भैंस, दांत, सूअर, शराबी लोग चूहे और रोग अधिक मात्रा में होते हैं यदि शनि बली हो ॥३७॥

---

1. A, A[1], B. and Bh. read for this verse :— जलाश्रयं शुक्रचन्द्रयोर्विष्टिकाश्रयकं बुधे। देवाश्रयं गुरौ तिर्यगाश्रयं कथयेद्भास्करे ॥ 2. Cf. B. and Bh. दग्धं स्थानं कुजे बाह्यद्वारं राहुशनैश्चरे।

शिप्रिकास्थालककचोलरूप्यकाणां बुधोधिपः ।
भृगुः प्रतिमाभरणगौल्यखाद्य[1]शुभस्रजाम् ॥३८॥
मणिमुक्ताशृङ्गिरत्नादीनां नाथस्तु भानुमान् ।
नौक्षारयोः शशी सर्वस्थलधान्याधिपो बुधः ॥३९॥
श्रीखंडागुरुकर्पूरकस्तूर्यामोदिवस्तुनः ।
स्वामी बृहस्पतिर्ज्ञेयो लग्नतत्त्वविदा पुनः ॥४०॥
एतेभ्यो ग्रहेभ्यो मणिमुक्तारत्नादिनिर्णयः ॥
आत्मचिन्ता भवेद्भानौ[2] कुटुम्बस्य[3] भृगौ पुनः ।
चन्द्रे च जननीचिन्ता भार्याचिन्ता बृहस्पतौ ॥४१॥
भ्रातृव्यस्य बुधे चिन्ता पितृपितृव्ययो रवौ ।
शनौ राहौ च शत्रूणामेवं चिन्ताः प्रकीर्तिताः ॥४२॥

---

शिप्रिका, स्थाल, कचोल, तथा रुपया आदि मुद्राओं का बुध स्वामी है। प्रतिमा अर्थात् देवमूर्ति, गहने, गोलाकार खाद्य पदार्थ तथा शुभ मालाओं का शुक्र स्वामी है ॥३८॥

मणि, मोती, सींघों वाले पशु तथा रत्न आदि वस्तुओं का स्वामी सूर्य है। नाव तथा खारी वस्तुओं का स्वामी चन्द्रमा है । सभी थल के धान्यों का स्वामी बुध है ॥३६॥

नारिकेल, अगर, कपूर, कस्तूरी आदि सुगन्धित वस्तुओं के स्वामी बृहस्पति हैं। लग्नतत्त्व के ज्ञाता को इस प्रकार जानना चाहिये ॥४०॥

[ इन ग्रहों के आधार पर मणि, मोती, और रत्न आदि का निर्णय समझना चाहिये । ]

सूर्य यदि सबल हो तो अपनी चिन्ता होनी चाहिये। इसी तरह शुक्र से कुटुम्ब की, चन्द्रमा से माता की, गुरु से स्त्री की चिन्ता होनी चाहिये ॥४१॥

बुध यदि सबल हो तो भाई के पुत्र की, सूर्य यदि सबल हो तो पिता तथा चचा की, शनि और राहु यदि सबल हों तो शत्रुओं की चिन्ता होनी चाहिये ॥४२॥

---

1. स्वाद्य for खाद्य Bh. 2. भौमे for भानौ A, A[1]. 3. दुर्बलस्य for कुटुम्बस्य Amb.

रविः कर्मणि लाभे[1] च बुधचन्द्रौ कुजः क्षितौ ।
पञ्चमे सप्तमे शुक्रः सुते जीवः शनिर्वृषे ॥४३॥
आयास्थानस्य भावा न भृगुसुतमृते नो शनिं धर्मभावा
नो सूर्यं[2] कर्मभावा न भृगुहिमकरौ लाभभावा भवन्ति ।
विद्यास्थानस्य भावा न गुरुमवनिजं नावनिस्थानभावा
नेन्दुं मृत्युर्न सर्वे न तनयपदं भार्गवश्वेतरश्मी ॥४४॥[3]
रवी राजा शशी राज्ञी मङ्गलो मण्डलाधिपः[4]
ज्ञः कुमारो गुरुर्मन्त्री सितो नेता परौ[5] भृती ॥४५॥
प्राच्यादीशा रविसितकुजराहुयमेन्दुसौम्यवाग्यतयः[6] ।
काले स्वमनः सत्त्वं [7]वाङ्मतिसुखकामदुःखानि ॥४६॥

---

सूर्य दसवें में, बुध और चन्द्रमा ग्यारहवें में, मंगल लग्न में, शुक्र पञ्चम वा सप्तम स्थान में, बृहस्पति पांचवे में और शनि वृष में हो तो भी उपर्युक्त बात जाननी चाहिये ॥४३॥

सप्तम स्थान में शुक्र नहीं रहे तो सप्तम भाव का दौर्बल्य कहना चाहिये। इस प्रकार ९वें में शनि, १०वें में सूर्य, ११वें में शुक्र वा चन्द्रमा, विद्यास्थान में बृहस्पति, धनस्थान में मंगल, ८वें में चन्द्रमा, पुत्रस्थान में शुक्र वा सूर्य न रहें तो उन उन भावों की दुर्बलता कहनी चाहिये ॥४४॥

ग्रहों में सूर्य राजा है। चन्द्रमा रानी है। मंगल मंडलेश है। बुध राजकुमार है। बृहस्पति मन्त्री है। शुक्र नेता है। अन्य दो शनि और राहु नौकर हैं ॥४५॥

सूर्य, शुक्र, मंगल, राहु, शनि, सोम, बुध और बृहस्पति क्रम से पूर्वादि दिशाओं के स्वामी होते हैं। वे समय पाकर मनोबल, सुबुद्धि, कामपूर्ति तथा सुख और दुख के देने वाले होते हैं ॥४६॥

---

1. भावे for लाभे Amb. 2. Amb. reads सूर्यो for सूर्यं। 3. This verse is missing in Bh. 4. मण्डलेश्वरः for मण्डलाधिपः B. 5. परो for परौ Bh. 6. For सौ...तयः B. and Bh. read :—बुधगुरुखगाद्याः। 7. वाग्भीत for वाङ्मति Amb.

पतिर्भुवो ह्यस्तोयस्य शुक्रेन्दू तेजसे रविः ।
कुजश्च मरुतो राहुः शनिश्च नभसो गुरुः ॥४७॥
[1]मांसत्वग्रोम्णां मज्जास्थ्नां स्वामिनौ शनिभास्करौ ।
शोणिताधिपतिर्भौमः शुक्रस्याधिपतिर्भृगुः ४८॥
बुधश्चैतन्यबुद्धीनां जीवो जीवाधिपो भवेत् ।
मनसश्चन्द्रमाः स्वामी भवेदेषां[2] वपुःस्थितिः ॥४९॥
सौरार्कक्षितिजाः शुष्काः सजलाविन्दुभार्गवौ ।
जीवज्ञावाश्रयवशाज्जलजाजलजौ स्मृतौ ॥५०॥
स्थानकालदृष्टिचेष्टादिग्निसर्गबलानि षट् ।
[3]आयसुहृत्स्वत्रिकोणनवांशोच्चबलानि षट् ॥५१॥

---

पृथ्वी का स्वामी बुध है, जल के स्वामी शुक्र और चन्द्रमा हैं; सूर्य और मंगल तेज के स्वामी हैं; शनि और राहु वायु के और आकाश का स्वामी बृहस्पति है ॥४७॥

मांस, त्वचा और रोमों का स्वामी शनि है । मज्जा और हड्डियों का सूर्य स्वामी है । मंगल मांस का स्वामी है । शुक्र वीर्य का स्वामी है ॥४८॥

ज्ञान और बुद्धि का बुध स्वामी है । बृहस्पति जीव का स्वामी है । चन्द्रमा मन का स्वामी है । इस प्रकार ग्रहों की स्थिति शरीर में बतलाई गई है ॥४९॥

शनि, सूर्य और मंगल—ये तीन ग्रह नीरस होते हैं । चन्द्रमा और शुक्र सजल, गुरु और बुध अपने अपने आश्रय लेकर सजल और निर्जल होते हैं ॥५०॥

ग्रहों के स्थान, काल, दृष्टि, चेष्टा, दिग् , निसर्ग ये छः बल हैं । आयबल, सुहृद्बल, स्वबल, त्रिकोणबल, नवांशबल और उच्चबल—ये छः बल भी होते हैं ॥५१॥

---

1. The text reads :—श्वास for मांस ; सत्वयोम्लां for मांसत्वग्रोम्णां Bh. 2. एषा for एषां A, B. 3. For आयसुहृत्स्व. B. reads आद्येषु हृत्स्व० ; This line in missing in Bh.

उच्चांशस्थे ग्रहे पूर्णं पादोनं स्वत्रिकोणगे ।
अर्द्धं स्वर्क्षेऽधिमित्रर्क्षे चतुर्विंशति लिप्तकम् ॥५२॥
पादोनं मित्रभे ज्ञेयं समर्क्षे[1] तु कलाष्टकम् ।
चतस्रः शत्रुभे लिप्ता द्वे लिप्ते अधिशत्रुभे ॥५३॥
स्वर्क्षादिषु ग्रहैः प्रोक्तं यत्तद्वर्गेषु तद्बलम् ।
तदीशभादिभिः खेटैर्मूलपादोनराशिकैः ॥५४॥[2]
शुक्रेन्दू समराश्यंशे शेषा न्यस्तबलाधिकाः ।
रूपार्द्धं पादवीर्याः स्युः केन्द्रादिस्थानभाश्रयाः ॥५५॥

इति स्थानबलम् ।

---

ग्रहों के अपने उच्च अंश में होने पर पूर्ण बल होता है। अपने त्रिकोण में ( अर्थात् अपने से नवम और पञ्चम में ) चतुर्थांश बल कम हो जाता है। अपने राशि में आधा और अधिमित्र के गृह में चौवीस कलात्मक बल रह जाता है ॥५२॥

मित्र के घर में रहने से ग्रहों का बल चतुर्थांश कम हो जाता है। बराबर के घर में रहने से आठ कला बल होता है। शत्रु के घर में चार कला और अधिशत्रु के घर में दो कला समझना चाहिये ॥५३॥

अपनी अपनी राशि आदि में स्थित ग्रहों द्वारा उन उन वर्गों में उनका बल समझना चाहिये। ग्रहों का राशिस्थ बल ग्रहस्वामी के मूल बल से एक पाद कम होता है ॥५४॥

शुक्र और चन्द्रमा सम राशि के अंश में बलवान होते हैं। शेष ग्रहों में स्थान के अनुसार अधिक, आधा तथा पाद अर्थात् चौथाई बल होता है। केन्द्रादि स्थानों के ग्रह चर होते हैं अर्थात् उनका बल घटता बढ़ता रहता है ॥५५॥

---

1. समर्थे for समर्क्षे Amb. 2. For this verse B. reads : स्वर्क्षादिग्रहयो प्रोक्तं यत् षड्वर्गेषु तद् बलम् । तदंशाद्यादिगैः खेटैर्मूलपादोनवादिकैः :॥ Bh differs from B. in the fourth *pada* as it reads :—मूलं पादोत्तरादिकैः for मूलपादोनराशिकैः ।

रात्रौ शशिकुजमन्दाः सर्वत्र ज्ञो दिने परे बलिनः ।
पक्षे बहुले रजनीग्रहाः परे शुक्लपक्षे स्युः ॥५६॥
बलं वलक्षपञ्चम्याश्चतुर्लिप्तं तिथौ तिथौ ।
शुभानामशुभानाञ्च कृष्णपञ्चमिकातिथेः[1][2] ॥५७॥
अह्नोरात्रेस्त्रिभागेषु ज्ञार्कार्कीणां बलं क्रमात् ।
चन्द्रशुक्रकुजानां च गुरोः सर्वत्र रूपकम् ॥५८॥
अब्दे मासे दिने काले होरायां च क्षणे बलम्[3] ।
पादवृद्ध्या परिज्ञेयं चैवं कालबले स्थितिः ॥५९॥
दशमतृतीये नवपञ्चमे च चतुर्थाष्टमे कलत्रञ्च ।
पश्यन्ति पादवृद्ध्या मतेन पूर्णं निजाश्रयोपान्ते[4] ॥६०॥

---

चन्द्रमा मंगल और शनि रात को बली होते हैं। बुध दिन और रात दोनों में बली होता है। अन्य ग्रह दिन में बली होते हैं। रात्रिग्रह अर्थात् चन्द्रमा, मंगल और शनि कृष्णपक्ष में बली होते हैं। अन्य ग्रह शुक्लपक्ष में बली होते हैं ॥५६॥

शुभ ग्रहों का बल शुक्लपञ्चमी से लेकर प्रत्येक तिथि को एक पाद घट जाता है और अशुभ ग्रहों का बल कृष्णपञ्चमी से लेकर ॥५७॥

पूरे अहोरात्र को छः भागों में बाट कर एक एक भाग में क्रम से बुध, सूर्य, शनि, चन्द्र, शुक्र, मंगल बली होते हैं। पूरे २४ घण्टों में सूर्योदय से लेकर एक एक चार घंटों में पूर्वोक्त बुध आदि ग्रह बली होते हैं। गुरु सर्वदा समान ही बल वाला होता है ॥५८॥

ग्रहों का कालबल—वर्ष, मास, पक्ष, दिन, होरा, क्षण में पादवृद्धि से समझना चाहिये ॥५९॥

सभी ग्रह अपने से दसवें और तीसरे को एक चरण से, नवम और पंचम को दो चरणों से, चौथे और आठवें को तीन चरणों से और सातवें को चारों चरणों से देखते हैं और फल भी उसी तरह देते हैं ॥६०॥

---

1. शुक्ल for कृष्ण Amb, A. A[1]. 2. तिथौ for तिथेः Bh. 3. बलम् is missing in B. 4. For मतेन...पान्ते B. reads-फलानि चैवं प्रयच्छन्ति। This verse is missing in Bh. After this verse A, A[1] read :—एकादशमायभवनं सर्वे पश्यन्ति खेचराः सम्यक्। मूर्तिं च सकलदृष्ट्या फलानि चैवं प्रयच्छन्ति ॥ पूर्णं पश्यति रविजस्तृतीयदशमे त्रिकोणमपि जीवः। चतुरस्रं भूमिसुतो रविसितबुधहिमकराः कलत्रं च ॥

वक्रगा अबला वक्रान्मार्गगाः शुभदा रविः ।
उत्तरायणगो युद्धे ग्रहाणामुत्तरो बली ॥६१॥
दिक्षु ज्ञो गुरुरविकुजशनिसितशशिनो निसर्गास्तु[1] ।
कुजश[2]निबुधगुरुसितशशिरविबले क्रमाद्राहुरधिकबलः ॥६२॥
अस्तमिताः शत्रुजिता नीचस्था नीचगामिनो विरुचः[3] ।
रिपुग्रहगरूक्षह्रस्वा अणवः कार्याक्षमा अबलाः ॥६३॥
क्रूरैर्युक्ता क्रान्ता दृष्टा विद्धा जिता न कार्यकराः ।
शुभफलदा विपरीताः स्वावस्थाविकलाः सर्वे[4] ॥६४॥
दीप्तः स्वस्थो नीचो मुदितः पीडितः शान्तः खलः शक्तो विकलः[5]

ग्रह वक्री होने से निर्बल हो जाते हैं । फिर वक्री से मार्गी होने पर शुभ फल को देने वाले होते हैं । सूर्य उत्तरायण होने पर अर्थात् मकरादि ६ राशि में रहने से बली होता है । ग्रहयुद्ध में उत्तर दिशा में दिखने वाले ग्रह बली होते हैं ॥६१॥

पूर्वादि दिशाओं में क्रम से बुध, गुरु, भौम, शुक्र, चन्द्र और शनि बली होते हैं । भौम, शनि, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र, सूर्य इन ग्रहों में क्रमिक एक से दूसरा बलवान होता है । राहु सब से अधिक बलवान होता है ॥६२॥

यदि कोई ग्रह सूर्यबिम्ब से अस्त हो अथवा शत्रु से जीता हुआ हो, वा नीच में हो, वा नीचगामी हो वा कान्तिहीन हो, वा शत्रु के घर में होने से म्लान अथवा छोटा हो गया हो तो वह निर्बल होता है और कार्यसाधक नहीं होता ॥६३॥

यदि कभी कोई ग्रह पापग्रहों से युक्त वा आक्रान्त हो, वा उनसे देखा गया हो, वा उनसे विद्ध हो, वा पराजित हो तो कार्यसाधक नहीं होता । शुभ फल को देने वाले भी ग्रह यदि स्वस्थ न रहें अर्थात् पाप आदि ग्रहों से पराजित होवें तो वे भी अशुभ फल को ही देते हैं ॥६४॥

दीप्तावस्था, स्वस्थावस्था, नीचावस्था, प्रसन्नावस्था, पीडितावस्था, शान्तावस्था, खलावस्था, शक्तावस्था और विकलावस्था—ये

1. निसर्गस्तु शनिः A., B. and Bh. 2 'शनि' is missing in A, B, & Bh. 3. निरुचयः for विरुचः Bh. 4. स्वावस्थोचिबफलाः सर्वे for स्वावस्थाविकलाः सर्वे A, A[1], B. and Bh. 5. शान्तः खलशक्तविकलाः for शान्तः खलः शक्तो विकलः A,B,& Bh.

स्वोच्चे दीप्तः स्वगृहे स्वस्थो नीचो वीक्षितो ह्यबलः[1] ॥६५॥
मित्रगृहे मुदितो गृहविजितः पीडितः स्ववर्गगः शान्तः ।
अरिगः खलोऽतिकिरणः शक्तो रविहतरुचिर्विकलः ॥६६॥
शत्रू मन्दसितौ समश्च शशिजो मित्राणि शेषा रवे-
स्तीक्ष्णांशुर्हिमरश्मिजश्च सुहृदौ शेषाः समाः शीतगोः ।
जीवेन्दूष्णकराः कुजस्य सुहृदो ज्ञोऽरिः सितार्की समौ
मित्रे सूर्यसितौ बुधस्य हिमगुः शत्रुः समाश्चापरे ॥६७॥
सौरेः[2] सौम्यसितावरी रविसुतो मध्ये परे त्वन्यथा
सूम्यार्कीसुहृदौ समौ कुजगुरू शुक्रस्य शेषावरी ।
शुक्रज्ञौ सुहृदौ[3] समः सुरगुरुः[4] सौरस्य चान्येऽरयः
तत्काले च दशायबन्धुसहजस्वान्तेषु मित्रस्थिताः ॥६८॥

---

अवस्थायें होती हैं जब ग्रह अपने उच्च में रहें तो दीप्त, अपने घर में रहें तो स्वस्थ और नीच में रहें वा नीच से देखे जायं तो अबल होते हैं ॥६५॥

ग्रह अपने मित्र के घर में रहने से प्रसन्न और किसी अन्य ग्रह से पराजित होने पर पीडित और अपने वर्ग में रहने से शान्त रहते हैं। शत्रु के घर में रहने से खल, अति किरण वाले दिखाई देने पर शक्त और सूर्य की किरणों से हतप्रभ हो जाने पर विकल होते हैं ॥६६॥

गुरु के शुक्र और बुध शत्रु हैं, शनि सम और अन्य चन्द्रमा, मंगल, गुरु मित्र हैं। चन्द्रमा के सूर्य और बुध मित्र और अन्य ग्रह सम हैं। मंगल के गुरु, चन्द्र, रवि मित्र, बुध शत्रु और शुक्र-शनि सम हैं। बुध के सूर्य शुक्र मित्र, चन्द्रमा शत्रु और अन्य ग्रह सम हैं ॥६७॥

सूर्य के शुक्र और शनि शत्रु हैं, बुध सम, चन्द्रमा और मंगल मित्र हैं। शुक्र के बुध और शनि मित्र, मंगल और गुरु सम, और अन्य शत्रु हैं। शनि के बुध, शुक्र मित्र, गुरु सम और अन्य शत्रु हैं। १०।११।४।३।२।१२ इन स्थानों में रहने वाले ग्रह तात्कालिक मित्र हैं ॥६८॥

---

1. नीचानीचस्थितिदीनः for नीचो वीक्षितो ह्यबलः । A, B, & Bh. 2. सौरेः for सूरेः A, A[1]. 3. शुक्रोज्ञेरसुहृदो for शुक्रज्ञौ A[1]. 4. The *Visarga* is missing in A.

कन्या राहुगृहं प्रोक्तं राहूचं मिथुनं स्मृतम् ।
राहुनीचं धनुर्वर्णादिकं[1] शनिवदस्य च ॥६९॥
मेषाद्या राशयो न्यस्ताः[2] खे चक्रे द्वादशारके ।
उदयैर्ग्रहयोगाद्यैर्व्यञ्जयन्तीष्टमङ्गिनाम् ॥७०॥
क्रियतावुरिजितुमकुलीरलेयपाथेनयूपक्रयाख्याः ।
तार्क्षिक आकौकेरो हृद्रोगश्चान्तिमं रिष्यम्[3] ॥७१॥
शीर्षमुखबाहुरुरउदरकटिबस्तयः ।
गुह्योरू जानुजंघे च पादौ राशिरजादिकः[4] ॥७२॥
क्रूराक्रूरनरस्त्रीकाश्चरान्यद्[5]विविधाः क्रमात् ।

राहु का घर कन्या कहा गया है । मिथुन उसका उच्च है । उसका नीच धनु और अन्य वर्ण आदि भी शनि की तरह जानने चाहिये ॥६९॥

द्वादशात्मक चक्र में स्थित मेषादि राशि लग्न और ग्रहों के योगादि से मनुष्य के शुभ फल को प्रकाशित करते हैं ॥७०॥

मेषादिक राशियों की संज्ञायें क्रम से क्रिय, तावुरि, जितुम, कुलीर लेय, पाथोन, यूप, क्रय, तार्क्षिक, आकौकेर, हृद्रोग, रिष्य होती हैं ॥७१॥

मेषादिक राशियों के क्रम से शिर, मुख, बाहु, छाती, पेट, कटि, बस्ति, ( कटिपश्चाद्भाग ) गुदामार्ग, खुट्टियां, घुटने, जांघे और पांव अंग होते हैं ॥७२॥

मेष आदि राशि क्रम से क्रूर, अक्रूर, नर-स्त्री-जातिक और चर स्थिर स्वभाव वाले होते हैं। जैसे—

| | |
|---|---|
| मेष = क्रूर | वृष = अक्रूर |
| ,, नर | ,, स्त्री |
| ,, चर | ,, स्थिर |

और मेषादि तीन तीन पूर्वादि दिशाओं में बली होते हैं ॥७३॥

1. शनिवर्णा for धनुर्वर्णा Bh. 2 न्यस्तं for न्यस्ताः A, B. 3. For this verse A, A[1] read :—क्रियतावुरिजिनितानुमुकलीरलयपार्थेनयूपरूपाख्या । तौक्षिक आकोकैराद्रूद्रेरगश्चांतिमं ऋत्तम् । Cf. Bh. त्रिजितांवुरिजितुमुकलीरलेयपार्थेनयूपकूर्पाख्या तौक्षिका आपोघुकरे कुद्वापश्चाविमरिष्फं । 4. रजादयः for रजादिकः Bh. 5. अरान्यवि for ०श्चरान्यद्वि० Bh.

मेषाद्यास्ते च पूर्वाद्यास्त्रिमेषादिचतुष्टयाः ॥७३॥
स्वनाम्ना सदृशाकाराः समाचारा[1] धनुस्त्विह ।
हयतुल्यपूर्वकायो मकरश्च मृगाननः ॥७४॥
वर्णा रक्तशुक्लपीतनीलपाटलधूसराः ।
चित्रोऽसितः सुवर्णाभः पिङ्गकर्बु रबभ्रवः ॥७५॥
चतुष्पादा[2] वृषो मेषो मृगो धनुरथोऽग्नयः ।
सिंहो धनुरजोभूमिमरुत्कन्या[3] वृषो मृगः ॥७६॥
खं मिथुनतुलाकुम्भा जलं मीनालिकर्कटाः ।
अग्निस्[4]तुलामृगाश्चापि यथास्थानफला अमी ॥७७॥
दग्धस्थानमधः स्वोंशः तुलायाः प्रथमोलिनः[4] ।
शब्दौ मेषो वृषः सिंहमिथुनौ च धनुस्तुलौ ॥७८॥

---

मेषादि क्रम से पूर्वादि दिशाओं में आवृत्ति कर के तीन तीन राशि बली होते हैं जैसे—

मेषादि प्रत्येक राशि के आकार और आचार अपने अपने नाम वाले जीवों से मिलते हैं। धनु के पूर्व भाग का आकार घोड़े के शरीर के पूर्व-भाग के समान होता है, मकर का आकार मकर के समान होता है ॥७४॥

राशियों के वर्ण क्रम से लाल, सफेद, पीला, नीला, थोड़ा लाल, धूसर, रंगों की मिलावट से विचित्र, काला, सुवर्ण की तरह, पिङ्ग, कर्बु र और बभ्रु होते हैं ॥७५॥

मेष, वृष, मकर, धनु, चतुष्पाद अर्थात् पशु हैं । इनका स्वभाव अग्नि के समान है । सिंह, धनु और मेष भूमि हैं । कन्या, वृष और मकर वायु हैं। मिथुन, तुल और कुम्भ आकाश हैं। मीन, वृश्चिक और कर्क जल हैं । तुल और मकर अग्नि भी हैं। स्थानानुसार इनका फल होता है ॥७६-७७॥

तुल के अपने अंश का नीचे वाला स्थान दग्ध होता है। वृश्चिक का पहला अपना अंश दग्ध स्थान होता है। मेष, वृष, सिंह और मिथुन

---

1. समवारा for समाचारा Bh. 2 चतुष्पदो for चतुष्पादा A, A[1] & Bh. 3. रुवाः कन्या for मरुत्कन्या A, & Bh 4. अस्तं for अग्नि A, A[1], Bh. 4 प्रथमोलिल: for प्रथमोलिनः Bh.

अर्द्धशब्दौ [1]घटकन्यामकराः शब्दवर्जिताः ।
कर्कवृश्चिकमीनाश्च संप्रतिप्रसवा यथा ॥७९॥
कर्कवृश्चिकमीनाः स्युर्बहुपत्या मिथुनो वृषः ।
कुम्भो मध्या[2] हरिमेषकन्यामृगतुलाल्पकाः ॥८०॥
तुलालिमकराः कुंभः पाठीनः कर्कटो वृषः ।
सजलाश्चार्द्राः स्निग्धाश्च सप्ताजाद्याः परेऽन्यथा ॥८१॥
सिंहमेषधनुर्ज्ञेयाः स्वर्णादिवर्णतापिनः ।
राजानो भ्रवते[3] मीनमृगकर्कास्तनुस्थिताः ॥८२॥
रूक्षाः[4] सिंहधनुर्मेषाः पीतोष्णाः पित्तधातवः ।
दिने चैषां पतिः सूर्यो रात्रौ जीवः सदा शनिः ॥८३॥
वृषकन्यामृगा रूक्षा उष्णा शीताश्च वातलाः ।
एषां स्वामी दिने शुक्रो रात्रौ चन्द्रः सदा कुजः ॥८४॥

पूर्ण शब्द वाले हैं । धनुष और तुल अर्द्ध शब्द वाले हैं । कुम्भ, कन्या और मकर शब्दहीन हैं । कर्क, वृश्चिक और मीन सद्यःप्रसव अर्थात् शीघ्र फलदायक हैं ॥७८-७९॥

राशियों में कर्क, वृश्चिक, मीन अधिक सन्तान वाले होते हैं; वृष, मिथुन, कुम्भ मध्यम सन्तान वाले, सिंह, मेष, कन्या, मकर, तुल थोड़ी सन्तान वाले होते हैं ॥८०॥

तुला, वृश्चिक, मकर, कुम्भ, मीन, कर्क, वृष ये राशि सजल, आर्द्र और स्निग्ध होते हैं । मेषादिक अन्य राशियों को इन से विपरीत समझना चाहिये ॥८१॥

सिंह, मेष, धनु राशि सुवर्ण की तरह प्रकाश वाले होते हैं । मीन, मकर, कर्क यदि लग्न में स्थित हों तो इन्हें राजा कहना चाहिये ॥८२॥

सिंह, धनु, मेष रूक्ष लग्न होते हैं । उनका वर्ण पीला और वे पित्त प्रकृति वाले होते हैं । दिन में इन के स्वामी सूर्य और रात में गुरु और शनि सर्वदा स्वामी होते हैं ॥८३॥

वृष, कन्या और मकर रूक्ष लग्न होते हैं । क्रमशः गर्म, शीत और वायुप्रकृतिक होते हैं । इनके दिन में शुक्र और रात मे चन्द्रमा और मंगल सर्वदा स्वामी होते हैं ॥८४॥

1. घट् for घट Amb. 2. मध्यो for मध्या Bh. 3. क्रमतो for भ्रवते Amb 4. सूक्ष्माः for रूक्षाः A.

[1]युग्मकुम्भतुला उष्णाः स्निग्धाङ्गा वातधातवः ।
रात्रौ चैषां बुधः स्वामी दिने मन्दः सदा गुरुः ॥८५॥
कर्कमीनालिनः शीताः स्निग्धाश्च श्लेष्मधातवः ।
दिने चैषां सितः स्वामी रात्रौ भौमः सदा गुरुः[2] ॥८६॥

## अथ राशिवैचित्र्यप्रकरणम्

चत्वारो राशयोऽजाद्या धनुर्मृगो निशा इमे[3] ।
अन्ये दिवसमाख्याताः शेषाः षडपि राशयः ॥८७॥
पृष्ठोदयाः कर्कमृगधनुर्मेषवृषा अमी ।
शेषाः शीर्षोदया ज्ञेया मीनस्तूभयजः स्मृतः ॥८८॥
गृहे होरा च द्रेष्काणा नवांशो द्वादशांशकः ।
त्रिंशांशश्चेति षड्वर्गः शुद्धिः शुद्धांशतोच्यते ॥८९॥
कुजभृगुबुधविधुरविबुधसितकुजगुरुमन्दमन्दरीजीवपतिः[4] ।

---

मिथुन कुम्भ और तुला लग्न गर्म कोमल तथा वायुप्रकृतिक होते हैं। इनके दिन में शनि, रात में बुध, और गुरु सर्वदा स्वामी हैं ॥८५॥

कर्क, मीन, वृश्चिक लग्न शीत, कोमल तथा कफप्रकृतिक हैं। शुक्र इनके दिन में, मंगल रात में और बृहस्पति सर्वदा स्वामी हैं ॥८६॥

## राशिवैचित्र्यप्रकरण

मेषादिक चार और धनु तथा मकर ये छः राशियां रात को बली होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य छः राशियां दिन को बली होते हैं ॥८७॥

कर्क, मकर, धनु, मेष, और वृष पृष्ठोदया होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य लग्न शीर्ष से, केवल मीन मुख-पुच्छ दोनों से उदित होता है ॥८८॥

राशि, होरा, द्रेष्काण ( अर्थात् राशि का तीसरा भाग ), नवांश, द्वादशांश और त्रिशांश ये षड्वर्ग हैं ॥८९॥

---

1. The rea ding युग्म for मिथुन (Amb.) fits in with metre. 2. सदोडुपः for सदा गुरुः A, A[1]. 3. निशामिमे for निशा इमे A. 4. शनिजीवपतिकः for मन्दरीजीवपतिः A., शनिश्च जीवपतिः Bh.

मेषादिराशिरजमृगतुलाकर्कादिस्त्रिधा वृत्त्या ॥९०॥
द्वित्रिनवद्विरसत्रिंशद्भागो लग्नेऽथ[1] होराद्याः ।
होराद्यार्की परा चान्द्री विषमे व्यत्ययः समे ॥९१॥
लग्नं तत्पञ्चनवमाद् द्रेष्काणा आदितो नवांशेशाः ।
स्वगृहादर्कांशेशास्त्रिंशांशाधिपतयस्तु यथा ॥९२॥
कुजयमजीवज्ञसिताः पञ्चेन्द्रियवसुमुनीन्द्रियांशानाम्[2] ।
विषमेषु समर्क्षेषु[3] क्रमेण त्रिंशांशकाः कल्प्याः ॥९३॥
तनुर्धनानुजमित्र ४ सुत ५ रिपु ६ गृहिणी ७ मृतिः ८

मेषादि राशियों के क्रम से मंगल, शुक्र, बुध, चन्द्र, रवि, बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनि, शनि, गुरु ग्रहस्वामी हैं ॥९०॥

राशि का आधा तृतीयांश, नवमांश द्वादशांश, त्रिंशांश स्वगृह ये क्रम से होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांश, गृह, षड्वर्ग होते हैं। उस में विषम राशि में पहले पन्द्रह अंश तक सूर्य की होरा, उस के बाद तीस अंश तक चन्द्रमा की होरा होती है। सम राशि में पहली चन्द्रमा की दूसरी सूर्य की होरा होती है ॥९१॥

राशि के दश अंश तक वही राशि द्रेष्काण होता है। उसके बाद बीस अंश तक उस राशि का पाँचवाँ राशि द्रेष्काण होता है। उस के बाद तीस अंश तक उस राशि का नवम राशि द्रेष्काण होता है। और चर (मेष, कर्क, तुल, मकर) राशि में स्वराशि से ही नवमांश की गणना होती है और स्थिर (वृष, सिंह, वृश्चिक कुम्भ) राशि में इसके नवम (मकर, मेष, कर्क, तुल) से नवमांश की गणना होती है और द्विस्वभाव (मिथुन, कन्या, धनु, मीन) राशि में इस के पञ्चम (तुल, मकर, मेष, कर्क) से नवमांश की गणना होती है और द्वादशांश की गणना स्वराशि से ही होती है ॥९२॥

विषम राशियों में मंगल शनि, गुरु बुध शुक्र क्रम से ५वें, ५वें, ८वें, ७वें ५वें त्रिशांशकों के स्वामी होते हैं। सम राशियों में विपरीत क्रम से त्रिशांशों के स्वामी होते हैं ॥९३॥

तनु, धन, अनुज, मित्र, सुत, रिपु, गृहिणी, मृत्यु, धर्म, कर्म,

1. त्रिंशद्भोगी च for त्रिंशद्भागो लग्नेऽथ Amb. 2. वसुमवीन्द्रियांशान्ताः for वसुमुवीन्द्रियांशानाम् Amb. वसुमवीन्द्रियांशानाम् A. 3. समर्देषु for समर्क्षेषु Amb.

धर्म ९ कर्मा १० य ११ व्ययतो[1] भावा द्वादश लग्नगाः ॥९४॥

तनुलग्नमूर्तिहोराकल्पोदया धनमथ[2] कुटुम्बञ्च ।

विक्रमदुश्चिक्यमथ सुहृद्धिबुकपातालम् ॥९५॥

वेश्माम्बुवान्धवसुखं चतुरस्रं त्वष्टमे चतुर्थे च ।

पुत्रो धीः प्रतिभारिक्षतं कलत्रं तथा द्यनम् ॥९६॥

जामित्रं चित्तोत्थं द्यनमस्तं मृत्युरन्ध्रछिद्राणि ।

धर्मो गुरुस्तपस्त्रिकोणमिदमत्र सुतसहितम् ॥९७॥

कर्मास्पदमेषूरणमानाज्ञायभवनलाभान्त्यरिक्थम्[3] ।

कटककेन्द्रचतुष्टयमेकचतुर्थास्तदशमानाम् ॥९८॥

आय, व्यय—ये लग्नादि द्वादश भावों की क्रमिक संज्ञाएं हैं ॥६४॥

तनुभाव की संज्ञा—तनु, लग्न, मूर्ति, होरा, कल्प, उदय है।
धनभाव की संज्ञा - कुटुम्ब भी है ।

अनुजभाव की संज्ञा - विक्रम, दुश्चिक्य भी हैं ।

मित्रभाव के लिये सुहृद्, हिबुक और पाताल भी कहे जाते हैं ॥६५

मित्रभाव के लिये वेश्म, अम्बु बान्धव, सुख ये भी संज्ञाएं हैं। चतुरस्र से चौथा और आठवां दोनों का ग्रहण होता है । सुतभाव के लिये धी, रिपुभाव के लिये प्रतिभ अरि, क्षत तथा सप्तमभाव के लिये कलत्र तथा द्यून शब्दों का भी प्रयोग होता है ॥६६॥

इसी भाव के लिये जामित्र, चित्तोत्थ, द्यून, अस्त भी पर्याय हैं। अष्टमभाव के लिये मृत्यु, रन्ध्र, छिद्र, नवमभाव के लिये धर्म, गुरु, तप पर्याय हैं। त्रिकोण से नवम तथा पञ्चम दोनों का ग्रहण होता है ॥६७॥

दशम भाव के लिये कर्म, आस्पद, मेषूरण । ग्यारहवें भाव के लिये आय, लाभ । बारहवें भाव के लिये अन्त्य, रिक्थ । कटक, केन्द्रचतुष्टय लग्न, चतुर्थ, सप्तम, दशम स्थानों को कहते हैं ॥६८॥

1. व्ययिता for व्ययतो A. 2. मथधनं for धनमथ A.

3. A reads मानान्यज्ञायभवनलाभान्त्यरिष्यु: for मानाज्ञा etc. ॥ मांसं नान्यायभुवनलाभांत्यरिष्फं Bh.

लग्नभूस्वभ्र[1]खकेन्द्रमाद्यं तुर्यास्तकर्मजम् ।
केन्द्रात्परं पणफरं[2] तस्मादापोक्लिमं[3] परम् ॥९९॥
पणफरा[4]द्भावि कार्यं ज्ञेयमापोक्लि[5]माद्गतम् ।
केन्द्रे सर्वे ग्रहाः पुष्टास्त्रैलोक्यै[6]कफलप्रदाः ॥१००॥
घटमीनौ च चत्वारः सिंहाद्याच्या दिनेश्वराः ।
मेषाद्या मृगचापौ च चत्वारश्च निशाह्वयाः ॥१०१॥
रव्यादय उच्चा अजवृषमृगकन्याकुलीरझषतौलौ ।
परमोच्चा दश१० त्रि३ मोह२८ तिथि१५ शर५ भ२७ नखैः२० ॥
उच्चस्थानास्तगा नीचाः परमोच्चा[7]स्तदंशगाः ।
त्रिकोणोऽर्कादिर्सिंहोऽक्षोऽजस्त्रीचापतुला घटाः ॥१०३॥

---

भू लग्न की संज्ञा है । स्वभ्र, ख दशम स्थान की संज्ञा और लग्न, चतुर्थ, सप्तम, दशम केन्द्र कहलाते हैं और केन्द्र के बाद द्वितीय, पञ्चम, अष्टम, एकादश स्थान पणफर कहलाते हैं । उसके बाद तीसरा, छठा, नवम, बारहवाँ स्थान आपोक्लिम कहलाते हैं ।९९॥

पणफर से भविष्य का और आपोक्लिम से भूतकार्य का ज्ञान होता है । केन्द्रस्थित यदि सभी ग्रह पुष्ट हों तो भूत, भविष्य और वर्तमान कालों के फल को बतलाते हैं ॥१००॥

सिंह से चार, तथा कुम्भ और मीन दिन में बली होते हैं । मेष आदि चार, मकर और धनु ये रात्री में बली होते हैं ॥१०१॥

मेष, वृष, मकर, कन्या, कर्क, मीन, तुल राशियों में सूर्यादि ग्रहों के उच्च होते हैं । यही ग्रह १०।३।२८।१५।५।२७।२० अंशों से परमोच्च होते हैं ॥१०२॥

उच्च स्थान से सप्तम में ग्रह नीच होते हैं । परमोच्च के अंश ही नीच राशि में परम नीच कहलाते हैं । सूर्यादि सात ग्रहों के क्रम से सिंह, वृष, मेष, कन्या, तुल, धनु, कुम्भ ये मूल त्रिकोण कहलाते हैं ॥१०३॥

---

1. श्व for स्व A. 2 पणपरं for पणफरं Bh. 3 क्लिमं for क्लिमं Bh. 4. फरपणा for पणफरा A. 5 क्लि for क्लि A[1] 6. ०त्रैकालिक० for० त्रैलोक्यै० A. 7. परमाः। for परमोच्चा A.

चरादिचादिमध्यान्त्या[1] वर्गोत्तमनवांशकाः ।
त्रिषट्दशैकादशमोपचयाः स्युः परेऽन्यथा ॥१०४॥
कर्मणा येन येनेह प्रेरितोऽभ्येति पृच्छकः ।
जन्मपृच्छारम्भलग्नैस्तत्तस्य व्यज्यते त्रिभिः ॥१०५॥
यो भावः स्वामिना सौम्यो[2] दृष्टो युक्तः[3] समृद्धिमान्[4] ।
पापैस्तु हानिमानेवं द्वयमिन्दोर्युतौ दृशि[5] ॥१०६॥
लग्नसौम्यान्तरा योगा लग्नेश्वरशुभान्तराः ।
चन्द्रसौम्यान्तरः पुण्यस्तरणिश्च[6] शुभान्तरा ॥१०७॥
[7]नुथशिलास्तु विज्ञेया रवेस्तुल्याः[8] शुभान्तराः ।
तावन्तो [9]मचकूलाश्च ज्ञेयाः शुभनिरीक्षणे ॥१०८॥
लग्ने चन्द्रः शनिः कुंभो रवौ बुधे[10] विरश्मितः[11] ।

चर, स्थिर, द्विस्वभाव, राशियों के क्रम से आदि, मध्य, अन्त्य नवमांश वर्गोत्तम कहलाते हैं और ३, ६, १०, ११ वें उपचय कहलाते हैं ॥१०४॥

प्रष्टा जिस जिस कर्म से प्रेरित होकर आता है वह कर्म, जन्म, तथा पृच्छाकाल अथवा कर्म के आरम्भकाल—इन तीनों से प्रकट हो जाता है ॥१०५॥

जो भाव शुभ ग्रह वा स्वामी से युक्त हो वा देखा जाय वह समृद्धिप्रद होता है। यदि पापग्रहों से युक्त हो वा देखा जाय तो हानिकारक होता है। यदि चन्द्रमा से युक्त हो वा देखा जाय तो वृद्धि-हानि दोनों होते हैं। अर्थात् पूर्णचन्द्र से वृद्धि और क्षीणचन्द्र से हानि होती है ॥१०६॥

सौम्य लग्न के अन्तरयोग लग्नेश के शुभान्तर होते हैं। सौम्य चन्द्र का अन्तर भी शुभकारक है। तरणियोग भी शुभान्तर है। बारह मुन्थशिला भी शुभान्तर हैं। बारह मचकूल भी शुभान्तर हैं। शुभ दृष्टि में इन का भी विचार करना चाहिये ॥१०७-१०८॥

1. चरादाबादि for चरादिचादि A. 2. सौम्ये for सौम्यो A. 3. वृद्धः for युक्तः Amb. 4. सवृद्धि for समृद्धि A. 5. तद्वदिन्दोर्युतो दृशि for द्वयमिन्दोर्युतो दृशि Bh. 6. ०स्तरणोश्च for ०स्तरणिश्च A. 7. मुन्थ for नुथ A, A[1] मथुशला Bh. 8. द्वादशव for रवेस्तुल्याः A, A[1]. 9 मुकबूलाश्च for मचकूलाश्च Bh. 10. रविबुधौ for रवौ बुधे Bh. 11. वरश्मितः for विरश्मितः Amb,[1].

कौटिल्येनागतः प्रष्टा[1] विज्ञायैवं ततो वदेत् ॥१०९॥
उदयादागता नाड्यस्तासामर्द्धेन संख्यया ।
सूर्यर्क्षाद्यद्भवेदृक्षं[2] तेन लग्नस्य निर्णयः ॥११०॥[3]

इति लग्नज्ञानम् ।

धनस्थाने यदा चन्द्रः सौम्यो वा यदि गच्छति ।
धनेशो वापि लग्नेशो यदोदेति तदा धनी ॥१११॥
भ्रातृगेहे यदा चन्द्रः सौम्यो वाभ्येति वा पुनः ।
भ्रात्रीशो वापि लग्नेशो यदोदेति तदा धनी[4] ॥११२॥
निधिस्थाने यदा चन्द्रः सौम्यो वा यदि वा धनः ।
निधीशो वापि लग्नेशस्तदा सौख्यं निधिस्थितिः ॥११३॥
पुत्रभावे यदा चन्द्रः सौम्यो वा प्रथमोदितः[5] ।
पुत्रेशो वापि लग्नेशः सुतप्राप्तिस्तदा ध्रुवम् ॥११४॥

लग्न में यदि चन्द्रमा, शनि हो, कुंभ राशि में सूर्य और बुध तेज होते हो तो प्रष्टा का मन कुटिल समझना चाहिये। यह जान कर उत्तर भी उसी प्रकार देना चाहिये ॥१०९॥

सूर्योदय से नाड़ियों की आधी संख्या द्वारा सूर्यनक्षत्र से जो नक्षत्र निकले उससे लग्न का निर्णय करना चाहिये ॥११०॥

चन्द्र वा बुध धनस्थान में हों अथवा वे धनेश वा लग्नेश हों तो मनुष्य अवश्य धनी होगा ॥१११॥

चन्द्र वा बुध भ्रातृस्थान मे हों अथवा वे भ्रात्रीश वा लग्नेश होकर रहे तो मनुष्य अवश्य धनी होगा ॥११२॥

चन्द्र वा पुष्ट बुध चतुर्थस्थान में हों अथवा वे निधीश वा लग्नेश होकर रहें तो वह अवश्य सुखी होगा ॥११३॥

चन्द्र वा बुध पुत्रभाव मे हो अथवा वे पुत्रेश तथा लग्नेश होकर रहें तो पुत्रप्राप्ति अवश्य होनी चाहिये ॥११४॥

---

1 पृष्टा for प्रष्टा A. 2. सूर्यभाद् for सूर्यर्क्षाद् A. 3. A, A[1] add : गतघटिकाः षड्गुणितगतसंक्रान्तेर्दिनानि सम्मील्य। त्रिंशत्या च हरेद् भागं शेषं तात्कालिकं लग्नम् ॥ 4. This verse is repeated in the text तदानुजः for तदा धनी Bh. 5. वाथ माहितः for वा प्रथमोदितः । वान्य प्रमोदितः Bh.

पुत्रौकसि यदा चन्द्रः शुभखेटविलोकितः ।
उपायाः सामदण्डाद्याश्चाष्टधापि धिया सह ॥११५॥
रिप्वोकसि यदा चन्द्रः सौम्यो वा सघनो बलः[1] ।
रिपुणा[2] वापि लग्नेशो रिपुरोगौ घनौ कुधीः ॥११६॥
अस्तगेहे चन्द्रशुक्रौ शुभदृग्दितैस्सह ।
भार्येशो वापि लग्नेशः स्त्रीराज्यं च तदा ध्रुवम् ॥११७॥
[3]मृत्यूपेन्दू यदा मृत्यौ सौम्यो वापि यदोदितः ।
द्वाविंशतितमे त्र्यंशे तदा मृत्युः स्वयं ध्रुवम् ॥११८॥
पदस्थाने यदा चन्द्रः शुभो वा सरविर्भवेत्[4] ।
पादेशो वापि[5] लग्नेशो मुद्राप्राप्तिस्तदेव हि ॥११९॥
पुण्यगेहे यदा चन्द्रः सौम्यो[6] वापि यदोदितः[7] ।
धर्मेशो वापि लग्नेशो राज्यप्राप्तिस्तदा ध्रुवम् ॥१२०॥

---

चन्द्र यदि पुत्रस्थान में हो और उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो संतानों के साथ साम-दण्ड आदि सभी उपाय सफल हो जाते हैं ॥११५॥

यदि चन्द्र वा बुध शत्रुस्थान में पुष्ट और बली हो अथवा लग्नेश होकर शत्रु के साथ रहे तो शत्रुभय और रोगभय तथा मनुष्य मूर्ख होता है ॥११६॥

चन्द्र और शुक्र सप्तम स्थान में हों, उदित शुभ ग्रहों से देखे जाते हों और वे लग्नेश तथा जायेश होकर रहें तो निश्चय ही स्त्री का प्रभुत्व होता है ॥११७॥

चन्द्र और शुक्र यदि अष्टम स्थान में हों और उदित बुध से युक्त या देखे जायँ तो बाईसवें वर्ष के तीसरे अंश में निश्चय ही मृत्यु होती है ॥११८॥

चन्द्र अथवा अन्य शुभ ग्रह तृतीय स्थान में सूर्य के साथ हों अथवा वे तृतीयेश तथा लग्नेश होकर रहें तो रुपयों की प्राप्ति होती है ॥११९॥

चन्द्र वा बुध पुण्यस्थान में हों अथवा वे धर्मेश वा लग्नेश होकर रहें तो निश्चय ही राज्यप्राप्ति होती है ॥१२०॥

---

1. सबलाधनो for सघनो बलः Bh. 2. रिपुणो for रिपुणा Bh. 3. मृत्यु for मृत्यु A. 4. सौम्यो वापि रविर्भवेत for शुभो वा सरविर्भवेत A. 5 शुभो वाथवा for पादेशो वापि A, पदेशो वापि Bh. 6. सोमो for सौम्यो A., सामो A[1]. 7. स्वगोऽपि for यदोदितः A.

पृच्छाकाले ग्रहाधीशो यत्र भावे भवेद्यदा ।
रिपुभावे धिया हीनो मित्रभावे फलाधिकः ॥१२१॥
लाभस्थाने यदा चन्द्रः सौम्यो वा सोमजोदयः[1] ।
लाभेशो वापि लग्नेशो लाभाधिक्यं तदा भवेत्[2] ॥१२२॥
व्ययस्थाने यदा चन्द्रः सौम्यो वा स्वगृहादिगः ।
व्ययेशो वापि लग्नेशो व्ययो भवति भूमिपात् ॥१२३॥

## अंशकाभिप्रायेण कथयति ।

सौम्यदृष्टेक्षिते[3] वापि सौम्यदृष्टे[4] स्वतुङ्गभे ।
यदा धनांशके चन्द्रस्तदावश्यं घनं धनम् ॥१२४॥

प्रश्नकाल में जिस घर का स्वामी जिस भाव में हो वैसा ही फल कहना चाहिये । यदि शत्रुभाव में हो तो बुद्धिहीन होता है, यदि मित्र भाव में हो तो अधिक फलदायक होता है ॥१२१॥

यदि चन्द्र वा बुध लाभस्थान में हों और कुछ उदित हों, वे लाभेश वा लग्नेश होकर रहें तो उसको अधिक धन लाभ होता है ॥१२२॥

चन्द्रमा वा बुध व्यय स्थान में स्थित होकर यदि स्वगृहादि में हों और वे यदि व्ययेश या लग्नेश हो जांय तो राजा से उसके धन का व्यय होता है ॥१२३॥

जब चन्द्र अपने उच्च में रहते हुए बुध अथवा अन्य शुभ ग्रह से युक्त हो वा देखा जाय और जब चन्द्रमा धनस्थान के नवांशक में हो तो अवश्य ही बहुत धन होता है ॥१२४॥

1. सोमजादिकः for सोमजोदयः A. 2. A., A[1] add. लग्नेशो वीक्षते लग्नं धनेशो वीक्षते धनम् । धनवान् लग्नपे लग्ने धने च धनपो धनी ॥ लग्नेशधनपौ लग्ने द्वौ धने च तदा धनी । चतुर्भङ्ग्येऽपि सर्वेऽपि भावास्तस्मात्फलप्रदाः ॥ लग्नस्य लग्नाधिपतेः सूर्यस्येन्दोरितस्ततः । प्रत्येकं तोरयो सौम्याः शुभान्तरचतुष्टयम् ॥ for लाभाधिक्यं तदा भवेत् Bh. reads व्ययो भवति भूमिपात । Bh. adds पृच्छाकाले गृहाधीशो यत्र भावो भवेद्यदि । रिपुभावे धिया हीनो मित्रभावे फलाधिकः ॥
3. युते ofr क्षिते A. 4. विद्धे for दृष्टे A.

सौम्यदृष्टेक्षिते[1] वापि सौम्यदृष्टे[2] स्वतुङ्गभे ।
निध्यंशके यदा चन्द्रो निधिभोगौ तदा खलु ॥१२५॥
सौम्ययुक्तेक्षिते[1] वापि सौम्यदृष्टे[2] स्वतुङ्गभे ।
सुतांशके यदा चन्द्रः सुतो वापि तदा पुनः ॥१२६॥
सौम्ययुक्तेक्षिते विद्धे स्वीयगेहे स्वतुङ्गभे ।
यदा रोगांशके चन्द्रस्तदोद्वेगश्चतुष्पदे ॥१२७॥
सौम्ययुक्तेक्षिते विद्धे स्वीयगेहे स्वतुङ्गभे ।
यदा भार्यांशके चन्द्रस्तदा भार्याशतं स्मृतम् ॥१२८॥
सौम्ययुक्तेक्षिते विद्धे मृत्युभावे स्वतुङ्गभे ।
यदा मृत्यंशके चन्द्रस्तदा मृत्युरसंशयम् ॥१२९॥
सौम्ययुक्तेक्षिते विद्धे स्वीयगेहे स्वतुङ्गभे ।
यदा पुण्यांशके शुक्रस्तदा द्रव्यं स्त्रिया सह ॥१३०॥

---

स्वोच्चस्थ चन्द्र, बुध वा अन्य शुभ ग्रह से युक्त हो वा देखा जाय और जब वह चतुर्थस्थान के नवांशक में हो तो निधि और भोग दोनों की प्राप्ति समझनी चाहिये ॥१२५॥

उच्च का चन्द्र यदि बुध वा अन्य किसी शुभ ग्रह से युक्त हो वा देखा जाय और जब वह सुतस्थान के नवांशक में हो तो पुत्रजन्म अवश्य कहना चाहिये ॥१२६॥

स्वगृह का वा उच्च का चन्द्र यदि बुध अथवा शुभ ग्रह से युक्त अथवा देखा जाय वा विद्ध हो और यदि वह रोगस्थान के नवांशक में हो तो उसे पशुचिन्ता कहनी चाहिये ॥१२७॥

स्वगृह का वा उच्च का चन्द्र शुभ ग्रह से युक्त अथवा देखा वा विद्ध हो जाय और जब वह स्त्रीस्थान के नवांशक में हो तो उसके बहुत विवाह कहने चाहिएं ॥१२८॥

उच्च का चन्द्र, अष्टम भाव में बुध अथवा अन्य किसी शुभ ग्रह से युक्त, दृष्ट अथवा विद्ध हो, और जब वह अष्टम भाव के नवांशक में हो तो निश्चय ही उसकी मृत्यु कहनी चाहिये ॥१२९॥

स्वगृह का वा उच्च का शुक्र बुध अथवा किसी अन्य शुभ ग्रह से युक्त, दृष्ट अथवा विद्ध हो और पुण्यस्थान के नवांशक में हो तो स्त्री-प्राप्ति के साथ धनप्राप्ति कहनी चाहिये ॥१३०॥

---

1. युते for क्षिते A. 2. विद्धे for दृष्टे A.

सौम्ययुक्तेक्षिते विद्धे स्वीयगेहादिसंस्थिते[1] ।
यदा पुण्यांशके चन्द्रो राज्यप्राप्तिर्धनैः सह ॥१३१॥
सौम्ययुक्तेक्षिते विद्धे स्वीयतुङ्गादिसंस्थिते[1] ।
यदा भार्यांशके चन्द्रो मुद्राप्राप्तिस्तदा क्षणे ॥१३२॥
सौम्ययुक्तेक्षिते विद्धे स्वीयतुङ्गादिसंस्थिते[1] ।
यदा लाभांशके चन्द्रः कोटिप्राप्तिः श्रियस्तदा ॥१३३॥
सौम्ययुक्तेक्षिते विद्धे स्वीयतुङ्गादिसंस्थिते[1] ।
व्ययस्थाने यदा चन्द्रो व्ययो भवति सर्वदा ॥१३४॥

एवमंशकफलम् ॥

अतः परं जन्मदशा फलञ्च जन्मलग्नतः ।
[2]मूर्तिर्भूयाद्व्ययाङ्को भवति च चरमो यावता जन्मपत्र्या-
मङ्काः सर्वेऽपि गण्याः प्रतिगृहमिलिता जन्मवर्षा भवन्ति ।

स्वगृह का, उच्च का वा मूल त्रिकोण का चन्द्र, बुध अथवा किसी अन्य शुभ ग्रह से युक्त, दृष्ट वा विद्ध हो और जब वह पुण्यस्थान के नवांशक में हो तो धन के साथ राज्यप्राप्ति होती है ॥१३१॥

यदि स्वगेह आदि स्थित चन्द्र, बुध अथवा किसी अन्य शुभ ग्रह से युक्त, दृष्ट अथवा विद्ध हो और जब वह जायास्थान के नवांश में हो, तो उसे तत्काल रुपयों की प्राप्ति होती है ॥१३२॥

अपने उच्च गेहादि में स्थित चन्द्र, यदि बुध वा अन्य किसी शुभ ग्रह से युक्त, दृष्ट तथा विद्ध होकर लाभस्थान के नवांश में हो तो कोटि संख्या में धन की प्राप्ति होती है ॥१३३॥

अपने उच्च गेहादि में स्थित चन्द्रमा यदि बुध अथवा अन्य किसी शुभ ग्रह से युक्त, दृष्ट अथवा विद्ध होकर व्यय स्थान के नवांश में आता है तो सदा खर्च होता रहता है ॥१३४॥

लग्न से बारहवां व्ययस्थान होता है । जन्मपत्री में सभी अंक इसी प्रकार गिनने चाहिएं। प्रत्येक गृह में जन्मपत्री में शुभ ग्रह हो सकते

1. The text sometimes reads स्वीयगेहादिसंस्थिते and sometimes स्वीयतुङ्गादिसंस्थिते or स्वीयगेहे स्वतुङ्गभे. I have followed 'A' which is consistent throughout. 2. मूर्तेर्भूयाद् for मूर्तिर्भूयात A., मूर्तेर्द्भूयात A[1].

सौम्याः सौम्यैरवस्थास्त्वशुभगृहखगैर्दुःखदाः[1] शेषवर्षा
इत्येवं जातकाद्वाप्यशुभशुभ[2]फलं दर्शितं जन्मलग्नात् ॥१३५॥
जन्मतो यत्तमे गेहे यत्र स्युः सौम्यखेचराः ।
जन्मतस्तत्तमेऽब्दाहे लक्ष्मीर्भवति जन्मिनः[3] ॥१३६॥
जन्मतो यत्तमे भावे यत्रापि क्रूरखेचराः ।
जन्मतस्तत्तमेऽब्दाहे विपद्भवति दुःखदा ॥१३७॥
जन्मतो यत्तमे गेहे यत्रैवं मिश्रखेचराः ।
जन्मतस्तत्तमेऽब्दाहे मिश्रं भवति निश्चितम्[4] ॥१३८॥

प्रकारान्तरेण जन्मदशा जन्मकुण्डल्याम्[5] ।

मध्यग्रहैर्दशा पूर्णा बाह्यगैरर्द्धिका ततः ।
मूर्त्यस्तगैस्त्रिभागोना चैवं जन्मग्रहाद्दशा ॥१३९॥
मूर्त्तिविभुर्यदि मूर्तिं कार्याधिपतिश्च[6] वीक्षते कार्यम् ।
लग्नाधीशः कार्यं कार्येशः पश्यति विलग्नम्[7] ॥१४०॥

---

हैं जिस घर में शुभ ग्रह का सम्बन्ध हो उसमें सुख, पापग्रह के सम्बन्ध से दुःख होता है । इस प्रकार जन्म लग्न से फल कहना चाहिये ॥१३५॥

जन्म लग्न से जितने घर में जहां पर शुभग्रह हों, जन्म से उतने ही वर्ष और दिन पर उसको सुख और धन होता है ॥१३६॥

जन्म लग्न से जितने भाव में पापग्रह हों, जन्म से उतने वर्ष में उसको दुःख देने वाली विपत्ति होगी ॥१३७॥

जन्मलग्न से जितने गृह में शुभग्रह और पापग्रह दोनों हों, जन्म से उतने वर्ष में मिश्रफल अर्थात् सुख और दुःख दोनों निश्चित होते हैं ॥१३८॥

मध्यग्रहों से पूर्ण दशा होती है । बाह्यगत ग्रहों से आधी दशा; लग्न और सप्तमस्थ ग्रहों से तृतीयांशोन दशा होती है । इस प्रकार जन्म-कालिक ग्रहों से दशा होती है ॥१३९॥

लग्नेश यदि लग्न को, कार्येश कार्य को, अथवा लग्नेश कार्य को और कार्येश लग्न को देखे ॥१४०॥

---

1. सौम्येरवस्थास्वाशुभगृहर वर्गोदुःख दाः for सौम्यैरवस्थास्त्वशुभ-गृहखगैर्दुःखदाः A¹ 2 missing in A 3. निश्चितम् for जन्मिनः A, A¹ 4. जन्मिनः for निश्चितम् A. 5. ०कुण्डल्याः for कुण्डल्याम् A 6. कार्यौघविभुश्च for कार्याधिपतिश्च A. 7. विलग्ने for विलग्नम् A.

लग्नेशः कार्येशं विलोकते लग्नपं च कार्येशः ।
शीतगुदृष्टौ सत्यां परिपूर्णा [1]कार्यनिष्पत्तिः ॥१४१॥
कथयन्ति पादयोगं पश्यति सौम्येन लग्नपे लग्नम् ।
लग्नाधिपे च पश्यति शुभग्रहेनार्द्धयोगं च[2] ॥१४२॥
लग्नपतिदर्शने सति शुभग्रहौ द्वौ त्रयोऽथवा लग्नम् ।
पश्यन्ति यदि तदानीं प्राहुर्योगं तु[3] भागोनम् ॥१४३॥
क्रूरावेक्षणवर्जा[4]श्चत्वारः सौम्यखेचरा लग्नम् ।
लग्नेशदर्शने सति पश्यन्तः पूर्णयोगकराः ॥१४४॥
आद्यो लग्नपतिः कार्ये लग्ने कार्याधिपो यदि ।
द्वितीयो लग्नपो[5] लग्ने कार्ये कार्याधिपो भवेत् ॥१४५॥
लग्नपः कार्यपश्चापि लग्ने यदि तृतीयकः ।
चतुर्थः कार्यगौ स्यातां यदि लग्नपकार्यपौ ॥१४६॥

लग्नेश कार्येश को, कार्येश लग्नेश को देखें और चन्द्रमा की दृष्टि रहे तो कार्यसिद्धि अच्छी तरह होती है ॥१४१॥

लग्न को कोई शुभ ग्रह देखता हो और लग्नेश लग्न को न देखे तो पादयोग होता है। यदि लग्नेश लग्न को देखें और शुभग्रह की दृष्टि नहीं हो तो अर्द्धयोग कहते हैं ॥१४२॥

लग्न को लग्नेश और दो वा तीन शुभग्रह भी देखे तो उस को कुछ अंश से न्यून योग कहना चाहिये ॥१४३॥

लग्न को लग्नेश और चार शुभग्रह पापग्रहों की दृष्टि से रहित यदि देखें तो पूर्ण योग होता है ॥१४४॥

लग्नेश कार्यक्षेत्र में और कार्येश लग्न में यदि हों तो एक प्रकार का योग होता है।

लग्नेश लग्न में और कार्येश कार्य में हो तो दूसरा योग होता है ॥१४५

लग्नेश और कार्येश लग्न में हो तो तीसरा योग होता है ॥

यदि लग्नेश और कार्येश दोनों कार्यक्षेत्र में हों तो चौथा योग होता है ॥१४६॥

1. काय for कार्य A. 2. A and A[1] add इति दशा 3. त्रिभागोनम् for तु भागोनम् Bh, 4. क्रूरा विचक्षणा for क्रूरावेक्षणा A, A[1] क्रूरावेक्षणावर्जा Bh. 5. लग्नपो for लग्नपौ A.

चतुर्ष्वप्युभयत्रापि चन्द्रदृग्दर्शनं मिथः ।
कार्यसिद्धिस्तदा ज्ञेया मित्रे चेदधिकं फलम् ॥१४७॥
चन्द्रदृष्टिं विनान्यस्य शुभस्य यदि दृग् भवेत् ।
शुभं प्रयोजनं किञ्चिदन्यदुत्पद्यते तदा ॥१४८॥
राजयोगा अमी ख्याताश्चत्वारोऽपि महाफलाः ।
अत्रैव दृष्टियोगेन सामान्येन फलं स्मृतम् ॥१४९॥
अर्द्धयोगा विनिर्दिष्टाः परस्परदृशं विना ।
चन्द्रदृष्टिं विना ज्ञेयं शुभं पादफलं बुधैः ॥१५०॥
परस्परं दृश्यमृते चन्द्रयोगो भवेद्यदि ।
तदार्द्धफलमाख्यातं प्रपञ्चोऽयं मतो मतेः ॥१५१॥
लग्नेशो वीक्षते लग्नं कार्येशः कार्यमीक्षते ।
कार्यसिद्धिर्भवेदिन्दुः कार्यमेति परं यदा ॥१५२॥
क्रूराक्रान्तः क्रूरयुतः क्रूरदृष्टश्च यो ग्रहः ।
विरश्मितां प्रपन्नश्च स विनष्टो बुधैः स्मृतः ॥१५३॥

---

इन चारों योगों में चन्द्रमा की दृष्टि परस्पर हो तो कार्यसिद्धि होती है। यदि यही मित्र के घर में पड़े हों तो अधिक फल होता है ॥१४७॥

यदि उक्त योगों में चन्द्रमा की दृष्टि न हो और अन्य किसी शुभ-ग्रह की दृष्टि हो तो किसी अन्य ही प्रकार का शुभफल उत्पन्न हो जाता है ॥१४८॥

ये चार राजयोग कहे गये हैं जिनके उत्कृष्ट फल होते हैं। इन में सामान्य दृष्टियोग से सामान्य फल होता है ॥१४९॥

पारस्परिक दृष्टि न होने से अर्धयोग होता है। चन्द्रदृष्टि के बिना चतुर्थांश शुभ जानना चाहिये ॥१५०॥

पारस्परिक दृष्टि के न होने पर यदि चन्द्रमा के साथ योग हो तो अर्धफल कहना चाहिये ॥१५१॥

लग्नेश लग्न को देखे और कार्येश कार्यक्षेत्र को देखे और चन्द्रमा कार्यक्षेत्र में जब हो तो कार्यसिद्धि अवश्य होती है ॥१५२॥

जो ग्रह पापग्रहों से आक्रान्त, युक्त वा दृष्ट हो वा सूर्यराशि में प्रवेश कर गया हो तो वह विनष्ट-सा हो जाता है अर्थात् उसकी सत्ता नहीं रहती ॥१५३॥

क्रूरेण जीयमानो यो राहुपार्श्वे यथा रविः ।
क्रूराक्रान्तः स विज्ञेयः क्रूरयुक्तः समेंशके ॥१५४॥
पूर्णया दृश्यते दृष्ट्या क्रूरो दृष्टः[1] स उच्यते ।
प्रविविक्षुः प्रविष्टो वा सूर्यराशौ विरश्मिकः ॥१५५॥
लग्नाधिपे विनष्टे स्याद्विनष्टावयवः पुमान् ।
विनष्टजातिवर्णश्च शुभाकारो विपर्यये ॥१५६॥

राजयोगानाह

भावेभ्योऽप्युत्तमं भाग्यं तृतीयेन समन्वितम् ।
उभयत्राश्रिताः सौम्या भाग्यस्यैव हि पोषकाः ॥१५७॥
तृतीयेऽपि ग्रहे[2] सौम्या[3] भाग्यप्रकर्षपोषकाः ।
तत्रापि पूर्णदृष्ट्या च पुण्योपचयसाधकाः ॥१५८॥

---

जिस तरह राहु के पास सूर्य दिखाई देते हैं उसी तरह पापग्रहों से जो ग्रह पराजित किया गया हो वह क्रूराक्रान्त कहलाता है।

यदि क्रूरग्रह के समान अंश में कोई ग्रह हो तो वह क्रूरयुक्त कहलाता है ॥१५४॥

जब कोई ग्रह पापग्रह से पूर्णदृष्टि से देखा जाय तो क्रूरदृष्ट कहलाता है। जो ग्रह सूर्यराशि में प्रवेश करना चाहता अथवा प्रविष्ट हो गया हो वह विरश्मिक समझा जाता है ॥१५५॥

लग्नाधीश यदि विनष्ट हो तो उसे किसी अङ्ग से हीन कहना चाहिये। उसके जाति और वर्ण सभी नष्ट कहने चाहियें। इसकी विपरीतावस्था में उसे शुभ आकार वाला कहना चाहिये ॥१५६॥

सभी भावों में भाग्यस्थान और तृतीय स्थान उत्तम कहा गया है। इन दोनों स्थानों में यदि शुभग्रह हों तो वे भाग्य के पूर्ण वर्द्धक होते हैं ॥१५७

तृतीय भाव में यदि शुभ ग्रह हों तो वे भाग्य के प्रकृष्ट पोषक होते हैं। फिर भी यदि वे पूर्ण दृष्टि से भाग्येश को देखते हों तो उसे पुण्यशील कहना चाहिये ॥१५८॥

---

1. क्रूरदृष्टः for क्रूरो दृष्टः A. 2. ग्रहाः for ग्रहे A. 3. भाग्याप्रकर्ष A., भाग्यप्रकर Bh.

ततो मूर्तिः पुनः श्रेष्ठा भाग्यानां तु समाश्रयः ।
भावानां परमो भावस्तनुर्द्वादशपोषकः ॥१५९॥
तूर्ये सौम्याः शुभा एव मातृद्रव्यादिभोज्यदाः ।
राज्यप्रदाः शुभैर्दृष्टाः सर्वे सम्पत्तिदायकाः ॥१६०॥
ततस्तुर्यं निधिः श्रेष्ठं राज्यभावसमन्वयम्[1] ।
ततः शुभं[2] शुभैर्दृष्टं लाभेन सहितं नभम्[3] ॥१६१॥
ततो धनं शुभाक्रान्तं जायास्थानं ततः शुभम् ।
शुभमप्यस्तकेन्द्रत्वाच्छुभस्थानं बले गते[4] ॥१६२॥
उदयगते वृषराशौ भाग्यं पश्यति भाग्यपे ।
तत्कालं यः पुमान् जातो यावज्जीवं समृद्धिमान् ॥१६३॥
उदयतो वृषेशस्य स्वोच्चं तदैव गच्छतः[5] ।
स्वयं पश्यति लग्नेशे जातश्चिरं समृद्धिमान् ॥१६४॥

---

भाग्यादिकों का आश्रय होने के कारण लग्न भी श्रेष्ठ माना गया है और सब भावों को पुष्ट करने वाला लग्न सब से श्रेष्ठ है ॥१५९॥

चतुर्थ स्थान में शुभग्रह रहने से ही शुभ होता है और वे मातृ-धन-भोज्य आदि सुख को देने वाले होते हैं। यदि वे शुभग्रहों से देखे जायें तो राज्य वा सम्पत्ति देने वाले होते हैं ॥१६०॥

उसके बाद राज्यस्थान को समन्वय करने वाला चतुर्थ स्थान श्रेष्ठ है। उसके बाद लाभस्थान से सम्बन्ध रखने वाला दशम भाव शुभ ग्रह से युक्त या देखा जाय तो शुभ फल देता है ॥ १६१ ॥

शुभ ग्रह से सम्बन्ध रखने वाला धनस्थान और सप्तम स्थान हो तो शुभ होता है। सप्तम स्थान भी केन्द्र होने के कारण बलवान, शुभ ग्रह से युक्त, दृष्ट होने से शुभ होता है ॥ १६२ ॥

वृष लग्न हो और भाग्येश भाग्य स्थान को देखता हो उस समय में जो लड़का पैदा हो उसे आजीवन ऐश्वर्ययुक्त कहना चाहिये ॥ १६३ ॥

वृष लग्न हो और लग्नेश स्वोच्चाभिमुख अर्थात उच्च स्थान में जाता हो और लग्नेश लग्न को देखे तो बालक चिरकाल तक ऐश्वर्ययुक्त होगा ॥ १६४ ॥

---

1. भावसमं द्वयम् for भावसमन्वयम् A. 2. सतं for शुभं A. 3. The reading मतम् ( A.. Bh. ) for नभम् is correct. 4. गतम् for गते A. 5 भाग्यं पश्यति भाग्यपे । तत्कालं यः पुमान् जातो यावज्जीवं for स्वोच्चं तदैव गच्छतः । स्वयं पश्यति लग्नेशे Bh.

लग्नस्वनिधिभाग्येशेऽभ्युदयात् पञ्चतुर्यके[1][2]।
तत्कालं यः पुमान् जातः स च कोटीश्वरो भवेत् ॥१६५॥
सर्वैर्ग्रहैः परे दृष्टेऽभ्युदयत्येव लग्नपे।
स्वोच्चमित्रस्वगेहे[3] वा जातो भवति भूमिपः ॥१६५॥
केन्द्रगतैः सर्वग्रहैरुदयत्येव लग्नपे।
मूर्तिं पश्यति लग्नेशे चक्रवर्ती नरस्तु सः ॥१६७॥
भाग्यपेऽभ्यन्तरे राशौ गते जन्म यदा भवेत्।
लग्नपे च विशेषेण यावज्जीवं समृद्धिमान् ॥१६८॥
त्रिभिश्छत्रं महाच्छत्रं पञ्चभिश्चातिच्छत्रकम्[4]।
सप्तभिस्तुर्यपङ्क्त्यन्तं ग्रहैश्छत्रादिनिर्णयः ॥१६९॥
लग्नाधारो भवेज्जीवः शरीरं चन्द्रमाः पुनः।
तेजस्तेजोनिधिः प्रोक्तः शाखाः स्युस्त्वितरे ग्रहाः ॥१७०॥

लग्नेश, धनेश, चतुर्थेश और भाग्येश यदि लग्न से पञ्चम वा चतुर्थ स्थान में हों तो उस लग्न में उत्पन्न बालक कोटीश्वर अर्थात् बड़ा धनवान् होता है ॥ १६५ ॥

लग्नेश लग्न वा अपने उच्च अथवा मित्र स्थान में रहे और शुभ ग्रहों से देखा जाय तो वह शिशु राजा होता है ॥ १६६ ॥

सभी ग्रह केन्द्र में और लग्नेश लग्न में रहे वा लग्नेश लग्न को देखे तो वह मनुष्य चक्रवर्ती होता है ॥ १६७ ॥

भाग्येश लग्न और भाग्य स्थान के बीच किसी राशि में हो वा लग्नेश लग्न और भाग्य के बीच हो तो वह शिशु जीवनपर्यन्त समृद्धिशाली होता है ॥ १६८ ॥

तीन ग्रहों से छत्र, पांच ग्रहों से महाछत्र, सात से अतिछत्रक, चार से दस तक इस प्रकार ग्रहों से छत्र आदि का निर्णय समझना चाहिये॥१६९॥

गुरु शरीर का आधार, चन्द्रमा शरीर और सूर्य शरीर का तेज माने गये हैं। और मंगलादि अन्य ग्रह उसकी शाखा होती हैं ॥ १७० ॥

1. लग्नस्य for लग्नस्व A., लग्नेशो Bo. 2. ऽभ्युदयत्येव तुर्यके for ऽभ्युदयात पञ्चतुर्यके A. 3. स्वगृहे for स्वगेहे A. 4. पञ्चभिरति for पञ्चभिश्चाति A.

लग्ने गुरुर्निधौ चन्द्रः छिद्रे शुक्रः पदे रविः ।
स्वमित्रे निजगेहादौ वाञ्छितेशो भवेन्नरः ॥१७१॥
मूर्तौ जीवः सितस्तुर्ये स्मरे सोमः पदे रविः ।
राहुणा सहितो लग्ने स प्रौढः पुण्यभाजनम् ॥१७२॥
विद्या संजीवनी नाम शुक्रस्यैव न वाक्पतेः ।
अतोऽपि हेतुना जीवात्कविरेव बलाधिकः ॥१७३॥
लग्नवित्ताधिपौ लग्ने दृष्टौ जीवहिमांशुना ।
नीचे वा शत्रुलाभे वा कोटिशो वस्तु यच्छतः ॥१७४॥
यत्र यद्राशिपो राजा भवन्नुदेति तत्क्षणम् ।
तद्राशिलग्नवाक्यानामुदयस्तत्र[1] वत्सरे ॥१७५॥
उच्चस्थो मुदितो राजा राशिपो[2] लग्नतो[3] यदि ।
तत्र वर्षे शुभं कुर्याद्दुष्टो वापि गृहाधिपः ॥१७६॥

---

यदि लग्न में गुरु, चतुर्थ स्थान में चन्द्रमा, अष्टम स्थान में शुक्र और पद स्थान में सूर्य हों और अपने मित्र या स्वगृह इत्यादि में स्थित हों तो स्वेच्छापूर्ति वाला होता है ॥ १७१ ॥

लग्न में गुरु, चतुर्थ स्थान में शुक्र, सप्तम में चन्द्र और पदस्थान में सूर्य, राहु से युक्त लग्न हो तो वह मनुष्य प्रौढ़ पुण्यराशि वाला होता है ॥ १७२ ॥

संजीवनी विद्या शुक्र के पास ही है, बृहस्पति के पास नहीं। इस लिये भी गुरु से शुक्र ही बल में अधिक है ॥ १७३ ॥

लग्नेश और धनेश लग्न में रहें, गुरु तथा चन्द्रमा की दृष्टि उन पर रहे तो लग्नेश और धनेश नीच शत्रु वा लाभ स्थान में भी रहें तो वे मनुष्य को करोडों वस्तुएँ देते हैं ॥१७४॥

जिस किसी राशि का भी स्वामी वर्षेश होकर उस समय लग्न में हो तो उस वर्ष उस राशि वा लग्न वालों को लाभ होता है ॥१७५॥

किसी राशि का स्वामी वर्षेश होकर यदि उच्च का हो उस उच्च-स्थ राशि का स्वामी दुष्ट हो, उस वर्ष मे वह प्रसन्न होकर शुभ फल ही पाते हैं ॥१७६॥

---

1. ०वाच्याना ०for ०वाक्याना० A. 2. राशिपौ for राशिपो A
3. लग्नपौ for लग्नतो A.

षष्ठाष्टमान्त्ये सौम्यास्तत्फलाः क्रूरास्तदर्थहाः ।
नेन्दुर्लग्नान्त्यषष्ठाष्टः शेषस्थानौघपोषकाः ॥१७७॥

इतिग्रहस्वरूपम् ।[1]

मूर्तौ ज्ञेयं रूपवृत्तं लक्षणायुर्वयो व्रणम् ।
वर्णक्लेशदोषमानपूजारोग्यं[2] शुभं सुखम् ॥१७८॥
धने मौक्तिकरत्नानि हेमाद्याः सप्तधातवः ।
पशुधान्याम्बरं क्रय्यं क्रयाणकगणो धनम् ॥१७९॥
सहजात्प्रशुभदासीभगिनीभ्रातृपदादयः ।
सुहृत्सुखं दुःखमैत्री निधि[3]स्थानगमागमौ ॥१८०॥
ग्रामपितृमातृकृषिवाटीधृतिगेहिनीमहोषधयः ।
शुक्तिबिलप्रवेशादेशो[4] लाभं च कुशलं च ॥१८१॥
सुतान्मन्त्रसुतौ[5] विद्याप्रतापशिष्यबुद्धयः ।
[6]गर्भसन्धिः शुभद्रव्यं स्थानोपायनयादयः ॥१८२॥

६, ८, १२ वें गृहों में सौम्य ग्रह शुभ फल देते हैं और क्रूर ग्रह धन की हानि करते हैं अन्य स्थानों में ग्रह पुष्टिकारक होते हैं। १, १२, ६, ८ वें स्थानों में चन्द्र शुभ नहीं होता है ॥१७७॥

लग्न स्थान से रूप, लक्षण, आयु, अवस्था, वर्ण, क्लेश, दोष, मान, पूजा, आरोग्य, शुभ, सुख इत्यादि विषयों का विचार किया जाता है ॥१७८॥

धनभाव से मोती रत्न और सुवर्ण आदि सात धातु पशु, धान्य, वस्त्र और अन्य भी क्रय वस्तुओं का विचार करना चाहिये ॥१७६॥

सहज स्थान से शुभ दासी, बहिन, भाई, पद आदि का विचार, सुहृद्भाव से मित्र, सुख, दुःख निधि का आना वा जाना, ग्राम-मातृ-पितृ सुख, कृषि, बाग, धैर्य, स्त्री, महोषधि, भोग, बिलप्रवेश, आज्ञा, लाभ और कुशल, का विचार करना चाहिये ॥१८०-८१॥

पञ्चम स्थान से पुत्र, मन्त्र, विद्या, प्रताप, शिष्य बुद्धि, गर्भ, सन्धि, शुभ द्रव्य की प्राप्ति, स्थानप्राप्ति, उपायसिद्धि, नीतिसफलता आदि का विचार करना चाहिये ॥ १८२ ॥

1. After this A[1] reads: इदानीं द्वादशभावेभ्यो वपुषो (? नो ms) यस्य निर्णयः क्रियते तान् भावानाह । 2. पूज्या for पूजा A. 3. वृद्धि for निधि A A[1] 4 प्रवेशोदेशो for प्रवेशादेशो Bh. 5. सुतो for सुतौ A. 6. गर्भः सन्धिः for गर्भसन्धिः A[1]

रिपौ चतुष्पदं नीचं मातुलः क्रूरकर्म च ।
दासी दासो रिपुर्व्याधिः परतोऽहङ्कृतिर्व्रणम् ॥१८३॥
अस्तात्साध्यव्यवहारः कलहश्च गमागमौ ।
चौरो विजयः स्वस्थत्वं हर्षो भगटकः[1] स्मृतः ॥१८४॥
मृत्योर्नद्युत्तारगणो[2] यथाधिदुर्गमापदः ।
योनिविस्मृतिनिष्पत्तिः[3] संवादो[4] भेदपत्तयः ॥१८५॥
शत्रुद्रव्यं परीवारो मृतार्थश्चिरवस्तुनः[5] ।
निधनं[6] पोतजार्थाप्तिराकुलत्वं[7] च चिन्तयेत् ॥१८६॥
धर्माद्वापी कूपसरः प्रपामठ[8]सुरालयाः ।
दीक्षायात्रानव्यविद्या पुण्यं भाग्यं गुरुस्तपः ॥१८७॥

---

षष्ठ स्थान से नीच पशु, मामा, क्रूरकर्म, दासी, दास, शत्रु, व्याधि, दूसरे से अहंकार तथा क्षति आदि बातों का विचार करना चाहिये ॥ १८३ ॥

सप्तम स्थान से योग्य व्यापार, आना, जाना, व्यय, चोर, विजय, स्वस्थता, हर्ष, रोग, आदि का विचार करना चाहिये ॥ १८४ ॥

अष्टम स्थान से नदी को पार करना, आधि, मार्ग के संकट, मार्गश्रम, मार्गापत्ति, योनि, विस्मृति, संवाद, भेद, शत्रु, द्रव्य, परिवार, चिर नष्ट धन तथा वस्तु, मरण, सामुद्रिक व्यवसाय से अर्थलाभ तथा राजकुल के सम्बन्ध आदि का विचार करना चाहिये ॥ १८५-८६ ॥

धर्मस्थान से बावड़ी, कूप, तालाब, प्याऊ मन्दिर तथा मठ, दीक्षा, यात्रा, नवीन प्रकार की विद्या, पुण्य, भाग्य गुरु और तपश्चर्या आदि के विषयों का विचार करना चाहिये ॥१८७॥

---

1 रुफ्ठकः for भगटकः *A*mb. 2. for मृत्योर्नद्युत्तारगणोमृत्योर्निद्युत्तारगणो A. नद्यो मृत्युतारगणो पथ्याधि० *3*. नष्टाप्तिः for निष्पत्तिः A, Bh. 4. संवादौ for संवादो A. 5. मृतार्था भकटकः स्मृता Bh. 6. निधानं for निधनं A. 7. ०राजकुलत्वं for राकुलत्वं A. *8*. पाठ for मठ A.

कर्मतो राजवृद्ध्यादि पितृमुद्रापुरादिकम् ।
खेचरत्वं पुण्यमानौ निर्वाहश्चाधिकारिता ॥१८८॥
राजवेश्म मित्रवेश्म पशुप्रारब्धकर्म च ।
आचार[1]स्थानमायातुर्यानानि[2] करिवाजिनः ॥१८९॥
वस्त्रायुः स्वर्णसस्यस्त्रीविद्याराजपरिच्छदः ।
मित्राश्रमौ रूपवित्तं[3] लाभो राजकुलादपि[4] ॥१९०॥
व्ययाद्विवाहयज्ञादि महायुद्धानि कीर्त्तनम् ।
त्यागभोगौ कृषिभ्रंशः विश्वासकुपथा व्ययः ॥१९१॥
इति द्वादशभावेभ्यस्तत्त्वचिन्ता ।
सर्वश्रियां परीणामो यत्स्वरूपं जगत्त्रयम् ।
सिद्धचक्रं नमस्कृत्य वक्ष्ये किञ्चित्तमोऽपहम् ॥१९२॥

कर्म्मस्थान से राजकुल में प्रतिष्ठा, सम्मान आदि, पैतृक सम्पत्ति की प्राप्ति, ग्राम आदि की प्राप्ति, व्योमयानों मे उड़ना अथवा देवाहं सम्मान की प्राप्ति, पुण्यप्राप्ति, श्रेयप्राप्ति, अच्छा निर्वाह तथा अधिकार-प्राप्ति—इन बातों का विचार करना चाहिये ॥१८८॥

राजभवन से सम्बन्ध, मित्र के घर से सम्बन्ध, पशु के साथ सम्बन्ध, प्रारब्ध कर्म की सफलता, आचार, स्थान, तथा हाथी, घोड़ा आदि यानों के विषय में विचार करना चाहिये ॥१८९॥

आय स्थान से वस्त्र, आयु, सुवर्ण, धान्य, स्त्री, विद्या, राज-सम्बन्ध, मित्र, आश्रम, रूप, धन राजकुल से लाभ आदि बातों का विचार करना चाहिये ॥१९०॥

व्यय स्थान से विवाह, यज्ञ, आदि, युद्ध, त्याग, भोग, कृषि की हानि, किसी पर विश्वास तथा कुमार्ग से धन व्यय आदि विचार करना चाहिये ॥१९१॥

जो सब प्रकार की सम्पत्तियों के कारण हैं, जो तीनों लोकों के स्वरूप हैं ऐसे सिद्ध महापुरुषों को नमस्कार करके मैं कुछ अज्ञाननाशक बातें कहता हूँ ॥१९२॥

*1.* आचाराः for आचार A. *2.* मायान्त यानानि for ०माया-तुर्यानानि A. *3.* भूपवित्तं for रूपवित्तं A. भूमिवित्तं Bh. 4. The reading of the Amb. text (राजलाभो कुलादपि) is obviously in- correct, I have, therefore, adopted the reading of A, A[1].

अश्विनी मृगशीर्षश्च हस्तः पुष्यः पुनर्वसुः ।
स्वातिश्च रेवती चैव जन्मकाले धनप्रदाः ॥१९३॥
भरणी च मघा चित्रा विशाखा शततारिका ।
धनिष्ठाऽऽश्लेषिका प्रोक्ता जन्मन्यशुभदायिनः[1] ॥१९४॥
कृत्तिका रोहिणी चार्द्रा ज्येष्ठा मूलाख्यतारिका ।
श्रवणं चानुराधा च मघा पूर्वोत्तराधिकम्[2] ॥१९५॥
सोमो बुधो गुरुः शुक्रो वाराश्चत्वार उत्तमाः ।
रविर्भौमः शनिर्वारो[3] विपरीतः समासतः[4] ॥१९६॥
नन्दा भद्रा जया पूर्णा शुभदास्तिथयो मताः ।
द्वादश्याद्याश्च रिक्ताश्च सर्वकर्मसु वर्जयेत् ॥१९७॥
तिथिनक्षत्रवारेषु शुभेषु जन्म यस्य वै ।
त्रिकोणोच्चग्रहैर्लग्ने राजा भवति सात्त्विकः ॥१९८॥

---

अश्विनी, मृगशिरा, हस्त, पुष्य, पुनर्वसु, स्वाती और रेवती—ये नक्षत्र जन्मकाल में प्रशस्त तथा धन को देने वाले हैं ॥१९३॥

भरणी, मघा, चित्रा, विशाखा, शतभिषा, धनिष्ठा, आश्लेषा—ये नक्षत्र यदि जन्मकाल में हों तो अशुभ फल देते हैं ॥१९४॥

कृत्तिका, रोहिणी, आर्द्रा, ज्येष्ठा, मूला, श्रवण, अनुराधा, मघा और तीनों पूर्वा, तीनों उत्तरा—ये मध्यम नक्षत्र कहे गये हैं ॥१९५॥

सोम, बुध, गुरु, शुक्र—ये चार ग्रह शुभ होते हैं। रवि, मंगल, शनि—ये अशुभ वार हैं अर्थात् शुभ वार में जन्म शुभफलद अन्यथा अशुभफलदायक होता है ॥१९६॥

नन्दा, भद्रा, जया, और पूर्णा ये तिथियां शुभ होती हैं । द्वादशी आदि तथा रिक्ता—इनको सभी शुभ कार्यों में त्याग देना चाहिये ॥१९७॥

शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र, और शुभ वार में जिस मनुष्य का जन्म हो और लग्न का त्रिकोण वा उच्च ग्रहों से सम्बन्ध हो तो वह मनुष्य सात्त्विक राजा होता है ॥१९८॥

---

1. ०दायिनी for दायिनः A, A[1]. 2. मध्यं सर्वोत्तरात्रिकम् A., A[1]. 3. ०वारा for ०वारो A. 4. विपरीताः सतां मताः for विपरीतः समासतः । A, Bh.

वर्षादौ दिवसादौ तु यस्य जन्म प्रवर्तते ।
स दीर्घायुर्बुधैर्वाच्यो ज्योतिःशास्त्रानुसारिभिः [1] ॥१९९॥
त्रिलोकीतिलकः प्राज्यप्रभावोऽतिशयाधिकः [2] ।
तीर्थकृत्पूज्यपुण्यात्मा मध्यरात्रोद्भवः पुमान् ॥२००॥
द्वौ प्रहरौ घटिकाहीनौ द्वौ प्रहरौ घटिकाधिकौ ।
विजया [3] नाम योगोऽयं सर्वकार्यप्रसाधकः ॥२०१॥ [4]
वर्षान्ते दिवसान्ते च यस्य जन्म ध्रुवं भवेत् ।
अल्पायुः स च विज्ञेयो दिव्यशास्त्रविचक्षणैः ॥२०२॥
मासमध्येषु [5] यत्संख्यदिवसे जायते पुमान् [6] ।
तत्संख्यवर्षभुक्तौ तु लक्ष्मीर्भवति निश्चितम् ॥२०३॥

---

वर्षादि एवं दिनादि में जिस मनुष्य का जन्म हो, ज्योतिःशास्त्रवेत्ताओं को उसे दीर्घायु कहना चाहिये ॥१९९॥

जिस मनुष्य का जन्म मध्यरात्रि में अर्थात् १२ बजे रात को हो वह त्रैलोक्यश्रेष्ठ, महाप्रतापी, महातेजस्वी, तथा तीर्थस्थानों में जाकर पुण्य करने वाला होता है ॥२००॥

१२ बजे के एक घटी पहले से लेकर १२ बजे के बाद १ घटी तक का समय विजय नाम वाले योग का होता है जो सभी कार्यों को सिद्ध करता है ॥२०१॥

वर्षान्त अथवा दिनान्त में जिसका जन्म हो वह निश्चय ही अल्पायु होता है । ऐसा दिव्य शास्त्रज्ञों ने बतलाया है ॥२०२॥

जिस किसी भी मास के जितने दिन में शिशु उत्पन्न हो उसके जन्म से उतने वर्ष में निश्चय ही लक्ष्मी की वृद्धि होती है ॥२०३॥

---

1. ०शास्त्रविशारदैः for ०शास्त्रानुसारिभिः A[1]. 2. ०शयाकुलः for ०शयाधिकः A. A[1]. 3. विजयो for विजया A, Bh. 4. सर्वकार्याणि साधयेत् for सर्वकार्यप्रसाधकः A, A[1]. ०कार्यार्थ० for ०कार्य प्र० Bh. 5. ०तु for ०षु Bh. 6. यत्संख्ये दिवसे जन्म जायते for यत्संख्यदिवसे जायते पुमान् A.

शनिश्चरे सदा दुःस्थो बुधे जातो [1]महाजडः।
मातृभिर्गुरुभिः[2] सार्द्धं हृदये कुटिलः कटुः ॥२०४॥
उत्तमतिथिसंयोगे रविवारोदये पुनः[3] ।
स्त्रीलग्ने स्त्रीगृहे[4] चैव नारी पुण्यवती मता ॥२०५॥
उत्तमतिथिसंयोगे रविवारोदये पुनः ।
क्वापि सुखी क्वचिद्दुःखी[5] जायते कटुभाषकः ॥२०६॥
महाभोगी महाचक्षुः स्त्रीषु लोलाङ्गनाप्रियः ।
सुभगः पात्रभूतश्च शुक्रे शुक्राधिको मतः ॥२०७॥
महाभोगी महात्यागी गुरुभक्तो गुरुप्रियः
निजक्षेत्रे गुरौ जातः पात्रभूतः पुमान् पुनः ॥२०८॥
अश्विन्याद्युत्तमे स्थाने जातो भवति पुण्यवान् ।
मध्येषु[6] कृत्तिकाद्येषु भरण्यादिषु दुर्गतः ॥२०९॥

शनिश्चर वार में उत्पन्न बालक सर्वदा दुःखावस्था में रहता है । बुध में महाजड़ और अपने माता, गुरुओं के साथ कौटिल्यपूर्वक व्यवहार करने वाला होता है ॥२०४॥

उत्तम तिथि के साथ रविवार का संयोग हो और कन्या लग्न तथा कन्या राशि रहे तो पुण्यवती कन्या का जन्म कहना चाहिये ॥२०५॥

रविवार में उत्तम तिथि के संयोग रहने पर भी उत्पन्न शिशु कभी सुखी कभी दुखी कभी कटुभाषी होता है ॥२०६॥

शुक्रवार में उत्तम तिथि के संयोग रहने पर महाभोगी, दिव्यचक्षु, सुन्दर स्त्रियों का प्रेमी तथा स्वयं भी सुन्दर और पुष्ट वीर्य वाला योग्य होता है ॥२०७॥

बृहस्पति वार में शुभतिथियों के संयोग रहने पर बालक महाभोगी, त्यागशील, गुरुभक्त, गुरुप्रिय तथा सुपात्र होता है ॥२०८॥

अश्विनी आदि उत्तम नक्षत्रों में उत्पन्न बालक पुण्यवान् होता है । कृत्तिकादि उक्त मध्यम नक्षत्रों में मध्यम और भरणी आदि अधम नक्षत्रों में अधम होता है ॥२०९॥

1. जडः पुमान् for महाजडः A. A[1]. 2. मातृभिः पितृभिः for मातृभिर्गुरुभिः A, A[1]. 3. तनुः for पुनः A. 4. ग्रहे for गृहे A. 5. कश्चिद्दुःखी सुखी क्वापि A, A[1]. 6, मध्यश्च for मध्येषु Amb.

पृच्छायां गौरगात्राणां यत्र मासे[1] गुरोर्भवेत् ।
उदयस्तत्र मासे स्यादुदयोऽस्तेऽस्तमादिशेत् ॥२१०॥

पृच्छायां श्यामगात्राणां यत्र मासे कवेर्भवेत्[2] ।
उदयस्तत्र मासे स्यादुदयोऽस्तेऽस्तमादिशेत् ॥२११॥

घातव्रणितगात्राणां यत्र मासे कुजोदयः ।
उदयस्तत्र मासे स्यात् पुंसामस्तेऽस्तमादिशेत्[3] ॥२१२॥

पृच्छायां भिन्नगात्राणां यत्र मासे बुधोदयः ।
उदयस्तत्र मासे स्यात् पुंसामस्तेऽस्तमादिशेत्[4] ॥२१३॥

उदयात्पृष्ठलग्ने[5] चेत् पृच्छायां पृच्छकस्य च ।
न स्यात् पृच्छार्थसम्पत्तिस्ततो लग्नान्तरे पुनः ॥२१४॥

---

प्रश्न करते समय यदि प्रश्न करने वाला गौर वर्ण का रहे तो गुरु का उदय जब हो उस समय प्रश्न कर्ता का भाग्योदय और गुरु के अस्त समय पर अस्त कहना चाहिये ॥२१०॥

यदि प्रश्नकर्ता श्यामवर्ण का हो तो शुक्रोदय के महीने उसका उदय और शुक्रास्त के महीने उसका अस्त कहना चाहिये ॥२११॥

यदि प्रश्नकर्ता वात तथा व्रणों से युक्त शरीर वाला हो तो मङ्गलोदय के समय उसका उदय और मङ्गलास्त के समय उसका अस्त कहना चाहिये ॥२१२॥

यदि प्रश्नकर्ता छिन्न भिन्न शरीर वाला हो तो बुध के उदयकाल में उसका उदय और अस्तकाल मे अस्त कहना चाहिये ॥२१३॥

प्रश्नकर्ताओं के प्रश्न के समय यदि पृष्ठोदय लग्न हो तो अभीष्ट सिद्धि नहीं होती । अन्य लग्नों में होती हैं ॥२१४॥

---

1, मासेन for मासे; the addition of न is redundant 2. कवि for कवे Amb. 3. For ०मस्तेऽस्तमादिशेत् A. reads मस्ते च दुर्गतिः 4. A, A[1] add here : आतंकं भग्नगात्राणां यत्र मासे शनेर्भवेत् । उदयस्तत्र मासे स्यात्पुंसामस्ते च पूर्ववत् । Bh. reads आतंकरुग्णगात्राणां यत्र मासे शनिर्भवेत । etc. 5. पृष्ठलग्नं for पृष्ठलग्ने A. Amb, चतुर्गतिः Bh. षष्ठे लग्ने for पृष्ठलग्ने Bh.

अतङ्क्रुग्णगात्राणां यत्र मासे शनेर्भवेत् ।
उदयस्तत्र मासे स्यात्पुंसामस्ते च दुर्गतिः[1] ॥२१५॥
पृच्छाकाले यदा स्वामी विलग्नस्योदयं भजेत्[2] ।
तदा सिद्धिर्बुधैर्वाच्या प्रष्टुर्मनसि या स्थिता ॥२१६॥
पृच्छाकाले यदा खेटा उदयं यान्ति भावपाः ।
अभ्युदयस्तदा वाच्यः प्रष्टुर्ग्रामपदादिभिः[3] ॥२१७॥
पृच्छाकाले चतुर्णां च कंटकानामिना यदि ।
एककालमुदीर्यन्ते[4] तदा प्रष्टुर्महोदयः ॥२१८॥
पृच्छायां गोचरे शुद्धिर्यदा काले प्रजायते ।
प्रष्टुरभ्युदयो वाच्यः शुभभाववशात्पुनः ॥२१९॥
पृच्छायां राशिनाथस्य यदा दशा शुभा भवेत् ।
प्रष्टुस्तदोदयो देश्यो राशेरपि प्रमाणतः ॥२२०॥

यदि प्रश्न करने वाला भीत वा रोगी हो तो शनि का जिस मास में उदय हो उस मास में उदय और अस्त के समय अस्त कहना चाहिये ॥२१५॥

प्रश्नकाल में यदि लग्नेश लग्न में रहे तो प्रश्नकर्ता की मनोगत बातों की सिद्धि होती है ॥२१६॥

प्रश्नकाल में जिन २ भावों के स्वामी जिस जिस समय में उदय होंगे उसी २ समय में प्रश्नकर्ता का ग्राम, पद, आदि विषयों का अभ्युदय कहना चाहिये ॥२१७॥

प्रश्नकाल में चारों केन्द्रस्थानों के स्वामी जब एक ही काल में उदित हों तब प्रश्नकर्ता का महान अभ्युदय कहना चाहिये ॥२१८॥

प्रश्नकाल में गोचरशुद्धि देखनी चाहिये । गोचरशुद्धि जब हो उस समय शुभ भाव के सम्बन्ध से प्रश्न करने वाले का अभ्युदय कहना चाहिये ॥२१९॥

प्रश्नकाल म राशीश की दशा जब शुभ हो, तब राशि के भी प्रमाण से प्रश्न करने वाले का अभ्युदय कहना चाहिये ॥२२०॥

1. चतुर्गतिः for च दुर्गतिः Amb. 2. व्रजेत for भजेत् A, A[1] लग्नस्योदयतां भजेत् for विलग्नस्योदयं Bh. 3. मास for ग्राम A. 4. मुदियन्ते for मुदीर्यन्ते A[1].

नाथोऽदये[1] दशा सौम्या गोचरे शुद्धिरुत्तमा ।
शकुनैः शोभनैर्जातैर्भवेत्पुंसां महोदयः ॥२२१॥
लग्नेशेऽभ्युदिते वाच्यं मासाब्दं तिथिलग्नभम्[2] ।
वयो वर्णं दिशां भाग्यं[3] त्रैलोक्यं च सदोदितम् ॥२२२॥
भावा अभ्युदिता[4] ज्ञेयाः दशा अपि[5] धनादयः ।
विपरीते विपर्यस्तं सर्वं ज्ञेयं धनादिकम् ॥२२३॥
सिंहलग्ने समायाते लग्नं पश्यति सिंहपे[6] ।
साम्राज्यं जायते पुंसां सिंहस्येव पराक्रमः ॥२२४॥
यो यो नाथयुतो दृष्टो भावः सौम्ययुतोऽथवा[7] ।
समृद्धिस्तस्य तस्यैव पापैरेवं विपर्ययः ॥२२५॥
आद्यं [8]भूदयकंटकं क्षितिगृहं पातालकेन्द्रं पुनः

प्रश्नकाल में जिस भाव का स्वामी उदित हो और गोचर शुद्धि उत्तम हो उसकी दशा शुभ होती है । इस स्थिति में यदि शुभ शकुन हो तो प्रश्नकर्ता का महान अभ्युदय कहना चाहिये ॥२२१॥

प्रश्नकाल में लग्नेश यदि उदित हों तो वह मास, वर्ष, तिथि लग्न, वय, वर्ण, भाग्य और त्रैलोक्य उसके लिये उदित रहते हैं ॥२२२॥

धनादि भावेशों के उदित रहने पर उनकी उदित दशा में धनादि विषयों का अभ्युदय कहना चाहिये और विपरीत होने पर उन विषयों की अवनति कहना चाहिये ॥२२३॥

प्रश्नकाल मे सिंह लग्न हो, सिंह का स्वामी ( सूर्य ) लग्न को देखता हो तो प्रश्नकर्त्ता को साम्राज्य की प्राप्ति तथा सिंह के समान पराक्रम होता है ॥२२४॥

जो जो भाव अपने स्वामी तथा शुभ ग्रह से युक्त तथा उससे देखा गया हो प्रश्नकर्ता की उस उस भाव मे समृद्धि होती है । यदि वही पापग्रह से युक्त वा दृष्ट हो तो अशुभ फल देता है ॥२२५॥

1. माघोदये for नाथोदये A. Amb. 2. मासाब्दं तिथिलग्नभम् for मासाब्दतिथिलग्नपात् Amb. 3. वर्गवर्णादशां भावाः for वयो वर्णं दिशां भाग्यं Amb. दिशां भावाः Bh. दिशां भाग्यं 4. अप्युदिता for अभ्युदिता A, A[1]. 5. द्वादशापि for दशा अपि A. 6. लग्नपे for सिंहपे Bh. 7. सौम्यैर for सौम्य A. 8. तू for भू Amb.

स्त्रीकेन्द्रं च तृतीयकं बुधजनैर्हर्षाख्यकेन्द्रं स्मृतम् ।
अभ्राख्यं दशमं मतं सुमनसां क्षोणीन्द्रकेन्द्रं पदं
पुष्टास्ते किल कण्टका बलयुता यच्छन्ति पूर्णं फलम् ॥२२६॥

तन्वादि[1] सप्तमं यावदुत्तरो[2] भाव उत्तमः ।
सप्तमं[3] प्रथमं यावद्दक्षिणस्त्वबलोऽधमः[4] ॥२२७॥
आद्याः[5] केन्द्रगताः खेटाः समस्ता उदिता मताः ।
अस्तकेन्द्रस्थिता[6]स्सर्वेऽप्यस्तमिताः शुभाशुभाः ॥२२८॥
पातालेऽप्युत्तमाः प्रोक्ता आकाशे मध्यमाः स्थिताः ।
उत्तरेऽभ्युदिता ज्ञेया विशेषेण बलाधिकाः ॥२२९॥
दक्षिणेऽप्युत्तमे[7] भागे बलहीना ग्रहा मताः ।
एवं लग्नबलं ज्ञात्वा विलग्ने फलमादिशेत् ॥२३०॥

---

केन्द्र पहला, चौथा, सातवां, दशवां कहलाते हैं । उसमें पहला उदयकंटक और क्षितिगृह, दूसरा पातालकेन्द्र, तीसरा, स्त्रीकेन्द्र और हर्ष-केन्द्र चौथा अर्थात दशम स्थान को अभ्राख्यकेन्द्र या क्षोणीन्द्रकेन्द्र कहते हैं । यदि ये स्थान सबल पुष्ट रहें तो पूर्ण फल को देते हैं ॥२२६॥

केन्द्रों में लग्न से सप्तम तक उत्तर भाव कहलाते हैं । वह उत्तम हैं और सप्तम से प्रथम तक दक्षिण भाव कहलाते हैं वह अधम अबल होते हैं ॥ २२७ ॥

पहले केन्द्रस्थित सब ग्रह उदित कहलाते हैं । और सप्तमकेन्द्र में स्थितग्रह शुभ अशुभ कहलाते हैं ॥२२८॥

पातालकेन्द्र में स्थित ग्रह उत्तम कहलाते हैं और दशम में मध्यम कहलाते हैं । उत्तर में स्थित ग्रह अभ्युदित कहलाते हैं उनमें बल भी होता है ॥२२९॥

दक्षिण में उत्तम भाग में रहने पर भी ग्रह बलहीन होते हैं । इस प्रकार लग्न जान कर फलादेश कहना चाहिये ॥२३०॥

---

1. तत्वादि for तन्वादि Amb. 2. दुत्तमो for दुत्तरो Amb. 3. सप्तमात् for सप्तमं Amb. 4. ऽधनः for ऽधमः Amb. 5. आद्याः for अथ Amb. 6. गता० for स्थिता A. 7. ०त्वधमा for प्युत्तमे A., Bh.

पृच्छालग्नेषु सर्वेषु जन्मपत्र्यां विचक्षणैः ।
केन्द्रस्थग्रहयोगेन[1] फलं वाच्यं मनीषिणा ॥२३१॥
आद्यकेन्द्रैर्ग्रहैर्जातः[2] पुण्यवान् पुरुषः स्मृतः ।
अस्तग्रहैर्[3] नभस्थैर्वा हीनो भवति मूर्तितः ॥२३२॥
कोऽत्र[4] वर्षः शुभोऽस्माकमिति प्रश्ने समागते ।
तत्ताजिकानुसारेण कीर्त्यते वर्षलक्षणम्[5] ॥२३३॥
जन्मतः प्रथमे लग्ने जन्मकालगतैर्ग्रहैः ।
वर्षं यावत्फलं ज्ञेयं[6] जन्मपत्र्यां विचक्षणैः ॥२३४॥
द्वितीये वत्सरे वाच्यं[6] द्वितीयलग्नतः फलम् ।
तृतीये वत्सरे[7] ज्ञेयं तृतीयादपि लग्नतः ॥२३५॥
एवं द्वादश वर्षाणि जन्म द्वादश लग्नतः ।
जन्मकालगतैरेव ग्रहैर्वाच्यं शुभाशुभम् ॥२३६॥

---

इस प्रकार जन्मपत्री तथा प्रश्नकुण्डली में भी केन्द्रस्थित ग्रह यदि बली हों तो शुभ अन्यथा विपरीत फल कहना चाहिये ॥२३१॥

आद्यकेन्द्र अर्थात् लग्न और चतुर्थ में स्थित ग्रह से बालक को पुण्यवान कहना चाहिये। सप्तम और दशमस्थ ग्रहों से उससे हीन कहना चाहिये ॥२३२॥

कौन सा वर्ष मेरे लिये शुभप्रद है इस प्रकार के प्रश्नों के लिये ताजिक के अनुसार वर्षफल कहा जाता है ॥२३३॥

जन्म कालिक लग्न से जिस घर में जो ग्रह स्थित हो उसके अनुसार एक वर्ष तक फल कहना चाहिये ॥२३४॥

इसी प्रकार द्वितीय वर्ष में द्वितीय स्थान से, तृतीय वर्ष में तृतीय स्थान से फलादेश कहना चाहिये ॥२३५॥

इस प्रकार जन्म लग्न से बारह स्थानों के द्वारा जन्म कालिक ग्रहों से बारह वर्ष तक शुभ और अशुभ फल कहना चाहिये ॥२३६॥

---

1. केन्द्रस्थ for केन्द्रस्था A. 2. केन्द्रगतैः खेटैः for केन्द्रैर्ग्रहैर्जातः A. 3. गतै for ग्रहै A 4. कोऽस्ति for कोऽत्र A. 5. वर्षजं फलम् for वर्षलक्षणम् A., Bh. 6. वाच्यं for ज्ञेयं A[1]. 7. The portion beginning with वाच्यं and ending with वत्सरे is missing in A.

द्वादश नवका यावदष्टोत्तरशतं भवेत् ।
एवमायुषि सम्पूर्णे नवा वार्ता[1] भवन्ति हि ॥२३७॥
मेषसंक्रान्तिकाले च वर्षे पूर्णेऽखिलेऽपि हि ।
धनानुजादयो भावाः पुनर्लग्नीभवन्त्यमी[2] ॥२३८॥
जन्मकालगताः खेटाः सन्तिष्ठन्ति तथैव हि ।
मुथहासंज्ञितं लग्नं वर्षलग्नं[3] भवेदिदम् ॥२३९॥
मेषसंक्रान्तिकाले हि[4] वर्षलग्नं प्रवर्तते ।
जन्मकालग्रहैरेव पुनर्वर्षफलं वदेत् ॥२४०॥
सर्वे तन्वादयो भावाः शुभयुक्ता बलावहाः[5] ।
क्रूरयुक्ताश्च ते दृष्टा विपरीतफलप्रदाः ॥२४१॥
उदयात्पञ्चमं यावदवस्था प्रथमा समा ।
पञ्चमान्नवमं यावदवस्था हि द्वितीयका ॥२४२॥

इस प्रकार बारह भावों को ९ बार करके १०८ वर्ष होते हैं। सम्पूर्ण आयु में बारह भावों के नौ चक्र होते हैं ॥२३७॥

मेष संक्रान्ति के समय वर्षपूर्ति हो जाने पर फिर धन, भ्रातृ आदि भाव और लग्न बन जाते हैं ॥२३८॥

जन्म काल में जैसे ग्रह स्थित होते हैं । वैसे ही पहले वर्ष में वर्षकुण्ड में भी होते हैं और वर्ष लग्न ही मुथहा कहलाते हैं ॥२३९॥

मेष संक्रान्ति काल में जिसका वर्ष बदलता है उसको उसी काल का लग्न तथा ग्रह से वर्षफल कहा जाता है ॥२४०॥

सभी तनु आदि भाव शुभ ग्रहों से युत हों तो बलिष्ठ होकर शुभ फल देते हैं। वे ही यदि पाप ग्रहों से युक्त देखे जाते हों तो विपरीत फलदायक होते हैं ॥२४१॥

लग्न से पञ्चम भाव तक प्रथम अवस्था कहलाती है। पञ्चम भाव से नवम भाव तक दूसरी अवस्था होती है ॥२४२॥

1. नवावर्ता for नवा वार्ता A., Bh. 2. भवन्ति ते for भवन्त्यमी A. 3. वर्षलग्नं is missing in the text. 4. च for हि A. 5. शुभा० for बला० A.

नवमात्प्रथमं यावदवस्था स्यात्तृतीयका ।
अर्द्धपञ्चमसन्धौ हि पूर्वे पूर्वे[1] पतन्त्यधः ॥२४३॥
पञ्चमान्नवमं यावत्तन्वादिषु शुभैर्ग्रहैः[2] ।
जन्ममध्ये च यस्यैवं[3] सौख्यं भवति निश्चितम् ॥२४४॥
उदयात्पञ्चमं यावज्जन्मपत्र्यां शुभग्रहैः ।
वयसि प्रथमे सौख्यं प्रष्टुर्वाच्यं नवं नवम् ॥२४५॥
नवमात्प्रथमं यावत् सर्वभावे शुभग्रहैः ।
वृद्धत्वेऽपि हि जन्तूनां[4] सर्वसौख्यं प्रवर्तते ॥२४६॥
अवस्थात्रये सौम्याश्चेद्वाच्यं वयस्त्रये[5] सुखम् ।
यत्र[6] वयसि तुङ्गाश्चेद्राज्यलक्ष्मीप्रदा मताः ॥२४७॥

नवम भाव से प्रथम भाव तक तीसरी अवस्था होती है और आधे की सन्धि से पञ्चम भाव की सन्धि तक पहली अवस्था में परिगणित होती है। और उससे नवम भाव की सन्धि तक दूसरी अवस्था, उस से आगे तृतीय अवस्था में परिगणित होती है ॥२४३॥

जन्मकाल में पञ्चम से नवम तक तन्वादि भावों में यदि शुभ ग्रह हों तो उसे निश्चित ही सुख प्राप्ति होती है ॥२४४॥

जन्म लग्न से पञ्चम तक यदि शुभ ग्रह पड़े हों तो बालक को प्रथम अवस्था में कुछ नए प्रकार का सुख होना चाहिये ॥२४५॥

नवम भाव से प्रथम भाव तक यदि सभी भावों में शुभ ग्रह पड़े हों तो वृद्धावस्था में भी सुखप्राप्ति होती है ॥२४६॥

तीनों अवस्थाओं में यदि शुभग्रह हों तो बाल्य, युवा और वृद्ध इन तीनों अवस्थाओं में सुख कहना चाहिये । किन्तु जिस अवस्था में शुभ ग्रह अपनी उच्च अवस्था में हों तो उस में राज्यलक्ष्मी होती है ॥२४७॥

1. पूर्वैः पूर्वैः for पूर्वे पूर्वे A. 2. शुभग्रहैः A. 3. जन्ममध्यमवस्थेव for जन्म मध्ये च यस्यैवं A. 4. सम्प्राप्ते for जन्तूनां 5. भवे 6. यस्मिन् for यत्र A.

आद्यावस्था गतास्तुङ्गा राज्यमाद्यवयोगतम्[1] ।
मध्यावस्थागतास्तुङ्गा यौवने राज्यदाः स्मृताः ॥२४८॥
अन्त्यावस्थागतास्तुङ्गा वार्द्धके राज्यदा मताः[2] ।
आद्यावस्थास्थिताःक्रूरा बाल्ये दारिद्र्यदाः स्मृताः ॥२४९॥
मध्यावस्था यदा[3]क्रूरा यौवने दौःख्यदायकाः[4] ।
अन्त्यावस्थागताः क्रूरा अन्ते[5] वयसि दुःखदाः ॥२५०॥
एवं ग्रहानुमानेन सुखदुःखं[6] सतां[7] भवेत् ।
यस्मिन् वयसि तुङ्गाश्चेन्मुदिताः सौख्यसंयुताः[8] ॥२५१॥
तत्र राज्यं सुखं लक्ष्मीस्तेजो भवति निश्चितम् ।
यस्मिन् वयसि मन्दाः स्युः क्रूरदृष्टा विरश्मिकाः[9] ॥२५२॥

यदि आद्य अवस्था में उच्च के ग्रह रहें तो बाल्य अवस्था में ही राज्यप्राप्ति होती है। यदि वे मध्यावस्था में उच्च के हों तो युवावस्था में राज्यप्रद होंगे ॥२४८॥

यदि अन्त्यावस्था में उच्च ग्रह हों तो वृद्धावस्था में राज्यप्राप्ति होती है। आद्यावस्था में यदि क्रूर ग्रह हों तो बाल्यकाल में उसे दरिद्र कहना चाहिये ॥२४९॥

मध्यावस्था में यदि पापग्रह हों तो उस पुरुष की यौवनावस्था में दुःख देने वाले होते हैं। अन्त्यावस्था में यदि पापग्रह हों तो बुढ़ापे में भी दुःख देने वाले होते हैं ॥२५०॥

इस प्रकार ग्रह स्थिति के अनुसार सुख दुःख सदा कहना चाहिये। जिस किसी भी अवस्था में उच्च के ग्रह हों उस अवस्था में प्रसन्न एवं सुखपूर्ण हों ॥२५१॥

उस समय मनुष्य को राज्य, सुख, लक्ष्मी, तेज आदि निश्चय से होते हैं। जिस अवस्था में स्वयं भी पापग्रह अन्य पापग्रहों से देखे जांय तथा सूर्य में प्रवेश कर जांय ॥२५२॥

1. वयोचितम् for वयोगतम् A. 2. स्मृताः for मताः A. 3. गताः for यदा A 4. दौस्थ्य for दौःख्य A. 5. मन्दास्त्वन्ये A. 6. सुखं for सुख A. 7. सदा for सतां A. 8. सौम्य for सौख्य A. 9. विरश्मिताः for विरश्मिकाः Amb.

तत्र हानी रुजातंकः पदभ्रंशः खलागमः ।
लग्ने तुंगे महालक्ष्मीस्तूर्यगे च[1] धनागमः ॥२५३॥
तुंगे[2] जायास्तगे खेटे खे तुंगे[3] राज्यसंपदः ।
खेटोदयानुमानेन फलवर्षे फलं[4] मतम् ॥२५४॥

॥ इति वर्षफलम् ॥

श्रीहेमशालिनां योग्यमप्रभीकृतभास्करम्[5] ।
सूक्ष्मेक्षिकया चक्रेऽरिभिः शास्त्रमदूषितम् ॥२५५॥

## अथ निधानप्रकरणम् ।

एकाकिन्यपि तुर्यंशे तुर्यं पश्यति वा स्थिते ।
अवश्यं विभवस्तत्र विद्यते कृतनिश्चयः ॥२५६॥
एकाकिन्यपि शीतांशौ तुर्यं पश्यति वा स्थिते ।
क्षीणे वास्तमिते चापि ध्रुवं ज्ञेयो निधिर्गृहे ॥२५७॥

---

तो मनुष्य को हानि, रोग, भय, स्थानभ्रंश, दुष्टरोग आदि होते हैं। उच्च का ग्रह यदि लग्न में हो तो धनप्राप्ति होती है ॥२५३॥

यदि ग्रह उच्च का होकर जायागृह हो अथवा स्वोच्चस्थ ग्रह दशम में रहे तो राज्यप्राप्ति होती है। इस प्रकार ग्रहों के उदयमान से वर्ष फल कहना चाहिये ॥२५४॥

ऐश्वर्य चाहने वालों के योग्य, अपनी प्रभा से सूर्य की प्रभा को तिरस्कृत करने वाले, तथा शत्रुओं से अदूषित इस शास्त्र को श्रीहेमसूरि ने सूक्ष्म विचार से किया ॥२५५॥

अकेला भी कोई ग्रह चौथे स्थान में वा उसके नवांश में रहे वा उस स्थान को देखे तो अवश्य ही सम्पत्ति का लाभ होता है ॥२५६॥

अकेला क्षीण वा अस्त भी चन्द्रमा चतुर्थ स्थान को देखे वा उसमें रहे तो उसके घर में अवश्य निधि होती है ॥२५७॥

---

1. तुर्ये तुंगे for तुर्यगे च A, 2 तुंगा for तुंगे A. 3. तुंगं for तुंगे A. 4. फलं वर्षफले for फलवर्षे फलं A., Bh. 5. प्रतीकृत for ०प्रभीकृत A.

स्थानत्रयेषु सौम्याश्चेन्निधिः स्थानत्रये मतः ।
धनस्थाने बलं[1] द्रव्यं तुर्यगेहे महानिधिः ॥२५८॥
छिद्रस्थाने च पूर्वेषामतीतानां महानिधिः ।
[2]शुभखेटानुसारेण रूप्यस्वर्णादि[3] निर्णयः ॥२५९॥
क्रूरे तूर्यपतौ द्रव्यं विद्यते लभ्यते नहि ।
क्षीणचन्द्रेऽपि तूर्यस्य[4] लभ्यते तत्र वत्सरे ॥२६०॥
जायायां[5] छिद्रगेहे वा मंगलो यदि खेचरः ।
तदा शत्रु[6]हतानां चाप्यतीतानां निधि[7]र्ध्रुवम् २६१॥
राहुशनी मृतौ भावपृच्छायां खेचरौ क्रमात् ।
व्यन्तरत्वं गतानां च द्रव्यं भवति निश्चितम् ॥२६२॥

तीन स्थानों में यदि शुभ ग्रह हों तो घर के तीन स्थानों में निधि होती है । धनस्थान में रहें तो सेना और द्रव्य, चतुर्थ स्थान में रहें तो महासम्पत्ति कहनी चाहिये ॥२५८॥

अष्टम स्थान में यदि शुभ ग्रह हों तो अपने पूर्वजों की महा निधि कहनी चाहिये । इस प्रकार शुभ ग्रहों के अनुसार रुपये सोने आदि का पता लगाना चाहिये ॥२५९॥

पाप ग्रह यदि चतुर्थ स्थान के स्वामी हो तो द्रव्य अवश्य हो, पर मिले नहीं । यदि क्षीण चन्द्र भी चतुर्थ स्थान का स्वामी हो तो उस वर्ष में धनप्राप्ति होती है ॥२६०॥

सप्तम वा अष्टम स्थान में यदि मंगल हो तो युद्ध में मृत पूर्वजों की निधि अवश्य होती है ॥२६१॥

प्रश्नकाल में राहु और शनि यदि अष्टम भाव में हो तो मृत पूर्वजों का द्रव्य होना निश्चित कहा गया है ॥२६२॥

1. च तद् for बलं A. 2. शुभे for शुभ A, 3. स्वर्णरूप्यादि for रूप्यस्वर्णादि A. 4. तत्रस्थे for तूर्यस्य A, तूर्यस्मे Bh. 5. The text reads जाताया A. 6. शास्त्र for शत्रु A. रत्न Bh. 7. विधि० for निधि A.

निधिप्रश्ने विलग्ने चेद्राहुर्भवति खेचरः ।
छिद्रे रविस्तदा वाच्यं निधानं नैव लभ्यते ॥२६३॥
प्रश्नकाले यदा मूर्तौ तुर्ये वा सप्तमेऽपि वा ।
दशमे वा भवेत् शुक्रो निधिरस्तीति निश्चितम् ॥२६४॥
मूर्तौ वा तुर्यगे वापि सप्तमे च[1] गृहे यदि ।
दशमे वा भवेज्जीवः सचन्द्रो निधिदायकः ॥२६५॥
सजीवे चन्द्रशुक्रे वा[2] तुर्ये गेहे धनं भवेत् ।
सरत्नहाटकं रूप्यं घटिताघटितं भवेत् ॥२६६॥
बुधश्चन्द्रो गुरुः शुक्रो धने वा हिबुकेऽथवा[3] ।
प्रयच्छन्ति निधिं स्वीये[4] चान्यं या बलशालिनः ॥२६७॥
छिद्रस्थाने स्थितास्त्वेतेऽपत्ये[5] वा खेचरा धनम् ।
निधिं यच्छन्ति पूर्वेषां विना[6] नैवेद्यपूजनात् ॥२६८॥

---

निधि प्रश्न में यदि राहु लग्न में हो और सूर्य अष्टम स्थान में हो तो निधिलाभ नहीं कहना चाहिये ॥२६३॥

प्रश्नकाल में यदि लग्न में, चौथे, सातवें तथा दसवें स्थान में शुक्र रहे तो निधि अवश्य ही कहनी चाहिये ॥२६४॥

प्रश्नकाल में यदि केन्द्रस्थान में गुरु हो और वह चन्द्रमा से युक्त हो तो निधि अवश्य मिले ॥२६५॥

चन्द्र और शुक्र, गुरु के साथ चौथे स्थान में रहें तो उसके घर में अवश्य धन रहे। उसके पास रत्न, सुवर्ण आदि मूल तथा अलंकार अवस्था में रहें ॥२६६॥

बली बुध, चन्द्रमा, गुरु वा शुक्र धनस्थान वा चतुर्थ स्थान में रहें तो उसे अपनी या अन्य की निधि प्राप्त हो ॥२६७॥

अष्टम वा पञ्चम स्थान में ग्रह रहें तो उनकी बिना बलि तथा नैवेद्य द्वारा पूजा से ही पूर्वजों की निधि प्राप्त होती है ॥२६८॥

---

1. वा for च A. 2. च for वा A. 3. ऽपिवा for अथवा A. 4. स्वीयं for स्वीये A. 5. ऽप्यन्ये for ऽपत्ये A. 6. बलि for विना A.

यत्र शुक्रः क्षितौ तत्र चक्रमध्ये निधिः स्थितः[1] ।
शुक्रदृष्टे पुरो वापि गेहे[2] खण्डं विलोकयेत् ॥२६९॥
यत्र गुरुः क्षितौ तत्र चक्रकोणे निधिः पुरः ।
यत्र खेटा [3]धनाभावे तत्रावश्यं निधिर्बहुः ॥२७०॥
तुर्येशः केन्द्रमध्यस्थोऽपथ [4]एकनिधिस्तदा ।
तुर्येशो बाह्यराशौ वा गृहाद्बहिर्निधिः पुनः ॥२७१॥
यत्र लाभे भवेत् शुक्रः स्वकीयं-स्वजनस्य वा ।
स्थापितं[5] वा प्रनष्टं वा लभ्यते बहुलं धनम् ॥२७२॥
बुधे चन्द्रे भवेल्लाभो जीवयुक्ते विशेषतः ।
शुक्रयुक्ते महालाभः प्रतिवेश्म निधेरपि ॥२७३॥
ऊर्ध्वदृष्टौ[6] भवेदूर्ध्वं मालादावुपरिसंस्थितम्[7] ।
अधोदृष्टावधोवस्तु समदृष्टौ सदेशके ॥२७४॥

जिसकी कुण्डली में शुक्र लग्न में हो तो घर के बीच में निधि कहनी चाहिये । यदि शुक्र की दृष्टिमात्र हो तो घर के आगे वा घर के किसी भाग में देखनी चाहिये ॥२६९॥

जहां लग्न में गुरु रहे वहां घर के किसी कोने में निधि होती है । यदि धनभाव में ग्रह रहे तो वहां अवश्य प्रचुर धन होता है ॥२७०॥

चतुर्थेश यदि केन्द्र में हो तो कोने में सम्पत्ति कहना, चतुर्थेश यदि बाह्यराशि में हो तो घर से बाहर निधि कहनी चाहिये ॥२७१॥

जहां पर लाभस्थान में शुक्र हो वहां अपना और अपने सम्बन्धियों का रक्खा तथा खोया हुआ पर्याप्त धन प्राप्त होता है ॥२७२॥

लाभ स्थान में बुध वा चन्द्र गुरु से युक्त हों तो विशेष लाभ कहना चाहिये । यदि वही बुध वा चन्द्र शुक्र के साथ हों तो पूर्ण निधि की प्राप्ति होती है ॥२७३॥

ऊर्ध्व दृष्टि रहने पर छत्त आदि ऊपर प्रदेश में, अधोदृष्टि वाले ग्रहों के रहने पर नीच प्रदेश में, सम दृष्टि वाले ग्रहों की दृष्टि से सम प्रदेश में निधि कहनी चाहिये ॥२७४॥

1. स्थितिर्निधिः for निधिः स्थितिः A, 2. गेह for गेहे A. 3. घना for धना Bh. 4, ऽस्थापवरके for ऽस्थोऽपथ एक० Bh. 5. स्थापितं for स्थागितं A. 6. उर्द्धदृष्टो for ऊर्ध्वदृष्टौ A[1] 7. मालादुपुपरिसंस्थतम् Bh.

ऊर्द्धदृष्टौ[1] भवेदूर्ध्वमधोधिष्ण्ये च स्वभ्रगम्[2] ।
समदृष्टौ[3] समे गेहे युक्तं वस्तु दिशां[4] क्रमात् ॥ २७५॥
ऊर्ध्वदृष्टौ पदे [5]भिन्नैर्वक्रिते भित्तिमध्यतः ।
ग्रहो यदि दिनैकेन राशिमन्यां[6] यियासति ॥२७६॥
छन्नं मध्ये तदा ज्ञेयं निधानं[7] स्थापितं बुधैः ।
यावन्तः खेचरास्तूर्ये तावत्संख्यो निधिर्मतः ॥२७७॥
यत्संख्ये वर्तते चन्द्रो नक्षत्रे निधिदायकः ।
गृहे निधिश्च तत्संख्ये विज्ञेयः खातशोधने ॥२७८॥
शुक्रे चन्द्रे जलस्थाने देवस्थाने शुभे गुरौ ।
चतुष्पदगृहे सूर्ये चेष्टिकानिचये[8] बुधे ॥२८९॥
भौमे महानसस्थाने शनौ राहौ बहिर्भुवि ।
निधानं गेहमध्ये तु स्थानेष्वेतेषु लक्षयेत् ॥२८०॥

---

ग्रहों की ऊर्ध्व दृष्टि रहने से घर के उच्च प्रदेश में, अधोदृष्टि रहने से कहीं गर्त में और सम दृष्टि से सम प्रदेश में निधि कहनी चाहिये ॥२७५॥

ऊर्ध्वदृष्टि में भित्ति स्थान पर, वक्री होने पर भित्ति के मध्य में पर यदि एक ही दिन मे ग्रह दूसरी राशि में जाना चाहे तो ॥२७६॥

मध्य स्थान में निधि को छिपा हुआ कहना चाहिये। चतुर्थ स्थान में जितने ग्रह हों उतने प्रकार की निधि कहनी चाहिये ॥२७७॥

निधि बतलाने वाला चन्द्र जितनी संख्या वाले नक्षत्र मे रहे उतनी बार गड्ढा खोदने पर निधि प्राप्त होती है ॥२७८॥

शुक्र वा चन्द्र निधिदायक हों तो जलस्थान म, गुरु यदि हों तो मन्दिर आदि शुभ स्थान में, सूर्य यदि हों तो पशुशाला में, बुध यदि हों तो ईंट के भट्ठों की जगह निधि प्राप्त हो ॥२७९॥

मंगल यदि हों तो पाकालय में, शनि और राहु हों तो घर के बाहर वा घर के बीच निधि को बतलाना चाहिये ॥२८०॥

---

1. ऊर्द्धधिष्ण्ये for ऊर्द्धदृष्टौ A. 2. स्वभ्रके for स्वभ्रगम् A., Bh. 3. समधिष्ण्ये for समदृष्टौ A. 4. The text reads दृशं for दिशाम् 5. भिन्ने for भिन्नै A. 6. ०मन्यं for ०मन्यां A. मध्ये Bh. 7. The text reads धनगं for निधानं A. 8. निचये for निचये A., नचयो Bh.

निधिस्थानपतिः स्थाने यावत्संख्येऽवतिष्ठति ।
तावद् हस्तेष्वधोवाच्यं निधानं भूमिखण्डके ॥२८१॥
यावत्संख्येंऽशके चन्द्रे लग्नेशो यत्तमो भवेत् ।
तत्संख्याकरमानेन द्रव्यं[1] भूमिगतं वदेत्[2] ॥२८२॥
शुक्रे चन्द्रे भवेद्रौप्यं बुधे स्वर्णं निधिस्थितम्[3] ।
गुरौ रत्नयुतं [4]हेममादित्ये मौक्तिकं तथा[5] ॥२८३॥
भौमे त्रपु शनौ लोहं राहावस्थि भुवि स्थितम्[6] ।
धातोर्विनिश्चये ज्ञाते विशेषोऽयं ग्रहस्थितः[7] ॥२८४॥
चतुर्थाधिपतौ मध्ये गृहमध्ये[8] भवेद् ध्रुवम् ।
चतुर्थाधिपतौ बाह्ये गृहाद्बहिर्गतं[9] धनम् ॥२८५॥
विलग्नात्सप्तमं यावद्राशयोऽभ्यन्तराः खलु[10] ।
सप्तमात्प्रथमं यावद् बाह्या हि राशयो मताः ॥२८६॥

---

निधि स्थान के स्वामी उस से यत्संख्यक स्थान में रहें उतने हाथ नीचे भूमिखण्ड में निधि कहनी चाहिये ॥२८१।

चन्द्रमा यत्संख्यक नवांशक म रहे और लग्नेश लग्न से जितने स्थान पर हो उतने हाथ पर भूमि के अन्दर द्रव्य कहना चाहिये ॥२८२॥

इस प्रकार शुक्र और चन्द्र यदि हों तो रुपये, बुध हों तो सुवर्ण, शुक्र गुरु हों तो रत्न युक्त सुवर्ण और सूर्य के रहने से मोती मिलते हैं ॥२८३॥

मंगल में मूंगा, शनि में लोहा और राहु में पृथ्वीगत हड्डी मिलती हैं। इस प्रकार धातु के निश्चय हो जाने पर ग्रहों से विशेष बातें जाननी ॥२८४॥

चतुथ स्थान का स्वामी यदि मध्यस्थान में हो तो घर के अन्दर निधि मिले । यदि चतुर्थेश बाह्यस्थान में रहे तो घर के बाहर निधि मिलती है ॥२८५॥

---

1. निधानं भू० for द्रव्यं भूमि A[1] · 2. भवेत् for वदेत A. A[1] 3. स्वर्णमुद्राहृतम् for स्वर्णं निधिस्थितम् A· Bh. 4 सूर्य for हेम० A.[1] A 5. मौक्तिकमुच्यते for मौक्तिकं तथा A. A[1] मौक्तिकं निधौ Bh. 6. वस्थीति कीर्तयेत् for वस्थि भुवि स्थितम् A. A[1]. 7. ग्रहोत्थितः for ग्रहस्थितः A[1] 8. गृहे मध्ये for गृहमध्ये A. 9. धनं for गतं A. 10. मतः for खलु A.

निधीशलग्ननाथौ द्वौ मध्यराशिस्थितौ यदि ।
तदा द्रव्यं गृहस्यान्तःकोणादिष्वेव संस्थितम् ॥२८७॥
यदा लग्नेशतुर्येशौ बाह्यराशिस्थितौ यदि ।
गृहाद्बहिर्धनं वाच्यं प्रांगणादिभुवि स्थितम् ॥२८८॥
केन्द्रगतैर्ग्रहैर्वाच्यं[1] सर्वाः पूर्वादयो दिशः ।
केन्द्रगे चन्द्रजे ज्ञेयं गृहस्योत्तरदिग्स्थितम् ॥२८९॥
गुरावीशानभागे च रवौ पूर्वदिशि स्थितम् ।
शुक्रेऽप्याग्नेयदिग्कोणे कुजे दक्षिणदिक्श्रयम् ॥२९०॥
राहौ नैऋत्यकोणे च शनौ पश्चिमदिग्स्थितम् ।
चन्द्रे वायौ[3] शनौ गर्ते निक्षारे राहुसंस्थिते ॥२९१॥
उच्चकेन्द्रस्थखेटेषु बलयुक्तेषु सर्वतः ।
लक्षसंख्यो निधिः सत्यं चन्द्रदृष्टौ स्वहस्तगः ॥२९२॥

---

लग्न से सप्तम तक की राशियां आभ्यन्तरिक कहलाती हैं। सप्तम से प्रथम तक बाह्य राशि कही जाती हैं ॥२८७॥

निधीश और लग्नेश यदि मध्यराशि में हो तो घर के बीच किसी कोने आदि में द्रव्य मिलना चाहिये ॥२८८॥

लग्नेश और चतुर्थेश यदि बाह्य राशियों में रहे तो घर से बाहर आँगन आदियों में धन कहना चाहिये ॥२८९॥

केन्द्रस्थ ग्रहों से पूर्वादि दिशाओं का निर्णय करना । यदि बुध केन्द्र में रहे तो धन घर की उत्तर दिशा में समझना ॥२९०॥

यदि गुरु केन्द्र मे हो तो ईशान कोण में, रवि केन्द्र में हो तो पूर्वदिशा में, शुक्र केन्द्र में हो तो आग्नेय कोण में, मंगल केन्द्र में हो तो दक्षिण दिशा में निधि होती है ॥२९१॥

राहु केन्द्र में हो तो नैऋत्य कोण, शनि केन्द्र में हो तो पश्चिम दिशा तथा किसी गर्त में, चन्द्र केन्द्र में हो तो वायव्य कोण में निधि होनी चाहिये ॥ २९२ ॥

---

1. वाच्या: for वाच्यं A. 2. ०ऋ० for ०ऋत्य० A. 3. The text reads वायव्ये which does not fit in with the metre'

उदयालंकृते खेटे शुभग्रहविलोकिते[1] ।
अकस्मान्निधिरायाति पुण्याढ्यस्य महात्मनः ॥२९३॥
यावन्त्योऽप्यंशका भुक्तास्तावन्त्याधारभाजने ।
छादितं[2] कलसादौ[3] तु द्रव्यं वाच्यं गृहे गृहे ॥१९४॥
धातुभाण्डे चरे ज्ञेयं मूलभाण्डं स्थिरे पुनः ।
द्विस्वभावेषु[4] मृद्भाण्डं चैवं[5] भाण्डस्य [6]निर्णयः ॥२९५॥
लग्नस्थमेषमाश्रित्य वृषयुग्मादिदक्षिणे ।
गृहस्यांशस्थिते भावे विज्ञयो निधिदायकः ॥२९६॥
मीनकुम्भाद्युत्तरांशः सम्मुखस्थे च दक्षिणः ।
विन्यस्तचक्रमानेन देशो वाच्यो निधिस्थम् ॥२९७॥
लग्नमूर्तेर्गृहस्यैव हिबुकं दक्षिणं भवेत् ।
उत्तरे दशमस्थानं प्रविविक्षाविपर्ययः ॥२९८॥

सभी ग्रह यदि उच्च वा केन्द्र के हों और सबल रहे, साथ ही चन्द्र की दृष्टि रहे, तो लग्न संख्या म निधि मिले ॥ २६२ ॥

शुभग्रह यदि लग्न मे हों और अन्य शुभ ग्रहों से देखे जाय तो पुण्य-शील पुरुष का एकाएक निधि प्राप्त होती है ॥ २६३ ॥

जितने अंश को वे भोग कर गये हों उतने आधारपात्र वा कलश आदि में ढका हुआ द्रव्य घर मे स्थित कहना चाहिये ॥ २६४ ॥

यदि चर राशि का लग्न हो तो धातु भाण्ड में, स्थिर राशि को हो तो मूल भाण्ड में, द्विस्वभाव का लग्न हो तो मट्टी के बर्तन मे निधि का होना कहना चाहिये । इस प्रकार भाण्डों का निर्णय समझना ॥ २६५ ॥

लग्न का मेष समझ कर वृषादि दक्षिण क्रम से गृही का जिस अंश में निधि भाव पड़े उसी भाग मे निधि कहना चाहिये ॥ २६६ ॥

मीन कुम्भादि क्रम से उत्तरादि दिशाओं मे स्थापना करे और उत्तर का सम्मुख दक्षिण समझना चाहिये । इस प्रकार चक्र को स्थापित कर के निधि का स्थान बतलाना चाहिये ॥ २६७ ॥

—लग्नस्थान से घर मे, चतुर्थ स्थान से दक्षिण दिशा मे, और दशम स्थान से उत्तर दिशा मे और यदि कोई ग्रह अन्य स्थान मे जाने वाले हों तो विपरीत दिशा समझनी चाहिये ॥ २६८ ॥

1. बलोत्कटे for विलोकिते A. 2. स्थापितं for छादितं A. 3. कलशादौ for कलसादौ A. 4. तु for षु A. 5. त्वेयं for चैवं A

क्रियते केवलादर्शो निधिसिद्धिप्रकाशकृत् ।
श्रीमद्देवेन्द्रशिष्येण श्रीहेमप्रभसूरिणा ॥२९९॥

इति चतुर्थभावे [1]शेवधिप्रकरणं सम्पूर्णम् ।

---

ज्ञानचारित्रसद्बीजं सिद्धिद्वारेऽपि गच्छताम्[2] ।
गणेशलब्धिविस्तीर्णं पक्वान्नभोजनं[3] ब्रुवे ॥३००॥
लग्ने तुर्येऽथवा[4] लाभे सौम्यखेचरसम्भवे ।
भोज्यं भवति पृच्छायां षट्रसास्वादसुन्दरम् ॥३०१॥
गुरौ लग्नेऽथवा शुक्रे पृच्छालग्ने गते[5] सति ।
अवश्यं लभ्यते भोज्यमटव्यामटताऽपि हि[6] ॥३०२॥
शनौ राहौ च लग्नस्थे रविदृष्टेऽथवा युते ।
न लभ्यते निजे गेहे शस्त्रघातो भवेत्स्फुटम्[7] ॥३०३॥

निधि को बतलाने वाला और केवल आदर्शमय ग्रन्थ देवेन्द्र के शिष्य श्रीहेमप्रभसूरि ने बनाया है ॥ २९९ ॥

सिद्धिद्वार में जाने वाले पुरुष के ज्ञान और चारित्र का सद्बीज रूप पक्वान्नभोजन के विषय में श्रीगणेश के प्रासाद से विस्तीर्ण कहता हूँ ॥ ३०० ॥

बुध अथवा कोई अन्य शुभ ग्रह लग्न चतुर्थ अथवा लाभस्थान में हो तो प्रश्नकाल में भोजन छः रसों के आस्वाद से सुन्दर होता है ॥३०१॥

प्रश्नकाल के लग्न में गुरु वा शुक्र हों तो जंगल में भी घूमने वाले मनुष्य को अवश्य भोजन मिले ॥ ३०२ ॥

शनि, राहु यदि लग्न में हो और सूर्य की दृष्टि पड़े अथवा एक स्थान में हों तो अपने घर में रहने पर भी भोजन नहीं मिलता और किसी शस्त्र आदि से चोट होती है ॥ ३०३ ॥

---

1. निधि for शेवधि A. A¹ 2. गच्छतः for गच्छताम् A, A¹ 3. सन्नान्नं for पक्वान्न A. 4. तथा for ऽथवा A, 5 मते for गते A¹ 6. ०मरण्यमभ्यगैरपि for मटव्यामटताऽपि हि A, A¹ 7. ध्रुवम् for स्फुटम् A.

पृच्छायां तुर्यगे चन्द्रे भोजनं लवणाधिकम् ।
व्यञ्जनैर्वेषवाराद्यैर्लवणेन घनेन वा ॥३०४॥
तुर्ये भौमे भवेद्भोज्यं मुहुः[2] कटु रसाश्रयम् ।
दशमे मङ्गले मांसं रक्तस्रावेण[3] संयुतम् ॥३०५॥
रवौ तुर्ये निष्प्रतापं सरसं तत्र शीतगौ ।
सकलहं ससंतापं भौमे तुर्येऽशनं स्मृतम् ॥३०६॥
बुधे भोज्यं कषायं तु गुरौ तु मधुरोज्ज्वलम् ।
सिताखण्डघृताढ्यं[4] तु भक्तं सूपहविर्युतम् ॥३०७॥
बुधे तत्र बुधानां च कथालापकपेशलम् ।
शनौ राहौ च तुर्यस्थे सशोकं सभयं पुनः ॥३०८॥

प्रश्नकाल में यदि चतुर्थ स्थान में चन्द्र रहे तो भोजन में अधिक नमक होगा और साग आदि अन्य पदार्थ भी अधिक नमक से विकृत होंगे ॥ ३०४ ॥

चतुर्थ स्थान में यदि मंगल रहे तो भोजन कड़वे रस से युक्त हो । दशम स्थान में यदि मंगल रहे तो रक्त से पूर्ण मांसभोजन की प्राप्ति हो ॥ ३०५ ॥

सूर्य चतुर्थ स्थान में रहे तो भोजन नीरस, चन्द्र रहे तो सरस मिले । मंगल चतुर्थ स्थान में रहे तो कलह तथा सन्ताप आदि से भोजन की प्राप्ति हो ॥ ३०६ ॥

बुध चतुर्थ स्थान में रहे तो भोजन कषायरसपूर्ण, गुरु चतुर्थ-स्थान में रहे तो मधुर तथा शक्कर घृत आदि से युक्त दाल भात मिलना चाहिये ॥ ३०७ ॥

बुध चतुर्थ स्थान में हो तो पण्डितों के सद्वचनामृतों के साथ भोजन मिलना चाहिये । शनि और राहु यदि चतुर्थ स्थान में रहें तो शोक और भय के साथ भोजन प्राप्त हो ॥ ३०८ ॥

1. वराख्यै for वाराद्यै A. 2. र्व्यमुख्यां for ०ज्यं मुहुः A. 3. स्राविणा for स्रावेण A. 4 सितः खंडघृताढ्यं for सिताखण्ड-घृताढ्यं A.

अम्लरसं सिते स्निग्धं पेयः स्वाद्यरसाश्रयम् ।
आकर्णान्तसुविश्रान्तनेत्राभिः परिवेषितम् ॥३०९॥
नीचे शुक्रे कदन्नं तु पक्वापक्वं जलाविलम् ।
अप्रतिपत्तिनिःस्नेहं दासीभिः परिवेषितम् ॥३१०॥
क्षिप्रादिविरसं रूक्षं पल्लचणककोद्रवम्[1] ।
सतैलं चाप्यतैलं वा शनौ भोज्यं भवेदिदम् ॥३११॥
उच्चे रवौ भवेदुष्णं तिक्तं च राजवेश्मनि ।
नीचे नीचान्तरैर्वाच्यं भोजनं [2]पृच्छवेश्मनि ॥३१२॥
सकृद्भोज्यं चरे लग्ने द्विर्वारं च स्थिरात्मकम् ।
भोजनत्रितयं प्रोक्तं द्विस्वभावे विधौ निधौ ॥३१३॥
शुक्रे चन्द्रे गुरौ तुर्ये पृच्छालग्ने सगौरवम् ।
शालिभोज्यं हविःस्पृष्टं[3] रम्यस्त्रीपरिवेषितम् ॥३१४॥

शुक्र चतुर्थ स्थान में हो तो खट्टा रस और कोमल सुस्वादु जल विशाल नेत्र वाली स्त्रियों से दिया हुआ मिले ॥ ३०९ ॥

शुक्र यदि नीच स्थान में हो तो कच्चा पका अन्न, मलिन जल से युक्त और वह भी अनादर के साथ दासियों से परोसा हुआ प्राप्त हो ॥ ३१० ॥

शनि चतुर्थ स्थान में यदि हो तो रूखा, विरस चना, तेल से युक्त अथवा अयुक्त भोज्यरूप मे मिलना चाहिये ॥ ३११ ॥

रवि यदि उच्च का हो भोजन गर्म और तिक्त राजाओं के घर मे मिले। वही यदि नीच घर का हो तो नीच जनों के घर में कहना चाहिये ॥ ३१२ ॥

चर लग्न रहे तो एक बार भोजन मिले, स्थिर लग्न रहने से दो बार, द्विस्वभाव लग्न हो और चतुर्थ चन्द्रमा रहे तो तीन बार भोजन मिले ॥ ३१३ ॥

शुक्र, चन्द्र वा गुरु लग्न में हों व चतुर्थ स्थान मे हों तो भोजन सम्मानपूर्वक, घृत से मिश्रित और सुन्दर स्त्री से परोसा हुआ मिले ॥ ३१४ ॥

1. रूक्षवल्लवणककोद्रवम् for रूक्षं पल्ल चणककोद्रवम् A, A[1]. Bh. 2. तुच्छ० for पृच्छ० Bh. 3. तुष्टं for स्पृष्टं A., Bh.

शुक्रे गुरौ निधिस्थाने बुधे चन्द्रे च लाभगे ।
शालिभोज्यं समं वस्त्रैर्लभ्यते पुण्यवेश्मनि ॥३१५॥
उच्चगेहे निधिस्थाने बुधे गुरौ बलोत्कटे ।
स्युः स्वर्णवस्त्रभोज्यानि चन्द्रे शुक्रे च लाभगे ॥३१६॥
गुरौ तुर्ये समंगल्यं धृतोत्साहं सितेऽपि च ।
वर्द्धापनविवाहादौ स्नेहभोज्यं सगीतकम् ॥३१७॥
लग्ने पुष्टे स्वके गेहे धने पुष्टे धनाद्भवेत् ।
तृतीये निजभगिनीभ्यः[1] पितृभ्यस्तुर्यवेश्मनि ॥३१८॥
पञ्चमे पुत्रपौत्रेभ्यः षष्ठे च शत्रुवेश्मनि ।
सप्तमे निजपत्नीभ्यः स्नेहातिशयभोजनम् ॥३१९॥
नवमे च प्रपासत्रे[2] दशमे भूपवेश्मनि ।
लाभेऽप्यश्वगजादीनां[3] लाभेन सहितं बहु ॥३२०॥

शुक्र, और गुरु निधिस्थान में हों, बुध और चन्द्र लाभस्थान में हों तो वस्त्रों के साथ चावलों का भोजन किसी पुण्यवान के घर में मिले ॥ ३१५ ॥

निधिस्थान में उच्च का सबल गुरु और बुध रहें, चन्द्र और ग्यारहवें स्थान में हों तो सुवर्ण, वस्त्र और भोजन सभी मिलें ॥ ३१६॥

चतुर्थ स्थान में गुरु वा शुक्र रहे तो बधाई, विवाह आदि कार्यों में मंगलाचार उत्साह और गीत के साथ घृतादियुक्त भोजन प्राप्त होता है ॥ ३१७ ॥

लग्नस्थान यदि पुष्ट रहें तो अपने घर में, धनस्थान के पुष्ट रहने से धन से, तृतीय स्थान के पुष्ट रहने से अपनी बहिनों से, चतुर्थ स्थान के पुष्ट रहने से पिता के घर से भोजन मिले ॥ ३१८ ॥

पञ्चम स्थान पुष्ट रहने से पुत्र पौत्रादि से, षष्ठ स्थान के रहने से शत्रु से, सप्तम के पुष्ट रहने पर स्त्री से स्नेहपूर्वक भोजन मिले ॥ ३१९॥

नवम स्थान के पुष्ट रहने पर किसी सराय की दुकान पर, दशम स्थान की पुष्टि में किसी राजा के घर में और एकादश यदि पुष्ट रहे तो घोड़ा, हाथी के साथ सुन्दर भोजन मिले ॥ ३२० ॥

1. भगनीभ्यः for भगिनीभ्यः A. 2. मत्र for सत्रे A. 3. ०गजानां तु for ०गजादीनां A.

तृतीयैकादशे दृष्ट्वा[1] पत्नीनां स्नेहभोजनम् ।
चतुर्थाष्टमदृष्ट्या तु[2] स्वजनानां गृहे लभेत् ॥३२१॥
नवपञ्चमदृष्ट्यापि स्नेहेन भोजनं जनात् ।
सप्तमौभयदृष्ट्या तु वैरेण सहितं जयेत् ॥३२२॥
सौम्येषु तुर्यसंस्थेषु तुंगगेहे वने मतम्[3] ।
क्रूरेषु तत्र संस्थेषु भग्नवेश्मनि भोजनम् ॥३२३॥
तुर्ये गेहाङ्कमानेन भोज्यमानं ग्रहैः[4] स्मृतम् ।
लग्नतुर्याङ्कमानेन कव्वोलकमितिर्मता[5] ॥३२४॥
लग्नचक्रं महास्थानं[6] हृदि[7] ध्यात्वातिवर्तुलम् ।
तत्र ग्रहैर्दिशो वाच्या[8] व्यञ्जनानां यथाक्रमम् ॥३२५॥

लग्नेश और चतुर्थेश को परस्पर तृतीय, एकादश दृष्टि हो तो स्त्री का प्रेम पूर्वक दिया हुआ भोजन मिलता है। और दोनों को चतुर्थ अष्टम, दृष्टि परस्पर रहे तो अपने लोगों के घर में भोजन मिलता है ॥३२१॥

दोनों को नवम और पञ्चम की यदि दृष्टि रहे तो स्नेहपूर्वक भोजन मिले। और दोनों को परस्पर सप्तम की दृष्टि होने से शत्रुता होने पर भी विजय कहनी चाहिये ॥ ३२२ ॥

शुभग्रह यदि चतुर्थ स्थान में हों तो उच्च गृह में वा वन में भोजन मिलता है। यदि पापग्रह उस में रहें तो टूटे फूटे घर में भोजन मिले ॥३२३॥

चतुर्थ वा लग्न स्थान से ग्रहों के द्वारा भोजन का विचार किया गया है। लग्न और चतुर्थ ही स्थान से व्यञ्जनादि का भी विचार करना चाहिये ॥ ३२४ ॥

गोलाकार, विशालस्वरूप लग्नचक्र को हृदय में ध्यान करके ग्रहों के द्वारा व्यञ्जनों (शाकादियों) की दिशाओं का निश्चय करना चाहिये ॥ ३२५ ॥

1. दृष्ट्या for दृष्ट्वा A. 2. The text reads च for तु A. 3. तुंगगेहेशनं० A, A[1] ० दनं for वने Bh 4. गृहैः for ग्रहैः Bh. 5. कव्वोलक० for कव्वोलक Bh 6 स्थालं for स्थानं 7. The text reads हृदि A, A[1]. 8. वाच्यं for वाच्या A[1].

तिक्तं रवौ विधौ क्षारं कटु भौमे मतं दिशि ।
बुधे कषायसंयुक्तं गुरौ तु मधुरोज्ज्वलम् ॥३२६॥
सितेऽम्लं[1] व्यञ्जनं वाच्यं शनौ राहौ च दग्धकः[2] ।
शुक्रस्य बालवृद्धौ च घृताधिक्यं तदा मतम् ॥३२७॥
क्रियते केवलादर्शो भुक्तिसिद्धिप्रकाशकृत् ।
श्रीमद्देवेन्द्रशिष्येण श्रीहेमप्रभसूरिणा ॥३२८॥

इति चतुर्थभावे भोजनप्रकरणम् ।

## अथ ग्रामपृच्छा[3]

ग्रामपृच्छासु सर्वेषु कंटकेषु शुभा ग्रहाः ।
तत्र पुर्यो महावप्रः[4] चतुर्दिक्ष भवेद्दृढः ॥३२९॥
केन्द्रेषु यदि सर्वेष्वप्युच्चा दृष्टाः शुभा ग्रहाः ।
तत्र पुर्यां महावप्रः सर्वोच्चैर्[5]निश्चितं मतः ॥३३०॥

---

रवि चतुर्थ स्थान में रहें तो भोजन तिक्त, चन्द्रमा चतुर्थ स्थान में हो तो नमकीन, मंगल रहे तो कडुवा बुध रहे तो कषाय रस वाला, गुरु रहे तो मधुर और उज्ज्वल रहता है ॥ ३२६ ॥

शुक्र चतुर्थ स्थान में रहे तो अम्ल रस वाला शाक कहना चाहिये। शनि और राहु रहें तो जला हुआ, शुक्र की बाल्यावस्था तथा वृद्धावस्था रहने पर व्यञ्जन घृतपूर्ण होता है ॥ ३२७ ॥

श्रीदेवेन्द्रसूरि के शिष्य श्रीहेमप्रभसूरि ने भोगसिद्धि के प्रकाशक एकमात्र आदर्शरूप इस ग्रन्थ की रचना की ॥ ३२८ ॥

ग्राम के संबंध में पूछने पर यदि प्रश्नकाल सभी में शुभ ग्रह केन्द्र स्थानों में रहें तो उस नगरी के चारों ओर पहाड़ी प्रदेश कहना चाहिये। ३२९ ॥

यदि केन्द्रस्थान में उच्च के शुभ ग्रह रहें तो उस नगरी में एक विशाल उच्च वप्र कहना चाहिये ॥ ३३० ॥

---

1. ०स्लं for ०म्लं A[1]. 2. दग्धकम् for दग्धकः A. 3. The portion अथ ग्रामपृच्छा is found only in A[1]. 4. तत्र ग्रामे स्फुटं वप्रः for तत्र पुर्यां महावप्रः A[1] 5. चो नि० for ०च्चैर्नि० A.

तृतीयतुर्ययोर्लग्नात्पञ्चमे च शुभा ग्रहाः ।
तत्र वप्रो गुरुर्वाच्यः स्वोच्चस्थः पुनरुच्चकैः ॥३३१॥
शुक्लेन्दू[1] कंटके यत्र पानीयं तत्र निश्चितम् ।
शुक्रेन्दू सकुजौ यत्र तत्रोद्यानं जलाश्रयम् ॥३३२॥
द्वाभ्यां हैर्भवेद्वृत्तं त्र्यस्रैस्त्र्यस्रो गड्ढो मतः ।
चतुरस्रैश्चतुष्कोणे पुरे वप्रो[2] भवेत्पुनः ॥३३३॥
लग्नं सौम्यग्रहैर्दृष्टं समृद्धं पुरमुच्यते ।
अथ क्रूरग्रहैर्दृष्टं दुःस्थं भवति पत्तनम् ॥३३४॥
यत्र गुरुर्भवेत्तत्र रम्यं देवगृहैः पुरम् ।
शुक्रेन्दू यत्र कोणे तु तत्र कूपादिके जलम् ॥३३५॥
यत्र भौमो द्रुमस्तत्र स्याद्बुधे वेष्टकागणः[3] ।
यत्र राहुशनी कोणे तत्र गर्ताः सपुञ्जकाः ॥३३६॥

लग्न से तीसरे, चथे, पांचवें स्थान में यदि शुभ ग्रह हों तो एक वप्र उस गांव में अवश्य कहें, यदि वे उच्च के हों तो विशाल वप्र कहें ॥३३१॥

केन्द्रस्थान में यदि शुक्र और चन्द्रमा रहें तो वहां जल अवश्य रहे और जहां पर शुक्र चन्द्र मंगल के साथ हों तो जलाश्रित एक बाग भी कहना चाहिये ॥ ३३२ ॥

केन्द्रस्थान में यदि दो ग्रह एक साथ पड़े हों तो नगरे में दो गर्त, तीन ग्रहों से तीन गर्त और चार ग्रहों से चारों कोनों में वप्र कहना चाहिये ॥ ३३३ ॥

लग्न यदि शुभ ग्रहों से देखा जाय तो वह नगर समृद्धिशाली कहना चाहिये। पापग्रहों की दृष्टि रहने पर दुरवस्था को प्राप्त कहना चाहिये ॥ ३३४ ॥

लग्न को देखने वाला यदि गुरु हो तो मन्दिरों से युक्त नगर कहना चाहिये। शुक्र और चन्द्र जिस कोण में रहें उस कोण में कूप आदि जल कहना चाहिये ॥ ३३५ ॥

मंगल चक्र में जिस दिशा में हो उस दिशा में वृक्ष कहना चाहिये। और बुध जिधर हो उस तरफ ईटों का पुञ्ज कहना चाहिये और राहु शनि जहां पर हों उस कोने में गड्ढे होंगे ॥ ३३६ ॥

1. शुक्रेन्दु Bh. 2. The text reads वा प्र for वप्रो which is incorrect. 3. The text reads निष्टका for वेष्टका ।

भवेत्तत्रेष्टिकापाकः पुष्टो यत्र रविर्भवेत् ।
यत्र सौम्यग्रहश्रेणि[1]र्हट्टाली[2] तत्र कोणके ॥३३७॥
लग्नस्य तुर्यके ग्रामो रक्ष्यते च शुभैर्ग्रहैः[3] ।
तृतीये तुर्यधीसंस्थैरिति ग्रामोऽतिवप्रकः ॥३३८॥[4]
यत्र कोणे शुभाः खेटा एकराशिगताः[5] पुनः ।
पुरस्य तत्र कोणे स्यात्सौवर्णी कलशावलिः ॥३३९॥
यावन्तोऽप्यंशका भुक्ता लग्नस्याभ्युदितस्य ते ।[6]
तावद् हस्तप्रमाणोऽयं वप्रो भवति निश्चितम् ॥३४०॥
यत्र वित्ते च धीभागे शुक्रो भवेद्बलाधिकः ।
तत्र ग्रामे[7] पुरे वापि निधिर्भवति निश्चितम् ॥३४१॥

जहां पर पुष्ट रवि हो उस दिशा में पका हुआ ईंटा कहना चाहिये । और जिस कोने में पुष्ट शुभ ग्रह होवें उस कोने में सुन्दर पक्के मकान होने चाहिये ॥ ३३७ ॥

लग्न के चौथे स्थान में यदि शुभ ग्रह हों तो गांव सुरक्षित रहें । तीसरे, चौथे, पांचवें में रहें तो गांव में अधिक वप्रस्थान कहने चाहिये ॥ ३३८ ॥

जिस कोने में शुभ ग्रह एक राशिस्थ होकर रहें उस गांव के उस कोने में सुवर्ण के कलश होवें ॥ ३३९ ॥

प्रश्नलग्न के जितने अंश बीत चुके हों उतने हाथ का वप्र निश्चय ही कहना चाहिये ॥ ३४० ॥

जिसमें धनस्थान और धर्मस्थान में बली होकर शुक्र रहे उस ग्राम अथवा नगर में निश्चय ही धन होता है ॥ ३४१ ॥

1. श्रेणि for श्रेणी $A^1$. 2. हट्टश्री for हट्टाली A, $A^1$. 3. शुभग्रहैः for शुभैर्ग्रहैः A, $A^1$. 4. The text reads ग्रामे $A^1$. 5. the text reads गता: for गता: । The portion beginning with मे and ending with करोत्यहो ( P. 72) is missing in Bh. 6. लग्नस्या for लग्नस्या A. 7. The text reads ग्रामे for ग्रामे

क्रियते केवलादर्शः[1] पुरसिद्धि[ ]कारकृत् ।
श्रीमद्देवेन्द्रशिष्येण श्रीहेमप्रभसूरिणा ॥३४२॥

इति चतुर्थभावे तृतीयं ग्रामप्रकरणम् ।

## अथ पुत्रप्रकरणम्

पुत्रो वा पुत्रिका वापि पत्नी गर्भे भविष्यति ।
इति प्रश्नेषु विज्ञेयौ[2] पञ्चमेशविलग्नपौ ॥३४३॥
लग्नेशपंचमेशौ चेत् नरराशिव्यवस्थितौ ।
तदा पुत्रः समादेश्यः स्त्रीराशौ स्त्रीपदौ[3] च तौ ॥३४४॥
अयुग्लग्नस्थिते मन्दे पुत्रजन्म मतं सताम्[4] ।
समलग्ने समांशे वा पुत्रीजन्म स्फुटं भवेत् ॥३४५॥
एतस्याः प्रसवः कस्मिन् काले किल भविष्यति ।
लग्नांशकास्तु यावन्तः पृच्छाकाले तदोदिताः ॥३४६॥
गर्भोत्पन्नशिशोर्वाच्या[5] मासास्तावन्त एव हि ।
अभुक्तास्तेऽत्र ये वांशास्तावन्त एव शेषकाः ॥३४७॥

श्रीदेवेन्द्रशिष्य श्रीहेमप्रभसूरि ने नगरसिद्धि पर प्रकाश डालने वाले एकमात्र आदर्शरूप इस ग्रन्थ की रचना की ॥ ३४२ ॥

गर्भ में पुत्र होगा वा कन्या होगी इस प्रश्न में पञ्चमेश और लग्नेश को जानना चाहिये ॥ ३४३ ॥

लग्नेश वा पञ्चमेश यदि नर राशि मे रहें तो बालक, स्त्री राशि में रहें तो कन्या कहनी चाहिये ॥ ३४४ ॥

विषमराशि लग्न हो और उस में शनि पड़ा हो तो पुत्र जन्म और समराशि लग्न हो तथा समनवांशक हो तो कन्या जन्म कहना चाहिये ॥ ३४५ ॥

इस स्त्री को प्रसव कब होगा ऐसे प्रश्न में प्रश्नकाल में लग्न के जितने अंश उदित हुए हों उतने गर्भ के गत मास कहने चाहियें ॥३४६॥

और जितने अंश भुक्त न हों अर्थात् शेष बचे हों उतने ही मास प्रसवोत्पत्ति के कहने चाहिये ॥ ३४७ ॥

1. The text reads लोकः for दर्शः 2. प्रश्ने बुधैर्ज्ञेयौ for प्रश्नेषु विज्ञेयौ A, A[1] 3. प्रदौ for पदौ A. 4. सतां मतम् for मतं सताम् A. 5. The text reads गर्भेत्यत्र शिशौ वाच्या for गर्भोत्पन्नशिशोर्वाच्या A.

लग्नेशो लग्नसंयुक्तो नरराशौ रविर्भवेत् ।
तदा बुधैः पुमान् वाच्यो व्यत्यये व्यत्ययः पुनः[1] ॥३४८॥
जीविष्यति ममापत्यमिति प्रश्ने समागते ।
शुभेक्षितस्तु रिष्फेशः केन्द्रगतोऽथवा पुनः[2] ॥३४९॥
जीवत्येवं तदापत्यं ताजिके शास्त्रसंमते ।
चन्द्रे तत्र शुभैर्युक्ते विशेषेण च जीवति ॥३५०॥
दिनराश्युदये लग्ने[3] लग्नस्वामी दिनग्रहः ।
यदि जातस्तदा वाच्यं दिवा जन्म विचक्षणैः ॥३५१॥
दिनलग्नेषु लग्नं चेल्लग्नेशो दिनराशिषु ।
दिवाजन्म तदा वाच्यं व्यत्यये व्यत्ययः पुनः ॥३५२॥
अस्मिन् वर्षे विजातं मे भविष्यति न वा पुनः[4] ।
लग्नेशः पञ्चमे स्थाने सुतेशो वाथ[5] लग्नगः ॥३५३॥

लग्नेश लग्न में हो, सूर्य नर राशि में रहे तो पुरुष की उत्पत्ति कहनी चाहिये । इसके विपरीत कन्या की उत्पत्ति कहनी चाहिये ॥ ३४८ ॥

यह मेरी सन्तान जीवित रहेगी वा नहीं, ऐसे प्रश्न में रिष्फेश यदि शुभ ग्रह से देखा जाय वा केन्द्रस्थ होवे तो सन्तान अवश्य ही चिरजीवित रहेगी ॥ ३४९ ॥

केन्द्र में चन्द्रमा यदि शुभग्रहों से युक्त हो तो सन्तान चिरजीवित रहेगी यह ताजिक शास्त्र के अनुसार कहा है ॥ ३५० ॥

दिनराशि यदि लग्न हो, लग्न के स्वामी यदि दिन ग्रह रहें तो दिन में सन्तान की उत्पत्ति कहनी चाहिये ॥ ३५१ ॥

लग्न यदि दिन लग्नों में से हो, लग्नेश यदि दिन राशि में रहे तो दिन में ही जन्म कहना चाहिये । इसके विपरीत में कन्या होती है ॥३५२॥

इस वर्ष में मुझे पुत्र होगा वा नहीं, ऐसे प्रश्न में लग्नेश यदि पञ्चम स्थान में वा पञ्चमेश लग्न स्थान में रहें तो ॥ ३५३ ॥

1. पुमान् for पुनः Amb 2. भवेत् for पुनः 3. लग्नं for लग्ने A.
4. भवेत् for पुनः Amb 5. क्वापि for वाथ A.

इति योगे[1] बुधैर्वाच्ये[2] तत्र वर्षे तनूद्भवः[3] ।

अन्ये योगा बुधैर्वाच्यास्तद्वर्षे[4] पुत्रदायकाः ॥३५४॥

चन्द्रशुक्रौ यदा गर्भे लाभे वाऽथ स्थितौ यदि ।
पुण्यवतां तदा वाच्यमपत्यजन्म निश्चितम् ॥३५५॥

लाभपञ्चमसंस्थौ चेत्प्रपश्येतः परस्परम् ।
चन्द्रशुक्रौ तदापत्यं जायते नात्र संशयः ॥३५६॥

यदेन्दुः भौमशुक्राभ्यां गर्भो वा वीक्षितः शुभैः ।
तदासौ जायते पुत्रो नात्र कार्या विचारणा ॥३५७॥

मूर्तेस्तु यत्तमे स्थाने बलाढ्यो[5] भृगुनन्दनः ।
गर्भिण्या जातगर्भस्य मासानाख्याति तावतः ॥३५८॥

चन्द्रदृष्टेऽधमैर्युक्ते क्रूरदृष्टे च पञ्चमे ।
नीचस्थेऽस्तमिते गर्भे नैवापत्यं प्रजायते ॥३५९॥

---

उस वर्ष में पुत्रोत्पत्ति कहनी चाहिये। इसी प्रकार अन्य योग भी पुत्रदायक होते हैं ॥ ३५४ ॥

चन्द्रमा और शुक्र गर्भस्थान वा लाभस्थान में रहें तो पुण्यवान व्यक्तियों को अवश्य सन्तान होवे ॥ ३५५ ॥

वे ही यदि ग्यारहवें तथा पांचवें स्थान में रहें तथा पारस्परिक दृष्टि हो तो अवश्य सन्तानोत्पत्ति कहनी चाहिये ॥ ३५६ ॥

यदि चन्द्रमा गर्भस्थान में हो, मंगल और शुक्र से देखा जाय वा अन्य शुभ ग्रहों से देखा जाय तो पुत्र अवश्य उत्पन्न होगा। इस मे सन्देह नहीं ॥ ३५७ ॥

लग्न से जितने स्थान में सबल शुक्र रहे उतने मासों में गर्भवती स्त्री का प्रसव कहना चाहिये ॥ ३५८ ॥

चन्द्रमा यदि पञ्चम स्थान को देखे और वह पापग्रहों से युक्त तथा दृष्ट हो और वह नीच तथा अस्त गृह में पड़ा हो तो सन्तान नहीं होती ॥ ३५९ ॥

---

1. योगो for योगे A. 2. वाच्यो for वाच्ये A. 3. The text reads तदुद्भवः for तनूद्भवः 4. प्रेक्षाः for वाच्या० A. 5. The text reads बलाख्या for बलाढ्यो A.

पञ्चमाधिपतिर्लग्ने सुते लग्नेशचन्द्रमाः ।
तदा पुत्रः समादेश्यः पृच्छकस्य बुधैः किल[1] ॥३६०॥
चन्द्रयुक्तेक्षिते गर्भे[2] सौम्ययुक्तेक्षितेऽपि च ।
उच्चस्थेऽभ्युदिते तत्र पुण्यापत्यं प्रजायते ॥३६१॥
लग्ने शुभग्रहैर्जाते शुभस्थाने[3] शुभे ग्रहे[4] ।
आये सुतेऽथवा राज्ये पुष्टे गुरौ सुतं वदेत् ॥३६२॥
सौम्याश्चेत् पंचमे स्थाने बलवांस्तनयो भवेत् ।
क्रूरैर्विजीयमानोऽपि म्रियते नात्र संशयः ॥३६३॥
एकं वा द्वेऽथवाऽपत्ये भविष्यतोत्र[5] संशये ।
द्विस्वभावं विलग्नं चेत्तत्र गर्भे शुभा ग्रहाः ॥३६४॥
तदापत्यद्वयं वाच्यं शुद्धलग्ने बुधैः स्फुटम् ।
चरे बहूनि जायन्ते स्थिरे त्वेकं वरं मतम् ॥३६५॥

पञ्चमेश लग्न में रहे, लग्नेश और चन्द्रमा पञ्चमस्थान में रहे तो प्रश्न कर्ता को पुत्र अवश्य होवे ॥ ३६० ॥

गर्भस्थान चन्द्रमा से युक्त वा दृष्ट हो और शुभ ग्रह से युक्त, दृष्ट हो और वे उदित होकर उच्चस्थित होवें तो पुण्यवान सन्तान का जन्म कहना चाहिये ॥ ३६१ ॥

लग्नस्थान में शुभग्रह हों और शुभस्थानों शुभग्रह रहें ग्यारहवें, पांचवें वा नवम स्थान में पुष्ट गुरु हों तो अवश्य पुत्र कहना चाहिये ॥ ३६२ ॥

शुभग्रह यदि पंचम स्थान में रहें तो अवश्य बलिष्ठ पुत्र की उत्पत्ति हो। यदि वे ही पापग्रहों से जीते गये हों तो उसकी मृत्यु भी अवश्य होवे ॥ ३६३ ॥

एक वा दो पुत्र होंगे ऐसे प्रश्न में यदि द्विस्वभाववाले लग्न हों तो और शुभ ग्रह गर्भस्थान में हों ॥ ३६४ ॥

तो पुत्र द्वय कहना। चर राशि लग्न रहे तो बहुत से पुत्र होवें। स्थिर लग्न में एक पुत्र कहना चाहिये ॥ ३६५ ।

1. ध्रुवम् for किल A. 2. मन्दे for गर्भे A. 3. सुत for शुभ A 4. शुभग्रहो A. 5. The text reads भविष्यतो for भविष्यत्य A, A[1].

चत्वारि खेटयुग्मानि चेद्भवन्ति यदैकदा ।
तदापत्यद्वयोत्पत्तिः पृच्छालग्ने सतां मता ॥३६६॥
तावत्संख्यान्यपत्यानि प्रश्ने वाच्यानि पण्डितः ।
सम्पूर्णदृष्टयो वापि यावत्संख्याः शुभा ग्रहाः ॥३६७॥
स्त्रीग्रहाणां तु संख्यातः पुत्रीसंख्याभिधीयते ।
पुरुषग्रहसंख्याने पुत्रसंख्या स्फुटा मता ॥३६८॥
पञ्चमाङ्कानुमानेन ग्रहदृष्टिवशेन वा[1] ।
पुत्रसंख्या ग्रहैर्वाच्या मृत्युसंख्याधमैर्ग्रहैः ॥३६९॥
सर्वग्रहेक्षिते गर्भे तुंगकेन्द्रगतैर्ग्रहैः ।
नृपतुल्यो भवेत्पुत्रो ग्रहदृष्टिप्रभावतः ॥३७०॥
एकः पुत्रो रवौ धीस्थे चन्द्रे तत्र सुताद्वयम् ।
भौमे पुत्रास्त्रयो वाच्या बुधे पुत्रीचतुष्टयम् ॥३७१॥
गुरौ गर्भे सुताः पंच षट्पुत्राश्च सिते मताः ।
शनौ पुत्र्यो ध्रुवं सप्त तुंगे पुत्रा महर्द्धिकाः ॥३७२॥

प्रश्न लग्न में चार युग्म ग्रह यदि एकत्र रहें तो दो पुत्र कहने चाहियें ॥ ३६६ ॥

प्रश्नकुण्डली मे पूर्ण दृष्टि वाले जितने शुभ ग्रह रहें उतनी सन्तान कहनी चाहिये ॥ ३६७ ॥

स्त्रीग्रहों की संख्या से कन्याओं की संख्या और पुरुषग्रहों की संख्या से पुरुषों की संख्या कहनी चाहिये ॥ ३६८ ॥

पञ्चम स्थान की स्थिति, ग्रह की दृष्टि, पुत्रसंख्या का ग्रह और पापग्रहों से मृत्युसंख्या के विचार से सन्तानों की संख्या और दीर्घायु, अल्पायु विचार कर फल कहना चाहिये ॥ ३६९ ॥

पञ्चम स्थान को यदि सभी उच्च और केन्द्र के ही ग्रह देखें तो उसग्रह दृष्टि के प्रभाव से राजतुल्य पुत्र की उत्पत्ति हो ॥ ३७० ॥

पञ्चम स्थान में यदि एक रवि रहे तो एक लड़का, सोम रहे तो दो लड़की, मंगल रहे तो तीन लड़का, बुध रहे तो चार लड़की होनी चाहिये ॥ ३७१ ॥

गुरु यदि पंचम स्थान में रहें तो पाच पुत्र होवें, शुक्र रहें तो ६ पुत्र, और शनि रहे तो सात लड़की, इस प्रकार यदि वे उच्च के हों तो समृद्धिशाली पुत्र होवें ॥ ३७२ ॥

1. प्रभावतः for वशेन वा A.

क्रिते यकेवलादर्शः शिशुजन्मप्रकाशकृत् ।
श्रीमद्देवेन्द्रशिष्येण श्रीहेमप्रभसूरिणा ॥३७३॥

इति पञ्चमभावे पुत्रप्रकरणम्

रोगप्रश्ने बुधैर्वाच्यं[1] सप्तमं[2] रोगसंज्ञकम् ।
यावन्तः खेचरा लग्नेऽथवा लग्नेशपार्श्वगाः ॥३७४॥
तावन्तः पुरुषा वाच्या रोगिणोऽपि समीपगाः ।
पुंग्रहैः पुरुषस्तत्र स्त्रीगृहे प्रमदाः पुनः ॥३७५॥
रोगस्थाने चर ऊर्ध्वं संचरन् गृहमध्यतः ।
उपविष्टः स्थिरे रोगी सुप्तो वाच्यो द्विदेहके[3] ॥३७६॥
चरेऽष्टमे परे[4] देशे स्थिरे तत्रैव संस्थितः ।
ग्रामद्वितयमध्यस्थो रोगी भवेद्[5] द्विदेहके ॥३७७॥

---

श्रीदेवेन्द्र के शिष्य श्रीहेमप्रभसूरि ने पुत्र जन्म पर प्रकाश डालने वाला इस एकमात्र आदर्श ग्रन्थ का निर्माण किया है ॥ ३७३ ॥

रोगप्रश्न में षष्ठ स्थान रोगसंज्ञक समझना । फिर लग्न या लग्न के आस पास मे जितने ग्रह होवें उतने पुरुष रोगी के पास होते हैं । वहां पुरुष ग्रह जितने रहें उतने पुरुष और स्त्रीग्रह जितने रहें उतनी स्त्रियां लगा रहती है ॥ ३७४-७५ ॥

रोगस्थान चर राशि हो तो रोगी को घर के ऊपर में चलता हुआ समझना चाहिये । यदि स्थिर राशि हो तो घर के मध्य में बैठा हुआ कहना चाहिये, द्विस्वभाव राशि मे हो तो रोगी को सोता हुआ समझना चाहिये ॥ ३७६ ॥

लग्न से अष्टम स्थान यदि चर राशि का हो तो रोगी परदेश में रहे, यदि स्थिर राशि रहे तो वहीं रहे और यदि द्विस्वभाव वाले राशि रहें तो दो गांव के बीच में रोगी रहे ॥ ३७७ ॥

---

1. ज्ञेयं for वाच्यं A. 2. भोग for रोग A, A[1] 3. द्विदेहिके A. द्विवेहके A. 4. पर for परे A. 5. the text reads भवति for भवेत ।

रोगिणोऽस्य बुभुक्षा न विनष्टे स्वग्निखेचरे ।
रक्तग्रहे विनष्टे तु विनष्टं रुधिरं वदेत्[1] ॥३७८॥
छिद्रस्थौ चन्द्रशुक्रौ चेदतीसारं विनिर्दिशेत् ।
छिद्रस्थावुशनाभौमौ[2] बलपाताय कीर्तितौ ॥३७९॥
भौमार्कौ रुधिरोद्रेकं पित्तोद्रेकं च संस्थितम् ।
सक्रूरो धिषणस्तत्र सन्निपातं करोति च ॥३८०॥
द्यूने कुजेऽथवा सूर्ये संतापं रोगिणां वदेत् ।
शनिरन्यग्रहैर्युक्तश्चित्त[3]रोगं करोत्यहो ॥३८१॥
छिद्रस्थौ राहुमार्तण्डौ कुष्ठरोगप्रदायकौ ।
प्रददाति महाकुष्ठं ताभ्यां युक्तस्तु मङ्गलः ३८२॥
तत्र शनौ च राहौ च वातरोगः स्फुटं भवेत् ।
कम्पेते हस्तपादौ च रोगस्यैवं[4] विनिश्चयः ॥३८३॥

यदि अग्निग्रह विनष्ट रहे तो रोगी को भूख की कमी होती है। रक्तग्रह यदि नष्ट हों तो रुधिर की कमी कहनी चाहिये ॥ ३७८ ॥

यदि आठवें स्थान मे चन्द्र और शुक्र रहे तो अतीसार कहना चाहिये। तो फिर शुक्र और शनि उस स्थान मे रहे तो बल की कमी होती है ॥ ३७९ ॥

आठवें स्थान में यदि मंगल और रवि रहे तो रुधिर और पित्त का अतिशय कहना चाहिये। फिर शुक्र और शनि उस स्थान मे रहें तो सन्निपातरोग होता है ॥ ३८० ॥

सप्तम स्थान में यदि मंगल वा रवि रहें तो रोगी को पूर्ण पीड़ा होती है। शनि किसी अन्य ग्रहों से युत होकर बैठा हो तो मानसिक रोग होता है ॥ ३८१ ॥

अष्टम स्थान में यदि सूर्य और राहु रहे तो कुष्ठ रोग होता है। यदि मंगल भी उनके साथ बैठा हो तो महाकुष्ठ कहना चाहिये ॥ ३८२ ॥

अष्टम स्थान में शनि वा राहु रहें तो वातरोग होता है। हाथ पांव सभी कांपने लगते है। रोग का इस प्रकार निश्चय जानना ॥३८३॥

4. The text reads ब्रुवेत् for वदेत् which is obviously incorrect. 2. वुशनो for वुशना A. 3. चित्र for चित्त A
1. The text reads दं for वं

अमुकमौषधं भव्यमिति प्रश्ने च लग्नतः ।
लग्नं वैद्यः सुखं रोगी व्याधिस्तत्र च सप्तमम् ॥३८४॥
औषधं दशमं प्रोक्तं[1] तच्च ज्ञेयं शुभाशुभम् ।
वैद्योषधी[2] बलाधिक्ये बलत्वे रोगरोगिणोः[3] ॥३८५॥
रोगी जीवति निर्विघ्नं विपरीते विपर्ययः ।
वैद्यस्य रोगिणोर्मैत्र्यं[4] मैत्र्यमौषधरोगिणोः ॥३८६॥
लग्नस्य सबलत्वे च केन्द्रे[5] सौम्यग्रहेषु च ।
उच्चस्थेऽपि त्रिकोणे च रोगी जीवति मानवः ॥३८७॥
अष्टमे च रवौ लग्ने[6] चन्द्रे तत्र जलाद् भवेत् ।
सन्निपातात्कुजे वाच्या बुधैः स्याज्ज्वरतो मृतिः ॥३८८॥
अजीर्णाद्धिषणात्प्रोक्ता तृषः शुक्रात्पुनर्मृतिः ।
बुभुक्षातः शनेर्वाच्या निश्चितं रोगिणः पुनः ॥३८९॥

---

यह औषध अच्छा होगा वा नहीं ऐसे प्रश्न में वैद्य को लग्न, रोगी को चतुर्थ और व्याधि को सप्तम और औषध को दशम स्थान समझ कर शुभाशुभ का निर्णय करना चाहिये। वैद्य, औषधस्थान यदि सबल होवें, रोग और रोगी के स्थान यदि निर्बल हों तो अवश्य रोगी जीवे अन्यथा उसकी मृत्यु हो। वैद्य और रोगी तथा औषध और रोगी की परस्पर मैत्री कही गयी है ॥ ३८४–३८६ ॥

लग्न सबल रहे और शुभ ग्रह केन्द्रस्थान में रहें वा उच्च में रहें वा नवम, पञ्चम में रहें तो रोगी अवश्य जीवित रहता है ॥३८७॥

अष्टम स्थान में रवि, लग्न में चन्द्र रहे तो जल से, मंगल लग्न में रहे तो सन्निपात से, बुध रहे तो ज्वर से मृत्यु होवे ॥३८८॥

अष्टम स्थान में गुरु रहे तो अजीर्ण से, शुक्र रहे तो प्यास से, शनि रहे तो भूख से रोगी को निश्चय ही मृत्यु कहनी चाहिये ॥३८६॥

---

1, दशममौषधप्रोक्तं for औषधं दशमं प्रोक्तम् A, A[1]
2. ०षध्यो for ०षधी 3. रोगिणाम् for रोगिणोः A. 4. ०मैत्र्यां for ०मैत्र्यं Bh. 5. The text reads केन्द्र for केन्द्रे 6 रवावग्ने for रवौ लग्ने A, A[1].

लग्नस्थाने बलाधिक्ये लाभस्यापि ग्रहादिभिः ।
रोगी जीवति पूर्णायुर्वीतरोगो भवेदयम् ॥३९०॥
चन्द्रो लग्नपतिर्वापि पृष्टे[1] मृत्यौ खलेक्षितः ।
दीर्घरोगी नरो वाच्यो वक्रिते लग्ननायके ॥३९१॥
विनष्टे लग्नपे मृत्युः कंटके मृत्युनायके ।
गृध्रकोलोरगत्र्यंशै[2]रुदितैरपि पञ्चता[3] ॥३९२॥
चतुरस्रे यदा चन्द्रः पापग्रहद्वयान्तरे ।
लग्ने षष्ठोदये बन्धौ क्रूरविद्धौ मृतौ मृतिः ॥३९३॥
षष्ठे[3] लग्ने चरे केन्द्रे शुभयुक्ते तदोदिते ।
कृतान्तवक्त्रगो रोगी जीवत्येव सुवैद्यतः ॥३९४॥

इति षष्ठस्थाने रोगप्रकरणम् ।

अथ सर्वभावेभ्यो जायाप्रकरणं प्रधानं सप्तमभावे कथ्यते ।

---

लग्नस्थान और लाभस्थान में सबल ग्रह यदि हों तो रोगी पूर्णायु और रोगरहित होकर जीता है ॥३९०॥

लग्नेश वा चन्द्र षष्ठ वा अष्टम स्थान में रहें और पाप ग्रहों से देखे जांय, और लग्न नायक यदि वक्री हो तो मनुष्य चिरकाल तक रोगी रहे ॥३९१॥

लग्नेश यदि नष्ट हो, अष्टमेश यदि केन्द्र में हो तो त्र्यंशों के उदित रहने पर भी, गीध सूअर अथवा सांप द्वारा मृत्यु समझनी चाहिये ॥३९२॥

चन्द्रमा यदि चौथे वा आठवें स्थान में हो तथा दो पापग्रहों के बीच में हो, लग्न, छठा, चौथा और आठवां पापग्रहों से विद्ध हो तो मृत्यु हो जाती है ॥ ३९३ ॥

लग्न वा छठे गृहों में चर ग्रह हों, केन्द्रस्थान शुभ तथा उदित ग्रहों से युक्त हों तो यमराज के मुख में पड़ा हुआ भी रोगी सद्वैद्य के द्वारा बचा ही रहेगा ॥ ३९४ ॥

---

1 षष्ठे for पृष्टे Bh. 2. For this line A reads. गृध्रगोलोरगत्र्यंशोरुदितौरपि पंचता ॥ ०कोलोरगत्र्यांशै Bh. 3. A, A[1] read पृष्टे for षष्ठे

यदि लग्नपतिर्लग्ने भर्त्रादेशकरी प्रिया ।
लग्नेशः सप्तमे स्थाने जायादेशकरः पतिः[1] ॥३९५॥
यदा लग्नपतिर्लग्ने जायेशः सप्तमे[2] यदि ।
तदा प्रीतिर्द्वयोर्वाच्या समानैव परस्परम् ॥३९६॥
यदा भार्यापतिर्लग्ने लग्नेशः सप्तमे यदि ।
अन्योऽन्यप्रीतिपीयूषपूरपूरितसम्मदौ[3] ॥३९७॥
यदा लग्नेशजायेशौ लग्नस्थ भवतो यदि ।
तदा गाढतरी[4] प्रीतिस्तोलिता द्वितयेऽपि च ॥३९८॥
यदा जायापतिर्लग्ने[5] जायास्थानस्थितो यदि ।
प्राधान्येनैव भार्यायाः समा प्रीतिर्द्वयोर्भवेत्[6] ॥३९९॥

## चतुर्भंग्या प्रीतिः

जायास्थानं यदा तुंगे[7] प्रश्ने भवति लग्नतः ।
रूपलावण्यजन्माद्यैरुत्तमा भर्तृतोऽङ्गना ॥४००॥

---

लग्नेश यदि लग्न में रहे तो स्त्री भर्ता की आज्ञाकारिणी होती है। यदि लग्नेश सप्तम स्थान में रहे तो पति पत्नी का आज्ञाकारक होगा ॥ ३९५ ॥

लग्नेश यदि लग्न में, सप्तमेश सप्तम स्थान में रहे तो स्त्री और पुरुष दोनों में पारस्परिक प्रेम कहना चाहिये ॥ ३९६ ॥

यदि सप्तमेश लग्न में और लग्नेश सप्तम स्थान में हो तो भी स्त्री पुरुष पारस्परिक प्रेमामृत से युक्त सम्पदा वाले होवें ॥ ३९७ ॥

लग्नेश और सप्तमेश दोनों यदि लग्न में रहें तो दोनों में प्रगाढ प्रेम होता है ॥ ३९८ ॥

जब लग्नेश और सप्तमेश दोनों सप्तम स्थान रहें तो स्त्री की प्रधानता से दोनों में पारस्परिक प्रेम होता है ॥ ३९९ ॥

प्रश्नकाल मे यदि सप्तम स्थान उच्च हो तो रूप, लावण्य, वंश आदि से स्त्री पति से उत्तम होती है ॥ ४०० ॥

---

1. प्रियः for पतिः A, A[1] 2. सप्तमो for सप्तमे A, A[1]. 3. सम्पदौ for सम्मदौ A, A[1] 4 ०तरा for तरी A. 5. लग्नेशजा येशो for जायापतिर्लग्ने A. 6. The text reads वदेत् for भवेत 7. तुंगं for तुंगे A, A[1]., Bh.

भार्यास्थानं यदा तुंगमुदितं सौम्यसंयुतम् ।
तदा रङ्ककुलोत्थस्य भार्या भवति भूपजा ॥४०१॥
सप्तमे क्रूरिते[1] भावे चतुर्थे सौम्यसंयुते ।
धृता तस्य भवेद्भार्या परिणीता मृतैव हि ॥४०२॥
सप्तमे यदि राहुः स्यात् पृच्छायां जन्मलग्नतः ।
या यात्र परिणीता स्यात् सा सा पत्नी मृतैव हि ॥४०३॥
सप्तमे तुर्यगे वापि[2] क्रूरे शुक्रबलोत्थिते ।
परिणीता धृता वापि जीवत्येव न वर्णिनी ॥४०४॥
सप्तमं तुर्यगं चापि[3] तुंगं सौम्ययुतं भवेत् ।
परिणीता धृता चापि द्वे स्तो रुचिरकन्यके ॥४०५॥
जायागृहांकमानेन भार्यासंख्या विलोक्यते ।
जायागृहानुमानेन जायासंख्या सतां मता ॥४०६॥
मित्रक्षेत्रे ग्रहे सौम्ये स्वीया पत्नी सदैव हि ।
शत्रुक्षेत्रे ग्रहे सौम्ये परपत्नी सुखावहा ॥४०७॥

स्त्रीस्थान में उदित शुभग्रह यदि उच्च का हो तो दरिद्र कुल में विवाह होने पर भी वह स्त्री रानी के समान होती है ॥ ४०१ ॥

सप्तमस्थान यदि पापग्रहों से युक्त हो और चौथे में शुभग्रह हों तो स्त्री की मृत्यु हो ॥ ४०२ ॥

प्रश्न में जन्मलग्न से यदि सप्तम में राहु हो, जिस जिस स्त्री से विवाह वा सम्बन्ध हो वही मर जाय ॥ ४०३ ॥

सप्तम वा चतुर्थ स्थान में पापग्रह रहें और शुक्र से संबन्ध रखते हों तो विवाहित वा संबद्ध भी स्त्री मर जाती है ॥ ४०४ ॥

सप्तम वा चतुर्थ स्थान उच्च का अथवा किसी शुभग्रह से युक्त हो तो विवाहित वा सम्बन्ध वाली स्त्री अच्छी ही होगी ॥ ४०५ ॥

सप्तमस्थान के ग्रहों की संख्या के अनुमान से ही स्त्रीसंख्या देखी जाती है ॥ ४०६ ।

शुभग्रह यदि मित्र के घर में रहें तो स्त्री अपनी सदा रहती है । शत्रु के घरमें यदि शुभग्रह रहें तो दूसरे की पत्नी सुखावह होती है ।.४०७॥

1. क्रूरितो for क्रूरिते A[1] 2. यदि तुर्ये वा for तुर्यगे वापि A.
3. A read वापि for चापि ।

सप्तमे धिषणे शुक्रे रूपलावण्यशालिनी ।
आद्ये पितृकुले[1] जाता कर्णविश्रान्तलोचना ॥४०८॥
बालः शशी बुधश्चापि कुमारीं ब्रुवतः स्त्रियम् ।
रूपोपेतां प्रसूतां च गुरुर्वक्ति नितम्बिनीम् ॥४०९॥
शुभग्रहो गुरुः प्रश्ने सर्वांगद्युतिशालिनीम् ।
सौम्येक्षितस्तु शुक्रोऽपि सलावण्यां सुलोचनाम् ॥४१०॥
तेजोयुक्तां कुजो ब्रूते रामां रूपेण वर्जिताम् ।
शनिराहू च सक्रूरौ दुर्गुणां वदतोऽवशाम् ॥४११॥
वृद्धां रविः शनिश्चापि जरतीं योषितं पुनः ।
शुक्रभौमौ च खेटौ द्वौ वदतो हन्त कर्कशाम् ॥४१२॥
यदि पृच्छति नार्येषा दृष्टदोषा कुमारिका ।
अदृष्टपुरुषा साध्वी निर्दोषा स्यात्कुमारिका[2] ॥४१३॥

---

सप्तमस्थान में यदि गुरु और शुक्र रहें तो स्त्री, रूप-लावण्य-युक्त, कुलीना तथा विशाल नेत्रों वाली होती है ॥ ४०८ ॥

जिसकी जन्मकुण्डली में चन्द्र और बुध बाल्यावस्था को प्राप्त हों तो कुमारी स्त्री मिले । यदि गुरु रहें तो सुन्दरी स्त्री मिले ॥ ४०९ ॥

प्रश्नकाल में गुरु शुभग्रह में हों तो सर्वांगसुन्दरी स्त्री की प्राप्ति हो। यदि शुक्र शुभग्रहों से देखे जांय तो लावण्यवती सुनेत्रा स्त्री की प्राप्ति हो ॥ ४१० ॥

मंगल रहे तो स्त्री तेजवाली किन्तु रूपरहित होगी ।शनि और राहु यदि किसी अन्य भी पापग्रहों से युक्त हों तो स्त्री दुर्गुणा और पराधीन होवे ॥ ४११ ॥

रवि रहे तो वृद्धा, शनि रहे तो भी वृद्धा, शुक्र और मंगल हो तो कर्कशा स्त्री होती है ॥ ४१२ ॥

यदि प्रश्न हो कि यह स्त्री दोषयुक्त कुमारिका अथवा दोषरहित पतिव्रता है ॥ ४१३ ॥

---

1. गृहे for कुले A. 2. In A, A[1] this line follows the next line beginning with लग्नलग्नेश

लग्नलग्नेशचन्द्राश्च स्थिरराशौ भवन्ति चेत् ।
अदृष्टपुरुषा ज्ञेया कुमारी स्वगृहेऽपि हि ॥४१४॥
स्थिरराश्यन्यराशौ चेद् भौमेन[1] सह चन्द्रमाः ।
कुमार्यदृष्टदोषैव तदा वाच्या विचक्षणैः ॥४१५॥
लग्नलग्नेशचन्द्राश्च चरराशौ भवन्ति चेत् ।
सा परपुरुषाक्रान्ता कनी वाच्या बुधैस्तदा[2] ॥४१६॥
शनिचन्द्रौ यदा लग्ने वसतः कामिता सदा[3] ।
द्विरूपे चरराशौ वा चन्द्रो भवति चेद्यदि ॥४१७॥
मूललग्नं स्थिरं तत्र दोषः खलकृतो भवेत् ।
यदि पृच्छति येनैषा प्रसता वरवर्णिनी ॥४१८॥
शुक्रे चन्द्रे[4] बुधे सिंहे त्वेवंयोगे प्रसूतिका ।
वृश्चिके बुधशुक्रौ चेद् वृषे वा तिष्ठतो[5] यदि ।
एवं योगे समायाते प्रसूता युवती मता ॥४१९॥

---

तो यदि लग्न, लग्नेश और चन्द्रमा स्थिर राशि के हों तो वह कन्या अपने घर में निर्दोष होकर रहे ॥ ४१४ ॥

चन्द्रमा यदि मंगल के साथ रहकर स्थिर अथवा अन्य राशि में रहे तो भी वह कन्या अदूषित होती है ॥ ४१५ ॥

लग्न, लग्नेश और चन्द्रमा यदि चर राशि में हों तो वह कन्या अन्य पुरुष के साथ फंसी हुई कहनी चाहिये ॥ ४१६ ॥

शनि और चन्द्रमा यदि लग्न में हों तो वह कन्या सदा कामुकी रहे। यदि चन्द्रमा चरराशि अथवा द्विस्वभाव राशि में रहे तो भी कन्या सदा कामुकी रहती है ॥ ४१७ ॥

यदि जन्मलग्न स्थिरराशि हो तो दुष्ट से दूषित अथवा प्रसूता कन्या कहनी चाहिये ॥ ४१८ ॥

शुक्र चन्द्रमा, बुध सिंह में वा बुध और शुक्र वृश्चिक अथवा वृष में यदि हों तो वह स्त्री प्रसववती कहनी चाहिये ॥ ४१९ ॥

---

1. सौम्येन for भौमेन A[1] 2. तदा for सदा A., 3. वस्तुतो कामिता तदा Bh. 4. कुंभे for चन्द्रे A. 5. संस्थितौ for तिष्ठतः A.

द्विस्वभावे विलग्ने चेत्पापराशिविवर्जिते ।
भौमबुधेन्दुशुक्राः स्युरग्रेऽपत्यं[1] स्थितं[2] तदा ॥४२०॥
पापग्रहाश्चरे राशौ सम्भवन्ति यदापि हि ।
तदावश्यं बुधैर्ज्ञेयमपत्यं परपौरुषात् ॥४२१॥
क्रूरग्रहाः स्थिरे राशौ प्रश्ने यदि भवन्ति चेत्[3] ।
हृदयं सदयं ध्येयमपत्यं निजवल्लभात् ॥४२२॥
मिश्रग्रहाः स्थिरे राशौ पृच्छायां संभवन्ति चेत् ।
तदा ध्रुवं नरैर्वाच्यमपत्यं मिश्रपौरुषात् ॥४२३॥
स्वभर्तुरन्यभर्तुर्वा योषा जातात्र गुर्विणी ।
इति प्रश्ने बुधैश्चिन्त्यं पञ्चमस्थानकं[4] किल ॥४२४॥
दृश्यते शनिभौमाभ्यां सोमदृष्टिविवर्जितम् ।
पञ्चमं यदि गेहं स्यात्तदा गुर्वी परान्नरात् ॥४२५॥

मंगल, बुध, चन्द्रमा और शुक्र यदि पापग्रहों से हीन द्विस्वभाव लग्न में हों तो सन्तान को आगे में कहना चाहिये ॥ ४२० ॥

यदि पापग्रह चर राशि में हों तो वह सन्तान अवश्य ही दूसरे पुरुष से उत्पन्न होवे ॥ ४२१ ॥

पापग्रह यदि प्रश्नकुण्डली में स्थिर राशि में रहें तो वह संतान अवश्य ही अपने पति से हो ॥ ४२२ ॥

प्रश्नकाल में यदि स्थिर राशि में मिश्र ग्रह अर्थात् शुभ और अशुभ दोनों ग्रह हों तो वह सन्तान मिश्र पुरुष अर्थात् स्वपिता और परपिता से उत्पन्न कहनी चाहिये ॥ ४२३ ॥

वह स्त्री अपने वा पराये पति से गर्भवती हुई है—ऐसे प्रश्न में पञ्चम स्थान को देखना चाहिये ॥ ४२४ ॥

पञ्चम स्थान यदि शनि और मंगल से देखा जाय और चन्द्रमा की दृष्टि उस पर न हो तो वह गर्भ परपुरुष से समझना चाहिये ॥४२५॥

---

1 रागनो for रग्रे A. 2. स्थिरं for स्थितं A., A[1] 3. भवन्ति यद्ग्रहो for यदि भवन्ति चेत् A. 4. स्थानकं पंचमं for पंचमस्थानकम् A.

न दृष्टं शनिभौमाभ्यां सोमदृष्टं च पञ्चमम् ।
तदा नूनं बुधैर्वाच्यं स्वकान्तादेव गुर्विणी ॥४२६॥

अथाशुभयुतोऽर्कः सेन्दुर्यदि जीवो न लग्नमिन्दुर्वा ।
जीवः सार्कं नेन्दुं पश्यति गर्भः परैर्जातः ॥४२७॥

यदि लग्नपजायापौ खलु वीक्षेते परस्परं पूर्वम्[1] ।
प्रीतिःपूर्णा[2] खण्डा खण्डितदृष्टा[3] वधूवरयोः ॥४२८॥

सौम्यग्रहैः शुभारामा सुशीला भर्तृवत्सला ।
क्रूरग्रहैस्तु दुःशीला भर्तृविद्वेषिणी मता ॥४२९॥

श्रीमद्देवेन्द्रसूरीणां शिष्येण ज्ञानदर्पणः ।
विश्वप्रकाशकश्चक्रे श्रीहेमप्रभसूरिणा ॥४३०॥

इति सप्तमस्थानप्रतिबद्धं जायाप्रकरणम् ।

---

यदि पञ्चमस्थान शनि और मंगल ग्रहों से न देखा जाय और चन्द्रमा की दृष्टि रहे तो वह स्त्री अपने पति से ही गर्भवती होती है ॥ ४२६ ॥

चन्द्रमा से युक्त सूर्य पापग्रह से युक्त हो वा बृहस्पति लग्न और चन्द्रमा को नहीं देखता हो अथवा सूर्य से युक्त चन्द्रमा को बृहस्पति नहीं देखता हो तो जार पुत्र कहें ॥ ४२७ ॥

यदि लग्नेश और सप्तमेश परस्पर पूर्ण दृष्टि देखते हों तो स्त्री-पुरुष में पूर्ण प्रीति होती है और यदि खण्डित दृष्टि वाले हों तो प्रेम खण्डित रहता है ॥ ४२८ ॥

लग्नेश और सप्तमेश यदि सौम्यग्रहों से देखा जाय तो स्त्री सुशीला और भर्तृप्रिया होती है । यदि वे पापग्रहों से देखा जाय तो वह पतिद्वेषिणी होती है ॥ ४२९ ॥

श्री देवेन्द्रसूरि के शिष्य श्रीहेमप्रभसूरि ने विश्वप्रकाशक और ज्ञानदर्पण इस ग्रन्थ को रचा ॥ ४३० ॥

---

1. पूर्णा for पूर्वम् A. 2. पूर्णा प्रीतिः for प्रीतिःपूर्णा A. 3. दृष्ट्वा for दृष्टा A.

# अथ स्त्रीजातकम् ।

क्रूरलग्नोद्भवा नारी स्वमपश्यति लग्नपे ।
पतिं न रञ्जयत्येषा क्रूरत्वेनाप्यहंकृता ॥४३१॥
कर्मस्थे[1] मङ्गले जाता स्वैरिणी कुलदूषिका ।
निःशुक्राथ पतेर्द्वेष्या चिरं[2] भ्रमति वेश्मसु ॥४३२
द्वौ शुभौ दुर्जनक्षेत्रेऽप्यन्यः क्रूरो विलग्नगः[3] ।
तत्र लग्ने ध्रुवं जाता स्त्री भवेद्विषकन्यका[4] ॥४३३॥
द्वादशेऽप्यष्टमे भौमे क्रूरे तत्रैव संस्थिते ।
राहौ विलग्ने नूनं रण्डा भवति कन्यका ॥४३४॥

क्रूर लग्न में उत्पन्न स्त्री, जब लग्नेश लग्न को न देख रहा हो, क्रूरता के व्यवहार से, अहंकार के कारण अपने पति को प्रसन्न नहीं करती ॥ ४३१ ॥

मंगल दशमस्थान में यदि रहे तो वह स्त्री अपनी इच्छा से घूमने वाली और अपने वंश को दूषित करने वाली, शुक्ररहित तथा पतिद्वेषिणी बनकर चिरकाल तक लोगों के घरों में घूमती फिरती है ॥ ४३२ ॥

दो शुभ ग्रह यदि पापग्रह की राशि में हों और एक पापग्रह लग्न में रहे तो ऐसे लग्न में उत्पन्न कन्या विषकन्या ही समझी जाय ॥ ४३३ ॥

द्वादश वा अष्टम स्थान में मंगल रहे और अन्य भी पापग्रह उसमें रहें और लग्न में राहु रहें तो वह कन्या अवश्य विधवा होगी ॥ ४३४ ॥

1. स्थिथ for स्थे A. 2. स्वैरं for चिरं Bh. पतेर्द्वेष्याश्चि (स्वैरं A[1]) भ्रमति for पतेर्द्वेष्या चिरं भ्रमति A, A[4] 3. The text reads विलग्नतः for विलग्नगः । Samhitasara quotes a verse of similer interest and ascribes it to Trailokyaprakasa. The verse is the following.

रिपुक्षेत्रस्थितौ द्वौ तु लग्ने यत्र शुभौ ग्रहौ ।
क्रूरश्चैव तदा जाता भवेत् स्त्री विषकन्यका ॥

Compare also Ranavirajyotirnibandha Strijataka P. 517 :

भौमादित्यशनौ लग्ने जाता भवति दुर्भगा।
सौम्यस्वोच्चे स्वके जाता सुभगा भवति भामिनी॥४३५॥
स्त्रीजातके च लग्नेशे ग्रहान्तरसुहृद्युते।
उपपत्तिः श्रियां[1] वाच्या[2] निश्चितं यौवनोद्धतौ[3] ॥४३६॥
मूर्तौ राह्वर्कभौमेषु रामा[4] भवति वर्णिनी।
एषु शुक्रद्वितीयेषु पतिमन्यं चिकीर्षति ॥४३७॥
नीचे भौमे शनौ वास्ते[5] राहावपि च तत्रगे[6] ।
आजन्म रमणेनैव[7] स्वेच्छाचारी पुनर्धना ॥४३८॥
सप्तमेऽस्ते[8] स्वपतित्यक्ता नवोढैव कुजेऽथवा।
क्रूरदृष्टे[9] शनौ नार्या वार्द्धकं यौवने भवेत् ॥४३९॥

लग्न में मंगल, सूर्य, शनि रहें तो उत्पन्न कन्या कुत्सितयोनि वाली होगी और यदि शुभग्रह अपने उच्च स्थान में रहें तो कन्या सुन्दर योनि वाली होती है ॥ ४३५ ॥

लग्नेश यदि दूसरे किसी मित्रग्रह से युक्त हों तो निश्चय ही युवावस्था में कन्या की उत्पत्ति कहनी चाहिये ॥ ४३६ ॥

लग्न में राहु, सूर्य और मंगल यदि हों तो स्त्री विधवा होती है। इन में से यदि कोई ग्रह शुक्र के साथ बैठा हो तो वह दूसरे पति की इच्छा करती है ॥ ४३७ ॥

मंगल, शनि यदि नीच स्थान में वा अस्त रहें और वहीं राहु भी रहे तो वह स्त्री आजन्म अपने पति के साथ स्वेच्छापूर्वक रमण करती है ॥ ४३८ ॥

सूर्य वा मंगल सप्तम स्थान में रहें तो नवोढा रहने पर भी वह अपने पति से परित्यक्ता हो जाती है। यदि दूसरे पापग्रह की दृष्टि शनि पर रहे तो यौवन में ही बुढ़ापा आजाता है ॥ ४३९ ॥

1 स्त्रियां for श्रियां A. 2. वाच्यो for वाच्या A. 3. तः for तौ A. यौवयोद्धते Bh. 4. रण्डा for रामा Bh. 5. चास्ते for वास्ते Bh 6 The text reads वभंशगे for च तत्रगे 7. मरणेनैव for रमणेनैव A, A[1] 8. The text reads स्वे for स्ते 9. दृष्टिः for दृष्टे A, A[1]

क्रूरमात्रे पतित्यक्ता घनैः क्रूरैः पतिर्नहि ।
सुरूपा सा भवेन्नारी सप्तगेहगतैर्ग्रहैः ॥४४०॥
द्युने भौमनवांशे मंदगदृष्टे सरोगयोनिः स्त्री ।
तत्रैव शुभनवांशे चारुश्रोणी प्रिया पत्युः[1] ॥४४१॥

इति स्त्रीजातकम् ।

मघा रेवती मूलं च ज्येष्ठाश्लेषा तथाश्विनी ।
वर्जयेदृतुकाले च षडेतानि हि नान्यभम् ॥४४२॥
योनिस्थाने[2] स्थिते चन्द्रे शुक्रे तत्रैव संस्थिते ।
रतेः सुखं स्त्रियो वाच्यं नखसीत्कारपेशलम् ॥४४३॥
गुरौ लग्ने सिते द्युने चन्द्रे च सुखवेश्मनि ।
रूपलावण्ययुक्तानां रतं यूनां सुखास्पदम् ॥४४४॥
अस्ते शुक्रे युते क्रूरैः सुखं पीडा च जायते ।
चन्द्रशुक्रौ यदा तत्र सुखाधिक्यं तदा मतम् ॥४४५॥

---

सप्तमस्थान में यदि पापग्रह हों तो वह स्त्री पतित्यक्ता हो जाय। यदि उस स्थान में अधिक पापग्रह होवें तो पति मर जाय। यदि सात भावों में सब ग्रह स्थित हो जाय तो स्त्री सौभाग्यवती होती है ॥ ४४० ॥

सप्तमस्थान में मंगल के नवांश में यदि शनि की दृष्टि रहे तो स्त्री योनिदोषवती होती है। उसी स्थान में यदि शुभग्रह का नवांश हो जाय तो स्त्री सुन्दरी तथा पतिप्रिया होती है ॥ ४४१ ॥

ऋतुकाल में मघा रेवती, मूल, ज्येष्ठा, आश्लेषा और अश्विनी इन ६ नक्षत्रों को अवश्य छोड़ना चाहिये, अन्य नक्षत्रों को नहीं ॥ ४४२ ॥

चन्द्र और शुक्र यदि योनिस्थान में रहें तो उस स्त्री को मैथुनजन्य सुख कहना चाहिये ॥ ४४३ ॥

लग्न में गुरु, सप्तम में शुक्र और चतुर्थस्थान में यदि चन्द्रमा रहे तो रूप लावण्ययुक्त युवकों को स्त्रीसुख कहना चाहिये ॥ ४४४ ॥

शुक्र यदि सप्तम स्थान में रहे तथा क्रूर ग्रहों से युक्त हो तो सुख और दुख दोनों होते हैं। यदि चन्द्रमा और शुक्र एक साथ रहें तो अधिक सुख कहना चाहिये ॥ ४४५ ॥

---

1. सौभाग्याढ्या शुभैर्युक्ते for चारु...पत्यु : A, A[1] 2. स्थान for स्थाने A, A[1]

गुरुणा सहितौ तौ च सप्तमे वाथवाष्टमे ।
महासौख्यं रतेर्वाच्यं मुदितैर्मुदितस्त्रियाः ॥४४६॥
स्वगृहे[1] स्वर्क्षगैः सौम्यैः परगेहेऽन्यगेहगैः ।
मित्रौकसि तु मित्रस्थैः[2] रतं शुभस्त्रिया सह ॥४४७॥
अस्ते शुक्रे च शीतांशौ ससौख्यं सुरतं मतम् ।
सगुरौ चन्द्रशुक्रे च कर्पूरादि [3]सुखाश्रयम् ॥४४८॥
क्रूरे सौम्ये च सायासं सोद्वगं कलहाश्रयम् ।
भोगवर्जं शनौ वाच्यं मैथुनं पूतधीधनैः[4] ॥४४९॥
एकं रतं चरे वाच्यं स्थिरलग्ने रतद्वयम् ।
द्विस्वभावे तु लग्ने तु रतत्रयमुदाहृतम् ॥४५०॥
तुर्ये गुरौ रतं वाच्यमुत्तमे[5] देववेश्मनि ।
भग्नदेवगृहे भूमौ गुरौ नीचे रतं मतम् ॥४५१॥

यदि चन्द्रमा और शुक्र गुरु के साथ सप्तम तथा अष्टम स्थान में रहें तो आनन्दयुक्त स्त्री के साथ आनन्दित पुरुषों को मैथुन-सुख होता है ॥ ४४६ ॥

शुभग्रह अपने घर में रहें तो अपने घर में, अन्य राशि में रहें तो दूसरों के घर में, मित्रस्थान में रहें तो मित्र के घर में, सुन्दर स्त्री के साथ भोगविलास कहना चाहिये ॥ ४४७ ॥

सप्तमस्थान में यदि शुक्र और चन्द्रमा रहें तो सुखसहित मैथुन होता है। चन्द्रमा और शुक्र यदि गुरु के साथ रहें तो कपूर आदि सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित मैथुन होता है ॥४४८॥

सप्तम स्थान में शुभ और पापग्रह दोनों रहें तो आयास, उद्वेग और कलह से युक्त मैथुन होता है। शनि यदि सप्तम स्थान में रहे तो आनन्दशून्य मैथुन कहना चाहिये ॥ ४४९ ॥

प्रश्नलग्न यदि चर हो तो एक वार, स्थिर लग्न हो तो दो वार, द्विस्वभाव लग्न रहे तो तीन वार मैथुन कहना चाहिये ॥ ४५० ॥

चतुर्थ स्थान में गुरु रहे तो उत्तम देवालय में मथुन कहना चाहिये। वही गुरु यदि नीच का हो तो जीर्ण देवालय में मैथुन कहना चाहिये ॥ ४५१ ॥

---

1. स्वगृहे : for स्वगृहे ms. 2. मित्रस्थे for मित्रस्थैः Ms. 3. ०सुखा० for ०सुखा० A A[1], Bh. 4. मिथुनं श्रुतधीधनैः for मैथुनं पूतधीधनैः A, A[1] ६. 5. मुत्तगे for मुत्तमे A[1]

भौमे महानसे भूमौ सभयं सुरतं पुनः ।
शुक्रे च सजले स्थाने गीतनृत्यादिशालिनि ॥४५२॥
चन्द्रे शुक्रे च वाप्यादौ रतं प्रोक्तं सुखाश्रयम्[1] ।
कुञ्ज[2]मध्ये बुधे तूर्ये रतं रम्यं कथादिभिः[3] ॥४५३॥
शनौ राहौ च गर्तायां रवौ चतुष्पदाश्रयम् ।
एवं ग्रहानुमानेन[4] रतस्वरूपमादिशेत् ॥४५४॥

इति सप्तमस्थाने द्वितीयं सुरतप्रकरणम् ॥

## अथ परचक्रागमनप्रकरणम् ॥

चरे लग्ने स्थिरे[5] चन्द्रे समायाति रिपोर्बलम् ।
चरे चन्द्रे स्थिरे लग्ने शत्रुर्नायाति भूपतिः ॥४५५॥
चन्द्रलग्नौ स्थिरस्थौ चेत् तदा याति रिपोर्बलम् ।
चन्द्रोदयादपि द्व्यङ्गे शत्रुर्मार्गान्निवर्तते ॥४५६॥

---

मंगल यदि सप्तम स्थान में रहें तो रसोई घर में सभय मैथुन, शुक्र रहें तो जलाश्रयस्थान में जहां नृत्य, गीत आदि होते रहें मैथुन कहना चाहिये ॥ ४५२ ॥

चन्द्र और शुक्र यदि सप्तमस्थान में रहें तो सुखदायक स्थानों में और यदि बुध चतुर्थ स्थान में रहे तो कथा आदि से युक्त तथा किसी कुञ्ज में मैथुन कहना चाहिये ॥ ४५३ ॥

शनि, राहु यदि उक्त स्थान में रहें तो गड्ढे में, रवि रहें तो गोशाला आदि में, इस तरह ग्रहों की स्थिति के अनुसार मैथुन कहना चाहिये ॥ ४५४ ॥

चर राशि यदि लग्न में हो और चन्द्रमा स्थिर राशि में हो तो शत्रु की सेना आजाती है । चन्द्रमा यदि चर राशि में हो, लग्न स्थिर राशि का हो तो शत्रु नहीं आता ॥ ४५५ ॥

चन्द्र और लग्न दोनों स्थिर राशि के हों तो शत्रु की सेना आजाय । चन्द्र और लग्न यदि द्विस्वभाव राशि में रहें तो शत्रु मार्ग से ही लौट जाय ॥ ४५६ ॥

---

1. सुखावहम् for सुखाश्रयम् A. 2. पुञ्ज० for कुञ्ज A, A[1] 3. कथादिना for कथादिभिः A. 4. ग्रहानुभावेन for ग्रहानुमानेन A, A[1] 5. चरलग्नस्थिते for चरे लग्ने स्थिरे A.

परचक्रागमं प्राहुश्चरे लग्ने स्थिरे विधौ ।
द्वयोश्चरस्थयोर्वापि नत्वेतस्माद्विपर्यये ॥४५७॥
चरे शशी ततो द्व्यङ्गे अर्द्धं गत्वा निवर्तते ।
विपर्यये द्विधा याति क्रूरदृष्टे पराजयः ॥४५८॥
मेषवृषधनुःसिंहा मूर्तौ तुर्ये यदि स्थिताः ।
अग्रहाः सग्रहा वापि रिपुं व्यावर्तयन्ति ते ॥४५९॥
रिपुरायाति बन्धुस्थैः शीघ्रं प्रश्ने शुभग्रहैः ।
चन्द्रार्कौ तु सुखस्थौ चेत्तदा नायान्ति शत्रवः ॥४६०॥
लग्नाभ्रचन्द्रधर्मेशैः स्थिरस्थैर्नागमो रिपोः ।
स्थिरग्रहैः स्थिरे लग्ने दृष्टे नैति[1] कदाचन ॥४६१॥

---

लग्न यदि चर राशि में रहे और चन्द्रमा स्थिर राशि के हों तो शत्रुसेना का आगमन होता है। दोनों यदि चरराशि के हों तो शत्रु आवे। इस से विपरीत शत्रु नहीं आसकता ॥ ४५७ ॥

चर राशि में चन्द्रमा रहे, लग्न द्विस्वभावराशि के हों तो शत्रु आधे रास्ते से आकर लौट जाता है। इससे विपरीतावस्था में दो बार आता है। यदि पापग्रह की दृष्टि रहे तो उसकी हार हो जाती है ॥ ४५८॥

मेष, वृष, धनु, सिंह इन्हीं राशियों में से कोई यदि लग्न और चतुर्थ स्थान दोनों में रहे और वे यदि ग्रहों के साथ वा विना ग्रह के रहें तो शत्रु को लौटा देते हैं ॥ ४५९ ॥

प्रश्नकाल में यदि सभी शुभग्रह चतुर्थस्थान में रहें तो शत्रु शीघ्र ही आजाता है। यदि रवि, चन्द्र चतुर्थस्थान में रहें तो शत्रु नहीं आसकते ॥ ४६० ॥

लग्नेश, दशमेश, धर्मेश और चन्द्र यदि स्थिर राशि में हों तो शत्रु का आगमन नहीं होता। लग्न स्थिर राशि रहे और स्थिर ग्रहों से देखा जाय तो भी शत्रु कभी नहीं आते ॥ ४६१ ॥

---

1 नैव for नैति Bh.

लग्नपुण्यपती द्वौ तु युतदृष्टौ परस्परम् ।
परागमनकर्तारावन्यथाप्यन्यथा फलम् ॥४६२॥
पुण्यलग्नेशसंबद्धौ चन्द्रलग्नेश्वरौ यदि ।
द्विषदागमकर्तारावन्यग्रहयुतौ नहि ॥४६३॥
सौरिर्जीवोऽथवा लग्ने स्थिरे यदि च सगुरुः ।
रिपुरेति तदा नैव रिपुरेति चरैः पुनः ॥४६४॥
अर्कार्किबुधशुक्राणामेकोऽपि स्याच्चरोदये ।
भवेत्तदागमः शत्रोः स्थिरलग्ने न चागमः[1] ॥४६५॥
द्वितीये च तृतीये च गुरोः क्षेत्रे[2]ऽथवा भृगुः ।
बली यदा तदायाति शत्रुस्तत्र बलैर्युतः[3] ॥४६६॥

लग्नेश और धर्मेश की पारस्परिक दृष्टि हो अथवा वे दोनों युक्त ग्रह हों तो शत्रु का आक्रमण अवश्य होता है, अन्यथा रहें तो शत्रु नहीं आते ॥ ४६२ ॥

लग्नेश और चन्द्रमा यदि पुण्यस्थानेश से संबन्ध रखते हों तो शत्रु का आगमन होता है, अन्यग्रहों के साथ युक्त होवें तो शत्रु नहीं आता ॥ ४६३ ॥

शनि अथवा गुरु यदि लग्न में रहें अथवा स्थिर राशि के हों तो शत्रु नहीं आता और यदि वे चर राशि के हों तो शत्रु आजाता है ॥४॥६४

रवि, शनि, बुध, शुक्र इनमें से कोई भी चर लग्न में रहे तो शत्रु का आगमन अवश्य रहे किन्तु स्थिर लग्न होने पर नहीं होता ॥ ४६५ ॥

बली शुक्र यदि द्वितीय, तृतीय अथवा गुरु की राशि में रहें तो शत्रु सेना के साथ आता है ॥ ४६६ ॥

1. च नागमः for नचागमः A. 2. गुरुक्षेत्रे for गुरोःक्षेत्रे *A*. 3. For this line the ms. reads बली यदा तदायाति शुक्रो वा धिषणोऽपि वा । तथा तथा समायाति शत्रुस्तत्र बलैर्युत.

परागमनपृच्छायां लग्ने क्रूरः स्थितो यदा[1] ।
तदा शत्रोर्भवेन्मृत्युर्दैवादागच्छतः पथि ॥४६७॥
सुतशत्रुगतैः क्रूरैः[2] शत्रुर्मार्गान्निवर्तते ।
चतुर्थगैरपि प्राप्तः शत्रुर्भग्नो निवर्तते ॥४६८॥

इति सप्तमस्थाने तृतीयं परचक्रागमनप्रकरणम् ॥

अथ सप्तम एव मार्गनिबद्धत्वाद् गमनागमनं निरूप्यते

गमनागमनं प्रोक्तं चरे चन्द्रे चरोदये ।
द्विस्वभावे चरार्द्धे च चरवर्गे[3] विलम्बितम् ॥४६९॥
एतद्विपर्यये नेदं भवतीति विनिश्चितम् ।
चरेष्वपि प्रयाणं [4]स्याद्योगशक्त्या स्थिरोदये ॥४७०॥
अर्कार्किगुरुसौम्यानामेकेनापि चरोदये ।
शीघ्रयानं न तद्वक्रे नेन्दोः[5] स्वाघव्ययैः शुभैः ॥४७१॥

---

शत्रु का आक्रमण होगा वा नहीं ऐसे प्रश्न में यदि कोई पापग्रह लग्न में हो तो अकस्मात् मार्ग में आते हुए शत्रु की मृत्यु हो जाय ॥ ४६७ ॥

पञ्चम, षष्ठ स्थानों में यदि पापग्रह हों तो शत्रु मार्ग में से लौट जाता है । वे पापग्रह यदि चतुर्थ स्थान में हों तो शत्रु अङ्गभङ्ग होकर लौट जाता है ॥ ४६८ ॥

चन्द्र यदि चर राशि में हो और चरलग्न होवे तो आना-जाना ( आसानी से ) होता है । यदि लग्न और चन्द्रमा द्विस्वभाव राशि के हों, चरखण्ड वा चरराशि के वर्ग में पड़े हों तो आना-जाना देरी से होता है ॥ ४६९ ॥

इसकी विपरीतावस्था में यह नहीं होता, यह निश्चित है । चरलग्न में भी यात्रा होती है । स्थिरलग्न में भी योग शक्ति से यात्रा जाननी चाहिये ॥ ४७० ॥

रवि, शनि, गुरु, बुध—इनमें से कोई भी चर लग्न में रहे तो शीघ्र ही यात्रा होगी, यदि वे वक्री हों तो नहीं और यदि चन्द्रमा से शुभ ग्रह द्वितीय लाभ-व्यय स्थानों में हों तो भी नहीं ॥ ४७१ ॥

---

1. यदि for यदा A[1]. 2. पापैः for क्रूरैः A, A[1] 3. स्थिरलग्ने for चरवर्गे Bh. 4. चरे पथि प्रयातं स्या for चरेष्वपि प्रयाणं स्या० A., Bh. 5. तु तद्वक्रे नन्दो for न तद्वक्रे नेन्दोः A., नंदास्त्वर्थे व्यये शुभः Bh.

स्थिरे गमागमौ न स्तः शनिजीवनिरीक्षिते ।
अस्थिरे भवतस्त्वेतौ शुभखेटविलोकितौ ॥४७२॥

चन्द्रलग्नौ द्विदेहस्थौ चिरं वाच्यौ गमागमौ ।
चरादिवर्गगौ युक्त्या वक्तव्यौ कालमात्रया[1] ॥४७३॥

शुक्रार्किबुधजीवानामेकोऽपि चरलग्नगः ।
गमनाय निवृत्तौ तु चेत् स्थिरलग्नमाश्रितः ॥४७४॥

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च स्थिता धर्मार्थभावयोः ।
तत्र वीक्ष्या बलाद्यैश्च गमागमनिबन्धनाः[2] ॥४७५॥

शीर्षोदये शुभा यात्रा सैव पृष्ठोदयेऽन्यथा[3] ।
मीनलग्नांशकैर्वापि[4] यानं चक्रं च निष्फलम् ॥४७६॥

---

स्थिर लग्न रहे और शनि-गुरु की दृष्टि रहे तो आना-जाना नहीं होता। अस्थिर लग्न रहे और शुभ ग्रहों की दृष्टि रहे तो आना-जाना होता है ॥ ४७२ ॥

चन्द्रमा और लग्न द्विस्वभाव राशि के हों तो आने जाने में विलम्ब कहना चाहिये। चर राशि के वर्ग में रहे तो युक्तिपूर्वक, काल के अनुमान से गमनागमन कहना चाहिये ॥ ४७३ ॥

शुक्र, शनि, बुध और गुरु इनमें से कोई भी यदि चरलग्न में हो तो वह यात्रा के लिये प्रवृत्त होता है। वही यदि स्थिर लग्न में हो तो यात्रा नहीं कहनी चाहिये ॥ ४७४ ॥

गमन और आगमन दोनों धर्म और अर्थ भाव के ग्रहों का बलाबल देख कर कहने चाहियें ॥ ४७५ ॥

शीर्षोदय वाले राशि लग्न रहें तो शुभ यात्रा, पृष्ठोदय वाले राशि लग्न रहें तो विपरीत अर्थात् अशुभ यात्रा, मीन लग्न का उदय रहे तो आना जाना निष्फल रहे ॥४७६॥

---

1 कालमात्रय: for कलमात्रया Bh. 2 निबन्धनम् for निबन्धना: Bn 3. यथा for ऽन्यथा A, A[1] 4. मीनलग्नोदये वापि for मीनलग्नांशकैर्वापि A, A[1].

मदीयः पुत्रको देशे गत्वा तत्रैव संस्थितः ।
कदायातीति शङ्कायां[1] पृच्छालग्नं निरीक्षयेत् ॥४७७॥
चरे लग्ने चरांशे वा स्थिते चन्द्रे तदैव हि ।
परदेशात्समभ्येति स्वाङ्कसंख्यैश्च[2] यामिकैः[3] ॥ ४७८ ॥
चन्द्रो वा धिषणो वापि भार्गवो वा बलाधिकः ।
यदि तुर्ये समभ्येति तदा गेहागतं[4] वदेत् ॥ ४७९ ॥
प्रयाति सहजस्थानमसौ यस्याशुभग्रहः[5] ।
आयाति पथिकस्तस्यामेव नाड्यां गृहान् प्रति ॥ ४८० ॥
चरोदये चरांशे वा सौम्या यान्ति बलोत्कटाः[6] ।
तदा जवात्समभ्येति दूरादप्यचिरादपि[7] ॥ ४८१ ॥
मार्गे ह्यागच्छतः पुंसो विश्रामो ग्रहसंख्यया ।
प्रबलानि धनादीनि वाच्यं स्खलनकारणम् ॥ ४८२ ॥

मेरा पुत्र परदेश में जाकर वहीं बैठ रहा है। वह कब आवेगा ऐसे प्रश्न में प्रश्न लग्न को देखना चाहिये ॥४७७॥

चर लग्न अथवा चर राशि के नवांशक में यदि चन्द्रमा रहे और शनि अपने स्थान में हो तो वह परदेश से शीघ्र ही लौट आता है ॥४७८॥

चन्द्रमा, गुरु वा शुक्र बली होकर यदि चतुर्थ स्थान में रहें तो वह घर में आ गया है इस प्रकार कहना चाहिये ॥४७९॥

जिसकी प्रश्न कुण्डली में शुभग्रह तृतीय स्थान में रहें तो वह पथिक उसी समय घर को आ जाता है ॥४८०॥

शुभ ग्रह चर लग्न वा चर राशि के नवांश में सबल हो कर रहें तो दूर से भी वह शीघ्र आ जाय ॥४८१॥

मार्ग में आते हुए पुरुष के ग्रहस्थितिद्वारा विश्राम, बल, धन और विलम्ब के कारण कहने चाहियें ॥४८२॥

1. संख्यायां for शंकायां A. 2. संस्थैश्च for संख्यैश्च A. 3. यामकैः Bh. 4. गृहं गत for गेहागतं A, A¹. 5. यस्यां for यस्या A, A¹. यस्य Bh. 6 बलाधिकाः for बलोत्कटाः A, A¹. 7. दूरादपि चिरादपि for दूरादप्यचिरादपि A. A¹.

लग्नास्तयोर्द्वयोरङ्कास्तुर्यस्यापि भवन्ति चेत्[1] ।
दूराध्वानास्त्वविश्रामा[2] ज्ञातव्याः स्वगृहान्तरे ॥ ४८३ ॥
स्वभावगोऽतिचारो वा मार्गे वक्रगतिस्तथा ।
लग्ननाथस्य या दृग् स्यात् प्रचारः पथिकस्य सः ॥ ४८४॥
लग्नाद्वा लग्ननाथाद्वा यत्संख्ये क्रूरखेचराः ।
मार्गे हि गच्छतो गन्तुस्तत्रापि स्यादुपद्रवः ॥ ४८५ ॥
घ्नने नीचेऽथवा षष्ठे चन्द्रलग्नेश्वरो यदि ।
छिद्रनाथयुतौ मृत्युरिष्टश्चापि प्रवासिनः[3] ॥ ४८६ ॥
प्रश्ने पृष्ठोदये लग्ने क्रूरदृष्टे शुभे च्युतेः ।
कोण[4]केन्द्रगतैर्वापि प्रवासी स्यादुपद्रुतः ॥ ४८७ ॥
क्रूर[5]युक्ते क्षितौ मन्दः सौम्येक्षायोगवर्जितः ।
धर्मस्थस्तनुते व्याधिं प्रोषितस्यागमो भवेत् ॥ ४८८ ॥

लग्न और सप्तम स्थान के अङ्क यदि चतुर्थ स्थान के भी हों दूर मार्ग चल कर आए हुए पुरुष को घर में विश्राम कहना चाहिये ॥४८३॥

लग्नेश प्रकृतिस्थ रहें वा किसी अन्य राशि में जाने वाले हों अथवा मार्गी वा वक्री रहें वैसी ही स्थिति उस पथिक की होती ह ॥४८४॥

लग्न वा लग्नेश से यत्संख्यक स्थान में पापग्रह हों, मार्ग पर चलते हुए उस पथिक का अनिष्ट कहना चाहिये ॥४८५॥

चन्द्रमा और लग्नेश सप्तम अथवा अपने नीच वा षष्ठ स्थान में रहे और अष्टमेश से संयोग रहे तो उस प्रवासी मनुष्य की मृत्यु कहनी चाहिये ॥४८६॥

प्रश्नकाल म पृष्ठोदय राशि लग्न में हो, पाप ग्रहों की दृष्टि रहे, कोई भी शुभग्रह न रहे अथवा केन्द्र तथा त्रिकोण स्थान में शुभग्रहों से रहित हो तो पथिक को मार्ग में अनिष्ट कहना चाहिये ॥४८७॥

शनि धर्म स्थान मे हो और क्रूर ग्रहों से युक्त वा देखा जाय, शुभ ग्रह की दृष्टि अथवा योग न रहे तो वह पथिक रोगी होकर घर को लौट आवे ॥४८८॥

1. ये for चेत् ms. 2. दूराध्वनोऽथ for दूराध्वानास्त्व A. 3 प्रवासिनाम् for प्रवासिनः A. 4. कोणे for कोण ms. 5. क्रूरे for क्रूर ms.

लग्नाद्वा लग्ननाथाद्वा यत्संख्ये सौम्यखेचराः ।
मार्गे तत्रोदयो वाच्यः शकुनाश्चापि शोभनाः ॥ ४८९ ॥[1]
अष्टमे तरणौ मार्गे भयं वाच्यं कुजेऽपि वा ।
यावन्तोऽप्यष्टमे खेटाश्चौरास्तावन्त एव हि ॥ ४९० ॥
लग्ने धने तृतीये च सौम्ययुक्तेक्षितेऽपि च ।
तस्करोपद्रवौ[2] नैव वक्तव्यौ[3] मार्गचारिणाम् ॥ ४९१ ॥
यत्र गुरुर्भवेद्वो यत्र शुक्रो जलाश्रयः ।
प्रपातडागकूपादि वक्तव्यं गच्छतां पथि[4] ॥ ४९२ ॥
चन्द्रे शुक्रे नदीमार्गे राहुशन्योर्महद्भयम् ।
नृपगेहे गुरौ तुंगे निधिलाभोऽपि भूपतेः ॥ ४९३ ॥

लग्न से वा लग्नेश से जितनी संख्या पर शुभ ग्रह पड़े हों प्रश्न काल से उतने ही दिनों में उसका उदय होता है और शुभ शकुन भी होते हैं ॥४८९॥

अष्टम स्थान में यदि सूर्य तथा भौम हों तो मार्ग में भय कहना चाहिये, जितने संख्यक ग्रह अष्टम मे स्थित होवें उतने संख्यक चौर से उपद्रव हो ॥४९०॥

यदि लग्न द्वितीय और तृतीय में शुभ ग्रह का योग हो या शुभ ग्रह देखते हों तो पथिक को रास्ते में चौर तथा उपद्रव का भय नहीं होगा ॥४९१॥

जिसको प्रश्न काल में गुरु या शुक्र जलचर राशि में हो उसको रास्ते में जाते समय तालाब कूआं, इत्यादि जलाशय मिलें ॥४९२॥

यदि चन्द्र और शुक्र, जलचर राशि में हों तो नदी के मार्ग से ( अर्थात् नौका या पोत पर यात्रा करे ) जाय यदि राहु और शनि जलचर राशि में हो तो महान् भय कहना चाहिये, और यदि बृहस्पति उच्च का हो तो राजा के घर में हो तथा राजा से निधि का लाभ हो ॥४९३॥

1, शत्रुता० for शकुना० A. 2. पद्रवो for पद्रवौ A. 3. वक्तव्यो for वक्तव्यौ A, 4. यदि for पथि A. A[1].

राजगेहे भृगौ तुंगे द्रव्यलाभादि[1] गच्छतः ।
षष्ठे पुष्टे[2] गुरौ व्याधिरित्येवं मार्गचेष्टितम् ॥ ४९४ ॥
अष्टमे स्वगृहे सूर्ये शनिदृष्टेऽथवा युते ।
मंगले शीतगौ मार्गे शस्त्रैर्घातं तदादिशेत् ॥ ४९५ ॥
गुरौ लग्नेऽथवा शुक्र शत्रुतस्करसंकटे ।
न प्रहारो न वा हानिर्वक्तव्या मार्गचारिणाम् ॥ ४९६ ॥
सप्तमे शीतगौ शुक्रे मार्गेऽपि गच्छतां नृणाम् ।
स्त्रीसंभोगो भवेत् स्नेहान्मिथुनादिषु मूर्तितः[3] ॥ ४९७ ॥
नो विश्रामश्चरे लग्ने द्वौ विश्रामौ स्थिरात्मके ।
विश्रामत्रितयं प्रोक्तं द्विस्वभावे विचक्षणैः ॥ ४९८ ॥
वृषसिंहालिकुम्भेषु लग्नयातेषु गच्छतः ।
गमागमौ न वक्तव्यौ चरैरेवं द्वयं वदेत् ॥ ४९९ ॥

इति सप्तमस्थाने गमागमप्रकरणम् ।

---

यदि शुक्र उच्च का हो तो जाते समय राजा के घर से बहुत द्रव्यादि का लाभ हो, और यदि षष्ठ भाव में पुष्ट बृहस्पति हो तो रास्ते में व्याधि हो ॥४६४॥

यदि अष्टम भाव में सिंह का सूर्य हो और वह शनि से युत वा दृष्ट हो वा मंगल चन्द्रमा अष्टम में स्वगृही हों शनि से युत व दृष्ट हों तो रास्ते में उसका शस्त्र से घात हो ॥४६५॥

यदि बृहस्पति वा शुक्र लग्न में हों तो शत्रु और चौर से संकट होने पर भी उसको न तो प्रहार हो और हानि भी नहीं हो ॥४६६॥

सप्तम में चन्द्रमा और शुक्र हों तो रास्ता जाते हुये भी प्रेम पूर्वक मैथुनादि में स्त्री का सम्भोग हो ॥४६७॥

यदि प्रश्नकाल में चर लग्न हो तो रास्ते में विश्राम नहीं होता और स्थिर हो तो रास्ते में दो जगह, अगर द्विःस्वभाव हो तो तीन जगह विश्राम होता है ॥४६८॥

यदि स्थिर लग्न में यात्रा करें तो जाना आना नहीं होता और यदि चर लग्न में करें तो गमागम दोनों होते हैं ॥४६६॥

इति सप्तमस्थाने गमागमप्रकरणम्

---

1. ०लाभोऽपि for ०लाभादि A, A[1]. 2. पुत्रे for पुष्टे A. 3 मूर्तयः for मूर्तितः A, A[1].

युद्धप्रकरणं वक्ष्ये गमनाय महीभुजाम् ।
गुरूपदेशतो ज्ञात्वा देवं नत्वा जिनेश्वरम् ॥ ५०० ॥
शत्रुलग्नेश्वरौ क्रूरौ क्रूरौ वा लग्नसप्तपौ[1] ।
अन्योन्येक्षितयुक्तौ तु युद्धाय क्रूरवर्गगौ ॥५०१॥
युद्धकृद् द्यूनपः केन्द्रे[2] ग्रहो वक्री च केन्द्रगः ।
क्रूरयुक्तेक्षिते लग्ने क्रूरवर्गाधिकेऽपि[3] वा ॥५०२॥
मूर्तौ क्रूरे बुधे त्रिस्थे रवौ तुर्ये रणोदये ।
पौरनृपविनाशः स्यादमीषां नवमांशके ॥५०३॥
कुजः स्वोच्चं गतः केन्द्रे रविर्वापि निजोच्चगः ।
विरोधी सप्तमः केन्द्रे युद्धयोगो महानयम्[4] ॥५०४॥

अपने इष्ट जिनेश्वर देव को नमस्कार करके और गुरु का उपदेश जानकर राजाओं को जाने के लिये युद्ध प्रकरण कहता हूँ ॥५००॥

षष्ठेश और लग्नेश पाप हों अथवा लग्नेश, सप्तमेश पाप हों और पाप ग्रहों के वर्ग में हों और दोनों आपस में देखते हों तो युद्ध होता है ॥५०१॥

यदि सप्तमेश केन्द्र में हो या वक्री ग्रह केन्द्र में हो और पापग्रह लग्न में स्थित हो वा देखता हो और पापग्रहों की वर्गों की अधिकता हो तो युद्ध होता है ॥५०२॥

लग्न में पाप ग्रह हो, बुध तृतीय में हो और रवि चतुर्थ स्थान में हो और इन्हीं राशियों के नवांश युद्धकाल में लग्न हो तो उस नगर के राजा का नाश होता है ॥५०३॥

यदि मङ्गल उच्च का हो कर केन्द्र में हो और रवि उच्च का होकर शत्रु स्थान या सप्तम या और केन्द्रों में हो तो बहुत भारी युद्ध का योग होता है ॥५०४॥

1 सप्तमौ for ०सप्तपौ Bh. 2. केन्द्र for केन्द्रे A. 3. ०धिकोऽपि वा for ०धिकेऽपि वा A. 4. महानसौ for महानयम् A.

सक्रूरो वक्रितो वापि केन्द्रे युद्धाय मूर्तिपः ।
धनपोऽपि तथा चिन्त्यस्त्वेवं षष्ठगृहाधिपः ॥५०५॥
अर्कादग्रे चरे क्रूरे चन्द्रे वारिष्टगामिनि ।
युद्धं स्यात्सबलारब्धं महाक्रोधेन भूभुजाम् ॥५०६॥
रणाय प्रान्त्यगाः क्रूरा राहुकेतू[1] विशेषतः ।
अस्ते मूर्तौ ध्रुवं क्रूरै युद्धं वाच्यं बलद्वये[2] ॥५०७॥
स्थिरे मूर्तौ स्थिरांशे वा युद्धे नास्ति रणोदयः ।
[3]सग्रहाग्रहयोगेन युद्धायुद्धं विचारयेत् ॥५०८॥
शुभैर्मूर्तौ[4] शुभैरस्ते[5] शुभैः केन्द्रे[6] शुभेक्षिते ।
युद्धं न जायते क्षेमो भवेत्तत्र महीभृताम्[7] ॥५०९॥

लग्नेश पापग्रह से युक्त हो और वक्री होकर केन्द्र में हो तो युद्ध होता है। इस प्रकार सप्तमेश यदि पाप से सम्बन्ध करता हो और वक्री होकर केन्द्र में हो तो भी युद्ध होता है। इसी प्रकार षष्ठेश की स्थिति हो तो भी युद्ध होता है ॥५०५॥

सूर्य से आगे चर राशि में पाप ग्रह हो और चन्द्रमा अनिष्ट स्थान में स्थित हो तो राजाओं का बड़े क्रोध के साथ, बहुत जोर से युद्ध होता है ॥५०६॥

यदि द्वादश स्थान में पाप ग्रह हो तो युद्ध होता है और राहु, केतु हो तो विशेष युद्ध होता है और सप्तम में लग्न में पाप ग्रह हों तो निश्चय दोनों तरफ की सेनाओं में युद्ध होता है ॥५०७॥

यदि युद्ध काल में स्थिर राशि लग्न हो वा स्थिर राशि का नवमांश लग्न हो तो युद्ध नहीं होता। इस प्रकार ग्रहों के संयोग तथा वियोग से युद्ध होगा या नहीं उसका विचार करें ॥५०८॥

यदि शुभ ग्रह लग्न में हो और शुभ ग्रह सप्तम स्थान में हो और शुभग्रह केन्द्र में हो और इन स्थानों पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो इस योग में युद्ध नहीं होता किन्तु राजाओं का कल्याण होता है ॥५०९॥

1. ०केत्वविशेषतः for ०केतू विशेषतः A. 2, क्रूरे चन्द्रे वारिष्ट गामिनी for क्रूरै युद्धं वाच्यं बलद्वये ms. 3. सग्रहो for सग्रहा ms, 4. मूर्तेः for मूर्तौ A[1] 5. ०रस्तैः for स्ते A. 6. केन्द्रे for केन्द्रे ms. 7. तत्र क्षेमं भवति भूभृताम् for क्षेमो भवेत्तत्र महीभृताम्

द्रेष्काणा दण्डपाशास्त्रधारिणः समराय च ।
क्रूराक्रान्ता विशेषेण क्रूरवर्गगतास्तथा ॥५१०॥
अन्योन्यवर्गगाः क्रूरास्त्वन्योऽन्यक्रूरदर्शकाः ।
रौद्रं कुर्वन्ति संग्रामं शुभैः केन्द्रगतैर्नहि[1] ॥५११॥
मूर्तिगे क्रूरवर्गस्थे क्षीणे चन्द्रे च संगरः ।
क्रूरयुक्ते विशेषेण महायुद्धमुपप्लवः ॥५१२॥
न्यूनाधिकत्वमालोक्य क्रूरत्वसबलत्वयोः ।
ग्रहाणामादितस्तज्ज्ञैस्ततो युद्धस्य निर्णयः ॥५१३॥
तृतीयगृहमारभ्य भावषट्कं व्यवस्थितम् ।
नागराख्यं ततः षट्कं परं स्याद्यायिसंज्ञितम्[2] ॥५१४॥
नवमे गुरुशुक्रज्ञा जयदा नगरप्रभोः ।
भौमार्की भंगदौ सौम्याः खेंकर्षिस्था जयप्रदाः ॥५१५॥

---

यदि लग्न का द्रेष्काण पापग्रहों से आक्रान्त हो या पापग्रह के वर्ग में हो तो दण्ड, पाशादि अस्त्रधारियों का युद्ध होता है ॥५१०॥

यदि पापग्रह परस्पर एक दूसरे के वर्ग में हों और पाप ग्रहों की परस्पर दृष्टि हो, शुभ ग्रह केन्द्र में नहीं हों तो बहुत कठिन युद्ध होता है ॥५११॥

यदि लग्न में पाप ग्रह के वर्ग में क्षीण चन्द्रमा हो तो युद्ध होता है और वह पापग्रह से युक्त हो तो महायुद्ध होता है ॥५१२॥

ग्रहों के न्यूनत्व और अधिकत्व तथा क्रूरत्व और सबलत्व को पहले से देख कर तब उसको जानने वाले युद्ध का निर्णय करें ॥५१३॥

और तृतीय भाव से लेकर छः भाव तक नागराख्य अर्थात् नगर वालों का भाव कहलाता है उस के बल से नगर वालों का और दशम भाव से तृतीय पर्यन्त यायिसंज्ञक भाव कहलाता है उसके बलाबल से जय करने वालों का जय पराजय का विचार करें ॥५१४॥

यदि नवम भाव में बृहस्पति, शुक्र, और बुध हों तो उस नगर के राजा का जय होता है, और यदि नवम भाव में मंगल, शनि हों तो युद्ध में भंग होता है, और यदि शुभ ग्रह दशम, लग्न, और सप्तम में हो तो जय होता है ॥५१५॥

---

1. केन्द्रगतेन हि for केन्द्रगतैर्नहि A, A[1]. 2. परस्याऽयायिसंज्ञितम् for परं स्याद्यायिसंज्ञितम् ms.

रिष्फैकैकादशस्थाश्चेदेकः क्रूरग्रहो यदि ।
यायी तं नगरं हन्ति दुर्ग्राह्यमथ शोभनैः ॥५१६॥
लग्नतो यदि लाभस्थौ गुरुशुक्रौ रविबुधः ।
एक एव पुरेशस्य जयदो बरगो (?) ऽन्यथा ॥५१७॥
मूर्तेस्त्रिपञ्चषष्ठस्थाः[1] क्रूरा यायिजयावहाः ।
कर्मायव्ययलग्नस्था [2]यायिनोऽपि जयावहाः ॥५१८॥
कुंभकर्कटमीनालिलग्नतुर्येऽरिभंगदाः ।
मूर्तिद्यूनगतैः सौम्यैर्जयः स्थातुरुदाहृतः ॥५१९॥
लग्नेशद्यूनगे वश्यो गन्ता स्याद् व्यत्ययेऽपरः ।
यायी लग्नपतिश्चिन्त्यः स्थायी द्यूनपतिस्तथा ॥५२०॥

यदि द्वादश एकादश, और लग्न में एक पापग्रह हो तो जय करने वाले उस नगर को नष्ट कर देते हैं और यदि इन स्थानों में शुभ ग्रह हों तो वह इस नगर को ग्रहण भी नहीं कर सकते ॥५१६॥

यदि गुरु और शुक्र, लग्न से लाभ स्थान में हों और रवि, बुध प्रथम स्थान में हों तो उस नगर वालों का जय होता है, और वे यदि दुष्ट स्थान में स्थित हों तो अन्यथा अर्थात् जय नहीं होता है ॥५१७॥

यदि पापग्रह लग्न से तृतीय, पञ्चम, षष्ठ स्थान में, स्थित हो तो जय करने वालों का जय होता है और यदि दशम, एकादश व्यय और और लग्न में, पाप ग्रह हो तो यायी को जय होता है ॥५१८॥

यदि लग्न और चतुर्थ स्थान में कुंभ, कर्क, मीन, वृश्चिक राशि हो तो शत्रु का नाश होता है, और यदि लग्न, सप्तम में शुभ ग्रह हो तो स्थायी राजा का जय होता है ॥५१९॥

यदि लग्नेश सप्तम में हो तो यायी राजा स्थायी राजा के वशीभूत होते हैं, और यदि व्यत्यय अर्थात् सप्तमेश. लग्न में हो तो अन्यथा अर्थात् उस नगर के राजा यायी राजा के वशीभूत हो जाते हैं। यायी राजा के लिये लग्नेश का विचार करें और स्थायी के लिये सप्तमेश का विचार करें ॥५२०॥

1. मूर्तिस्त्रपञ्च० for मूर्तेस्त्रिपञ्च A. 2. स्थायि for यायि A., Bh.

सप्तराज्यपदायस्थाः सौम्यस्थायिजयप्रदाः[1] ।
शीर्षोदये शुभैर्युक्ते शुभदृष्टे रणे जयः ॥५२१॥
जयाय लग्नपो मूर्तौ प्रष्टुः परस्य वाऽस्तपः ।
घने [2]लग्नानुसारेण वक्री वक्रफलाश्रयः ॥५२२॥
लग्नलग्नपयोर्मध्ये राज्येशो[3] विजयप्रदः[4] ।
केन्द्राधिपस्तु युक्तो वा लग्नेशः केन्द्रगोऽपि वा ॥५२३॥
मन्दे भौमे च मूर्तिस्थे पुत्रे जीवे पदे रवौ ।
आये सौम्येऽथवा व्योम्नि प्रष्टर्विजयमादिशेत् ॥५२४॥
द्रव्यस्य विषयी दाता क्रूरे सप्तमभावगे ।
आकाशसंस्थिते सौम्ये यायी दत्त्वा धनं व्रजेत् ॥५२५॥
तुर्यगे ज्ञेऽष्टमे चन्द्रे शुक्रे च सप्तमे जयः ।
लग्नारिरन्ध्रगैः किं वा शुक्रजीवदिवाकरैः ॥५२६॥

यदि सप्तम, नवम, दशम, एकादश, स्थान में शुभ ग्रह हो तो स्थायी राजा का जय होता है । युद्ध काल में यदि शीर्षोदय लग्न हो और वह शुभ ग्रह से युक्त तथा देखा जाता हो तो जय होता है ॥५२१॥

और लग्नेश, लग्न में हो तो प्रश्न कर्त्ता का जय होता है और सप्तमेश यदि सप्तम में हो तो दूसरे का जय होता है, ऐसे लग्न के अनुसार इस का विचार करें और वक्री ग्रह हो तो विपरीत फल होता है ॥५२२॥

यदि राज्येश लग्न, और लग्नेश, दोनों के मध्य में हो तो प्रश्न कर्त्ता का विजय होता है, और लग्नेश, यदि केन्द्राधिप से युक्त हो वा केन्द्र में हो तो भी प्रश्न कर्त्ता का विजय होता है ॥५२३॥

और शनि, मंगल, लग्न में हो, बृहस्पति पञ्चम स्थान में हो, और रवि, पदस्थान में हो और शुभ ग्रह एकादश, या दशम में हो तो प्रश्न कर्त्ता का विजय होता है ॥५२४॥

यदि पापग्रह, सप्तम भाव में हो तो द्रव्य को देने वाला होता है । और यदि शुभ ग्रह, दशम भाव में स्थित हो तो यायी धन देकर चला जाय ॥५२५॥

यदि बुध, चतुर्थ स्थान में और चन्द्रमा अष्टम स्थान में हो और शुक्र सप्तम में हो, वा शुक्र, बृहस्पति, रवि, क्रम से लग्न, षष्ठ, अष्टम, भाव में हो तो जय होता है ॥५२६॥

1. For this line A, Bh read : सप्तराज्योदये सौम्याः स्थायिनो ।वजयप्रदाः 2 बला० for लग्ना A, A.[1]; Bh 3 लग्नशो Bh. 4. जयैषिणः Bh.

जयावाप्तिर्गुरौ[1] लाभे व्यत्ययः[2] सितवक्रयोः ।
अर्कार्किक्षितिजैस्त्रिस्थैः शुभैर्लग्नगतैर्जयः ॥५२७॥
कर्मण्यारे रवावाये[3] तृतीये रविपुत्रके ।
विधौ षष्ठे जयं प्रष्टुः शेषैर्मूर्तिगतैर्ग्रहैः ॥५२८॥
मूर्तौ जीवे जयः क्रूरे लाभे [4]वियति वा स्थिते ।
कुजार्क्योः[5] षष्ठयोर्लग्नेन्मूर्तौ[6] चन्द्रे व्यये जयः ॥५२९॥
लग्ने भंगः[7] कुजे मान्द्ये[8] तथा मन्दविलोकिते ।
द्युने वा निधने[9] चन्द्रे मूर्तौ सूर्ये पराजयः ॥५३०॥
कुजार्की भानुदृष्टौ चेद्राज्ञां भंगः मतस्तनौ ।
सुकृते पुत्रभावे च यमार्कारैस्तथा[10] भवेत् ॥५३१॥

---

यदि बृहस्पति. लाभ स्थान में हो तो जय की प्राप्ति होती है, और यदि शुक्र, मंगल, दोनों लाभ स्थान में हों तो पराजय होता है, और यदि रवि, शनि. मंगल, तृतीय में हों शुभग्रह लग्न में हों तो जय होता है ॥५२७॥

मंगल, यदि दशम भाव में हो, रवि एकादश में हो और शनि तृतीय में हो चन्द्रमा षष्ठ स्थान में हो, और शेष ग्रह लग्न में हो तो प्रश्न कर्त्ता का जय होता है ॥५२८॥

यदि बृहस्पति लग्न में हो तो जय होता है और पापग्रह एकादश में वा दशम में स्थित हो और मंगल. शनि षष्ठ स्थान में हो लग्नेश, लग्न में और चन्द्रमा व्यय स्थान में हो तो जय होता है ॥५२९॥

यदि लग्न में मंगल वा शनि हो तथा उन पर शनि की दृष्टि हो सप्तम वा अष्टम भाव में चन्द्रमा हो तथा सूर्य लग्न में हो तो स्थायी का पराजय होता है ॥५३०॥

यदि मंगल, शनि, लग्न में हो और उन पर सूर्य की दृष्टि हो तो राजाओं का भंग होता है, और नवम, पञ्चम, भाव में शनि, सूर्य, मंगल, हो तो उसी प्रकार राजाओं का भंग होता है ॥५३१॥

---

1 ०वाप्ते for ०वाप्ति० Bh. 2. वियत्य for व्यत्ययः A. वियत्या सितचक्रयो: Bh 3 रवावाव्ये Bh. 4 व्ययति for वियति Bh. 5. कुजार्को for कुजार्क्योः Bh. 6· लग्नान्मूर्तौ for लग्नोन्मूर्तौ Bh· 7 मंदः for भंगः Bh. 8 सेन्दोः for मान्द्ये A, A[1]. कुजौ मंदौ for कुजे मान्द्य Bh. 9. वाप for वा नि० ms 10. यमाकारे for यमार्कारै ms·

सभौमे निधने मन्दे भंगो मूर्तिगते रवौ ।
इन्दौ व्ययायमूर्तिस्थे ससूर्ये वा वदेद् वधम् ॥५३२॥
लग्नेशेऽभ्युदिते यायी युद्धे जयति तत्क्षणम् ।
उदिते सप्तमेशे च स्थायी जयति संगरे ॥५३३॥
द्वयोः संहितयोः[1] सन्धिर्जयो वा द्वितये भवेत् ।
लग्नेशेऽस्तमिते मृत्युर्यायिनः समरे[2] स्मृतः ॥५३४॥
अस्तपेऽस्तमिते स्थातुर्युद्धे मृत्युस्तु शत्रुतः[3] ।
लग्ने पुष्टे जयो यातः स्थातुरस्तपतौ जयः ॥५३५॥
यत्रोदिता ग्रहाः पक्षे जयस्तत्र ध्रुवो भवेत् ।
एवं बलाबलं ज्ञात्वा जयाजयविनिश्चयः ॥५३६॥
लाभगैरथवोत्कृष्टैर्लाभपैश्च बलोत्कटैः ।
शुभसंयोगबाहुल्ये वदेद्युद्धे महोदयम् ॥५३७॥

---

यदि मंगल, शनि, दोनों अष्टम स्थान में हों और रवि लग्न में हो तो राजाओं का भंग होता है और चन्द्रमा सूर्य के साथ यदि द्वादश, एकादश या लग्न में हो तो वध होता है ॥५३२॥

और लग्नेश, यदि उदित हो तो यायी का उसी समय युद्ध में जय होता है और सप्तमेश, यदि उदित हो तो युद्ध में स्थायी का जय होता है ॥५३३॥

यदि लग्नेश, सप्तमेश, दोनों साथ ही हों तो सन्धि होती है वा दोनों का जय होता है, और लग्नेश यदि अस्त हो तो युद्ध में यायी का मरण होता है ॥५३४॥

और सप्तमेश अस्त हो तो शत्रु से स्थायी को मृत्यु होती है, यदि लग्नेश पुष्ट हो तो यायी का जय होता है और सप्तमेश पुष्ट हो तो स्थायी का जय होता है ॥५३५॥

जिस पक्ष में ग्रह उदित हो उस पक्ष का अवश्य ही जय होता है, इस प्रकार बलाबल को देख कर जयाजय का निश्चय करें ॥५३६॥

उत्कृष्ट अर्थात् बलवान शुभग्रह यदि लाभ स्थान में हो और लाभेश बहुत बलवान हो और शुभग्रह का विशेष रूप से संयोग हो तो युद्ध में महान् उदय कहना चाहिये ॥५३७॥

---

1. रुदितयोः for संहितयोः A. A[1] Bh 2. संगरे for समरे A. 3 शस्त्रतः for शत्रुतः Bh.

अथवा प्रकारान्तरमाह।

सिंहादि मकरान्तं च भानुक्षेत्रमुदाहृतम्।
कुम्भादि कर्कपर्यन्तं चन्द्रक्षेत्रमुदीरितम् ॥५३८॥
सूर्ये चन्द्रे च सूर्याङ्गसंश्रिते जयकांक्षिणाम्।
यायिनां विजयो युद्धे स्थायिनां भङ्गमादिशेत् ॥५३९॥
सूर्ये चन्द्रे च चन्द्रर्क्षे संस्थिते युद्धवीरयोः।
यातुर्मृत्युस्तदा प्रोक्तः स्थायी जयति संगरे ॥५४०॥
सूर्ये सूर्यांगसंयुक्ते चन्द्रे चन्द्राङ्गमाश्रिते।
एवंयोगे भवेत्सन्धिर्युद्धं तस्य विपर्यये ॥५४१॥
कर्तर्यां यदि चन्द्रार्कौ संहारः सैन्ययोर्द्वयोः।
निकटे निकटं युद्धं दूरे दूरञ्च पृच्छके ॥५४२॥

---

अब प्रकारान्तर से कहते हैं

सिंह से, मकरपर्यन्त सूर्य का क्षेत्र है, और कुम्भ से कर्क पर्यन्त चन्द्रमा का क्षेत्र हैं, जैसे वृद्धों का वचन है—

कण्ठीरवं विक्रमिणां विलोक्य स्वीयं पदं तत्र चकार सूर्यः। मैत्र्या तदासन्नतया कुलीरे निजं बबन्धालयमेणलक्ष्मा: ॥१॥ अन्ये ग्रहा गृहयियासिषया क्रमेण शीतांशुतीग्ममहसोः सदनं समीयुः। प्राप्तक्रमेण ददतुर्भवनानि तौ तु तारा ग्रहा द्विभवनास्तत एव जाताः ॥२॥५३८॥

यदि सूर्य, और चन्द्रमा दोनों सूर्य के क्षेत्र में हों तो युद्ध मे यायी का जय होता है और स्थायी का भंग होता है ॥५३९॥

और सूर्य, चन्द्रमा, दोनों चन्द्रमा के क्षेत्र में हों तो दोनों तरफ के वीरों में यायी का मरण होता है और स्थायी का युद्ध में जय होता है ॥५४०॥

यदि सूर्य सूर्य क्षेत्र में हो और चन्द्रमा चन्द्र क्षेत्र में हों तो दोनों राजाओं की परस्पर सन्धि हो जाती है ॥५४१॥

और चन्द्रमा, सूर्य, कर्त्तरी में हों तो दोनों सैन्य का नाश होता है यदि दोनों सन्निधि में हों तो प्रश्नकर्त्ता से समीप में ही युद्ध कहना चाहिये और दूर हों तो दूर में युद्ध कहना चाहिये ॥५४२॥

लग्ने मार्तण्डमन्दौ चेद् दृष्टौ हि क्षितिसूनुना ।
ससौम्ये शीतगौ दृष्टे प्रष्टुः सेनापतेर्वधः ॥ ५४३ ॥
तुलायां पद्मिनीबन्धुस्त्रिंशांशे दशमे स्थितः ।
हन्ति राज्यं यथा लोभः समस्तगुणसञ्चितम्[1] ॥ ५४४ ॥
राहुकालाननं चक्रं विज्ञाय स्थापितग्रहम्[2] ।
जीवभावमृताभिख्ये बलं ज्ञात्वा रणं विशेत् ॥ ५४५ ॥
सिंहाद्येषु घटाद्येषु ज्ञात्वा ग्रहबलाधिकम् ।
स्थायियायिजयो वाच्यो युद्धप्रश्ने बलोत्कटात् ॥ ५४६ ॥
लग्ननाथे शुभैर्युक्ते शुक्रे लाभे शुभैर्युते ।
संग्रामे शस्त्रघातैस्तु मृत्युयोगे च जीवति ॥ ५४७ ॥
अनाथे क्रूरगे लग्ने लाभे क्रूरयुते हते[3] ।
भटानां शस्त्रघातैस्तु मार्यमाणोऽथ जीवति ॥ ५४८ ॥

यदि लग्न में सूर्य, और शनि, हों इन दोनों पर मंगल की दृष्टि हो, और शुभ ग्रहों के साथ चन्द्रमा पर, उसकी दृष्टि हो तो प्रश्नकर्त्ता के सेनापति का नाश होता है ॥५४३॥

यदि सूर्य तुला राशि में, दशम त्रिशांश में हो तो राज्य का नाश होता है, जैसे मनुष्य कितने भी गुणी हों उसमें एक लोभ जन्य दोष आ जाय तो सब गुणों को नष्ट कर देता है ॥५४४॥

और राहु कालानल चक्र को बनाकर उसमे ग्रहों को स्थापित करके उसमें जीवन, मरण इत्यादि भावों का बलाबल जान कर युद्ध में राजा को प्रवेश करना चाहिये ॥५४५॥

युद्ध के प्रश्न में सिंह से छः राशि तथा कुम्भ से छः राशियों में ग्रहों का बलाधिक्य देख कर स्थायी, यायी राजा को सेना की प्रबलता से जयाजय कहना चाहिये ॥५४६॥

यदि लग्नेश शुभ ग्रहों से युक्त हों और लाभ स्थान में शुभ ग्रह से युक्त शुक्र हो तो युद्ध में शस्त्रादि प्रहारों से मृत्यु योग आने पर बच जाते हैं ॥५४७॥

यदि लग्नेश के अतिरिक्त और पापग्रह लग्न में हो और लाभ स्थान पापग्रहों से युक्त तथा आहत हो तो भटों को शस्त्रादिक घात से मृत्युयोग आने पर भी बच जाते हैं ॥५४८॥

1 ०सञ्चयः for ०सञ्चितम् Bh. 2. स्थापिते गृहे for स्थापितगृहम् A, A¹ 3 क्रूरयुतेक्षिते Bh.

यदा मूर्तौ भवेद्राहुः[1] पुरा प्रष्टुस्तदा वदेत्[2] ।
शत्रुः शक्रोऽपि जेतव्यो बलपुष्टोऽपि पार्थिवः ॥ ५४९ ॥
कुम्भाद्येषु हि ये क्रूरास्ते शस्त्रैर्निहता घनैः ।
सिंहाद्येष्वपि ये क्रूरास्तेऽपि शस्त्रेण घातिताः ॥ ५५० ॥
क्रूरैरनुजभावे तु भ्रातावश्यं प्रणश्यति ।
चतुर्थे मातुलातङ्कः सुते नश्यति पुत्रकः ॥ ५५१ ॥
षष्ठेऽश्वः सप्तमे भार्या छिद्रे घातो निजेऽङ्गके ।
नवमे च गुरोर्घातो दशमे भूपतेर्वधः ॥ ५५२ ॥
यदि द्यूने भवेद्राहुस्तदा मृत्युर्द्विजात्मनः[3] ।
इति ग्रहबलं ज्ञात्वा युद्धं कार्यं नरेश्वरैः ॥ ५५३ ॥
यदा मूर्तौ भवेत्क्रूरो[4] युद्धप्रश्ने तदादिशेत् ।
अवश्यं मार्यते शत्रुः सबलोऽप्यबलात्मना ॥ ५५४ ॥

---

जब लग्न में राहु हो तो पहले प्रश्नकर्त्ता का इन्द्र के तुल्य बलवान् राजा भी शत्रु हो तो उसको भी जीत लेते हैं ॥५४९॥

कुम्भादि छः राशियों में जितने पापग्रह होते हैं उतने ही यायी की सेना आदि शस्त्रादि से आघात होते हैं, और ऐसे सिंहादि छः राशियों मे जितने पापग्रह होवें उतने ही स्थायी की सेना शस्त्रादि से आघात होते हैं ॥५५०॥

यदि तृतीय भाव में क्रूर ग्रह होवें तो भाई का अवश्य ही मरण होता है, और चतुर्थ में क्रूर ग्रह होवें तो मामा को आतङ्क होता है; यदि पञ्चम स्थान में पापग्रह हों तो पुत्र का नाश होता है ॥५५१॥

यदि षष्ठ स्थान मे पापग्रह हों तो घोड़ों का और सप्तम में पाप ग्रह हों तो स्त्री का नाश होता है, और अष्टम स्थान में यदि पापग्रह हों तो अपने शरीर में ही घात होता है, और नवम में हों तो गुरु का तथा दशम में पापग्रह हों तो राजा का ही नाश होता है ॥५५२॥

यदि सप्तम में राहु हो तो द्विजों का नाश होता है। इस प्रकार ग्रहों का विचार कर राजा लोग युद्ध करें ॥५५३॥

युद्ध के प्रश्न मे यदि लग्न में पापग्रह हो तो बहुत बलवान् भी शत्रु अबल जैसे मारे जाते हैं ॥५५४॥

---

1 राहुर्भवेन्मूर्तौ for मूर्तौ भवेद्राहुः 2. दिशेत् for वदेत A.
3. ०र्निजा० for ०र्द्विजा Bh. 4. क्रूरो for क्रूरौ Bh.

सप्तमे खेचराः सौम्या लक्ष्मीक्षेमविधायिनः ।
लग्नचक्रं नरं कृत्वा सर्वं घातादि चिन्तयेत् ॥ ५५५ ॥
मूर्तौ क्रूरग्रहः श्रेयान् श्रेयसी क्रूरदृग् नहि ।
शुभो न शोभनो मूर्तौ शुभदृष्टिस्तु शोभना ॥ ५५६ ॥
शनेर्घाते त्वचं मांसं रोमाणि च वपुष्मताम् ।
भौमघाते च रक्तौघं रविघातेऽस्थिभंजनम् ॥ ५५७ ॥
राहुघातेऽपि सप्तापि नश्यन्ति धातवः समम् ।
सौम्यग्रहैर्न घातोऽस्ति जीव्यते प्रत्युत स्वयम् ॥ ५५८ ॥
पूर्णिमाचक्रतो ज्ञात्वा वर्गचक्राच्च सद्बलम् ।
वर्णानां भेदतश्चापि ततो युद्धं समाचरेत् ॥ ५५९ ॥
द्यूने नाथनगे[1] चन्द्रे लग्नं याते दिवाकरे ।
विपर्ययो भवेत्तस्य त्रास[2]भंगवधानि च ॥ ५६० ॥

---

यदि युद्ध प्रश्न में सप्तम में सबल शुभग्रह हों तो धन के लिये कल्याण होता है, लग्न चक्र को नर में स्थापित करके सब घातादि का विचार करें ॥५५५॥

लग्न में यदि पाप ग्रह हों तो श्रेष्ठ है किन्तु पाप ग्रह की दृष्टि श्रेष्ठ नहीं होती है और लग्न में शुभ ग्रह श्रेष्ठ नहीं हैं किन्तु शुभ ग्रह की दृष्टि अच्छी होती है ॥५५६॥

यदि शनि का घात हो अर्थात् दृष्टि हो तो शरीरधारी की त्वचा, मांस, रोम का घात होता है। मंगल की दृष्टि हो तो रक्त समूह का घात होता है और रवि का हो तो हड्डी को नाश होता है ॥५५७॥

और राहु का घात होने से साथ ही सातों धातुओं का नाश होता है और शुभ ग्रहों से घात नहीं होता है प्रत्युत तत्तद्वस्तु स्वयं जीवित हो जाते हैं ॥५५८॥

पूर्णिमा चक्र से तथा वर्ग चक्र से ग्रहों का बलाबल जान कर, और वर्णों के भेद से भी सब जानकर युद्ध का आरम्भ करें ॥५५९॥

यदि सप्तम या अष्टम भाव में चन्द्रमा हो और लग्न में सूर्य हो तो विपरीत फल होता है तथा उसको त्रास, भंग, वध होता है ॥५६०॥

---

1 निधनगे for नाथनगे A, A[1], Bh, 2. नाश for त्रास A,

ये जानन्ति ग्रहान् सर्वान् होरामन्त्रबलानि च ।
तेषां जयो महायुद्धे वक्तव्यः पण्डितैः स्फुटम् ॥ ५६१ ॥
द्वितीया दशमी षष्ठी द्वादशी च कुला भृणु[1] ।
अकुला विषमाः प्रोक्ताः शेषाश्च तिथयः कुलाः ॥ ५६२ ॥
सूर्यश्चन्द्रो[2] गुरुः सौरिश्चत्वारस्त्वकुला ग्रहाः ।
भौमशुक्रौ कुलौ लोके बुधवारः कुलाकुलः ॥ ५६३ ॥
वारुणार्द्राभिजिन्मूलं कुलाकुलमुदाहृतम् ।
कुलानि मासनामानि शेषाण्यकुलभानि तु ॥ ५६४ ॥
अकुले धिष्ण्यवारे च तिथौ च यायिनो जयः ।
कुलाख्ये स्थायिनो वाच्याः सन्धिरेव कुलाकुले ॥ ५६५ ॥

जो सब ग्रहों को जानते हैं, और होरा तथा मन्त्र-बल को भी सम्यक् प्रकार से जानते हैं उन्हीं का महायुद्ध में जय होता है, ऐसे पण्डितों को स्पष्ट कहना चाहिये ॥५६१॥

द्वितीया, दशमी, षष्ठी, द्वादशी इत्यादि सम तिथि कुला कहलाती हैं और विषम तिथि प्रतिपद्, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी इत्यादि अकुला कहलाती हैं ॥५६२॥

सूर्य, चन्द्रमा, बृहस्पति, शनि ये चारों ग्रह अकुल कहलाते हैं, और मंगल, शुक्र ये दोनों कुल कहलाते हैं । और बुधवार कुलाकुल हैं ॥ ५६२ ॥

शतभिषा, आर्द्रा, अभिजित, मूल ये नक्षत्र कुलाकुल कहलाते हैं, और मासों के नाम के नक्षत्र अर्थात् चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढा, श्रवणा, पूर्वभाद्र, उत्तरभाद्र, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, मघा, पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी ये नक्षत्र कुल संज्ञक तथा शेष नक्षत्र अर्था भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु, अश्लेषा, हस्त, स्वाती, अनुराधा, धनिष्ठा, रेवती, नक्षत्र अकुल कहलाते हैं ॥५६४॥

अकुल नक्षत्र तिथि, दिन में यात्रा करें तो यायी का जय होता है और कुल संज्ञक, तिथि, नक्षत्र, दिन यात्रा करें तो स्थायी का जय होता है, और कुलाकुल, वार, तिथि, नक्षत्र में यात्रा करें तो दोनों राजाओं की आपस में सन्धि होती है ॥५६५॥

1 कुला for भृणु A A, Bh.. 2. सूर्यो विधुर for सूर्यश्चन्द्रो A.

वसुबाणरसा वेदाः सप्त चन्द्राग्निपक्षकाः ।
एवमङ्का नगैर्भक्ताः शेषमात्राधिको[1] जयः ॥ ५६६ ॥
गजाश्वीयस्य संवृद्धौ पार्थिवः स्याद्बलोत्कटः ।
अतो गजाश्वशस्त्राणां बलं वक्ष्यामि शास्त्रतः ॥ ५६७ ॥
गजाकारं लिखेच्चक्रं शुण्डाद्यवयवान्वितम् ।
अष्टाविंशतिभान्यत्र[2] दातव्यानि च सृष्टितः ॥ ५६८ ॥
मुखे शुण्डाग्रनेत्रे च श्रवः शीर्षाङ्घ्रिपुच्छके ।
द्वयं द्वयं क्रमाद्देयं[3] पृष्ठोदरे चतुश्चतुः ॥ ५६९ ॥
मातङ्ग[4]नामधिष्ण्यादि गण्यते वदनाद् बुधैः ।
यत्र धिष्ण्ये स्थितः सौरिर्वाच्यं तत्र शुभाशुभम् ॥ ५७० ॥
वक्त्रे शुण्डाग्रनेत्रे च सौरिभं यस्य मस्तके ।
युद्धकाले गजो यत्र जयस्तत्र न संशयः ॥ ५७१ ॥

आठ, पांच, छः, चार, सात, एक, तीन, दो इन अंकों में से प्रश्नकर्त्ता जिसका उच्चारण करे वहाँ तक अङ्क को संकलित करके सात का भाग दें शेष यदि उच्चारित अंक से ज्यादा हो तो जय होता है ॥५६६॥

हाथी, घोड़ा, इत्यादि की वृद्धि से राजा को बहुत बल होता है, इसलिये हाथी, घोड़ा, शस्त्र, इत्यादि का बल शास्त्र से कहता हूँ ॥५६७॥

हाथी के आकार शुण्डादि अवयवों के साथ एक चक्र लिखें उसमें अट्ठाईस नक्षत्रों को अश्विन्यादि के क्रम से स्थापित करें ॥५६८॥

उसका मुख, शुण्ड के अग्रभाग, और दो आंख, दो कान, मस्तक, दोनों चरण, पुच्छ, इन दस अंगों में दो दो नक्षत्र स्थापित करें, पृष्ठ और पेट इन दोनों स्थानों में चार चार नक्षत्र स्थापित करें इस प्रकार अट्ठाईस नक्षत्रों को स्थापित करके फल कहें ॥५६९॥

मातङ्ग के नाम नक्षत्र से उसके मुख आदि क्रम से पंडित गणना करें जिस नक्षत्र में उस समय शनि हो उस पर से शुभाशुभ फल कहें ॥५७०॥

जिस राजा को युद्ध काल में शनि का नक्षत्र गज चक्र में मुख शुण्डाग्र, दोनों नेत्र और मस्तक, इन पांच स्थानों में हो तो उस युद्ध में उनकी जहां पर हाथी हो वहां अवश्य ही विजय होती है ॥५७१॥

1. के for को A. 2 भावान्य for भान्य ms. 3. ०द्दे० for ०द्धे० Bh. 4. धाम for नाम Bh.

पृष्ठपादे[1] च पुच्छे च कर्णे जाते शनैश्चरे ।
मृत्युभङ्गो रणे तस्य हस्तिमल्लसमो यदि ॥ ५७२ ॥
निषिद्धाङ्गे च कर्णादौ रणकाले शनिः स्थितः ।
तत्काले पट्टबन्धेऽपि वर्जनीयो गजोत्तमः ॥ ५७३ ॥
जगत्या मण्डनं मेरुः शर्वर्या भूषणं शशी ।
नराणां मण्डनं विद्या सैन्यानां मण्डनं द्विपः ॥ ५७४ ॥
अश्वाकारं लिखेच्चक्रमश्विधिष्ण्यादितारकाः ।
वदनात्सृष्टिगाः स्थाप्या अष्टाविंशतिसंख्यकाः ॥ ५७५ ॥
वक्त्राक्षिकर्णशीर्षेषु पुच्छांघ्रौ युग्मसंख्यकाः ।
पञ्च पञ्चोदरे पृष्ठे सौरिर्यत्र फलं ततः ॥ ५७६ ॥
वक्त्राक्ष्युदरशीर्षस्थो यदा सौरिर्हयोत्तमे ।
शक्रतुल्यस्तदा शत्रुर्भज्यते युधि शब्दतः ॥ ५७७ ॥

और पृष्ठ, दोनों चरण, पुच्छ, दोनों कान इन स्थानों में शनि का नक्षत्र हो तो युद्ध में मल्ल समान भी हाथी हो तो भी मृत्यु और भंग होता है ॥५७२॥

यदि उस काल में निषिद्ध अंग या कर्णादि शनि में स्थित हो तो उस काल में बड़े बड़े हाथियों को भी छोड़ देना चाहिये ॥५७३॥

जैसे पृथ्वी का भूषण मेरु पर्वत है और रात्रि का भूषण चन्द्रमा है, और मनुष्य का भूषण विद्या है। उसी प्रकार सेनाओं का भूषण हाथी होता है ॥५७४॥

घोड़े के आकार एक चक्र लिखें जिसमें घोड़े के नाम नक्षत्र मुख आदि क्रम से स्थापित करें ॥५७५॥

मुख, दोनों नेत्र, दोनों कान, मस्तक, पुच्छ, दोनों चरण, इन नौ स्थानों में आश्विन्यादिक दो दो नक्षत्र स्थापित करें, और पांच पांच नक्षत्र पृष्ठ, और उदर में स्थापित करें उस में जहां पर शनि हो वैसा फल कहें ॥५७६॥

हय चक्र में जब शनि मुख, दोनों नेत्र, उदर, शीर्ष इन पांच स्थानों में हो तो युद्ध में इन्द्र तुल्य भी शत्रु शब्द से ही हट जाते हैं ॥५७७॥

1. पृष्ठे for पृष्ट A.

कर्णांघ्रिपृष्ठपुच्छस्थो गन्धर्वाङ्गेऽर्कनन्दने[1] ।
विभ्रमं भंगहानी च करोत्यश्वो महाहवे ॥ ५७८ ॥
चतुःकाष्ठास्थिता तस्य रिपवस्सन्ति शङ्किताः ।
अश्वाः सन्ति घना राज्ये यस्य क्षोण्यां सुलक्षणाः ॥ ५७९ ॥
नवभेदैर्लिखेच्चक्रं खड्गाकारं सधिष्ण्यकम् ।
वीरभादि समारभ्य त्रीणि त्रीणि च भान्यपि ॥ ५८० ॥
यव वक्त्रं ततो मुष्टिः पाली बन्धश्च धारकम् ।
खड्गं तीक्ष्णं क्रमाच्चेदं[2] नवभेदास्त्वमी स्मृताः ॥ ५८१ ॥
खड्गचक्रे यवादौ तु बन्धतः क्रूरखेचराः ।
रणे यत्र च दृश्यन्ते मृत्युस्तत्र भिया सह[3] ॥ ५८२ ॥
मिश्रैर्मिश्रफलं प्रोक्तं नवभेदग्रहैस्त्वसौ ।
अनेनैव प्रकारेण क्षुरीर्जयति भूपतिः[4] ॥ ५८३ ॥

जब शनि दोनों कान, दानों चरण, पृष्ठ, पुच्छ इन स्थानों में हो तो महायुद्ध में विभ्रम, भंग, हानि इत्यादि होता है ॥५७८॥

जिन राजाओं के इस पृथ्वी पर बहुत से सुन्दर घोड़े हैं उनके शत्रु सर्वदा सशंकित होकर शिविका इत्यादिक पर रहते हैं ॥५७९॥

नौ भेदों से युक्त नक्षत्रों के साथ खड्गाकार चक्र लिखें जिसमें वीरों के नक्षत्र के क्रम से तीन तीन नक्षत्र स्थापित करें ॥५८०॥

यव, वक्त्र, पाश, मुष्टि, पाली, बन्ध, धार, खड्ग, तीक्ष्ण इनके क्रम से नौ भेद होते हैं ॥५८१॥

खड्ग चक्र में यवादि में बन्ध से लेकर जहां पर पापग्रह हो वहां भय के साथ मरण भी कहना चाहिये ॥५८२॥

मिश्र ग्रह से मिश्र फल अर्थात् शुभ अशुभ दोनों होता है इन नौ भेद के छुरी चक्र में ग्रहों के सम्बन्ध से राजा जय प्राप्त करते हैं ॥५८३॥

1. The ms reads गन्धर्व्यंगर्कनन्दने which too gives no sense. 2 फलेऽथ च क्रमादेवं for तीक्ष्णं खड्गं क्रमाच्चेदं A. 3. After this verse A & A[1] add : यवादौ यत्र सौम्यास्तु तदा लाभो महान् भवेत् । खड्ग धारोदयेऽप्येवं क्रूरैर्जयति भूपतिः । 4. चक्रं स्मृतं बुधैः for जयति भूपतिः A.

इति खज्जूरीचक्रे

अथ धनुर्बाणचक्रम् ।

लिखेदादौ धनुश्चक्रे गुणबाणसमन्विते ।
चन्द्रनक्षत्रतस्त्रीणि त्रीणि भानि क्रमेण च ॥ ५८४ ॥
बाणचापगुणानां च मूलमध्येऽद्धगानि च ।
धिष्ण्येषु यत्र वीरर्क्षं वक्ष्ये तत्र फलाफलम्[1] ॥ ५८५ ॥
शरमूल्ये भवेन्मृत्युर्मध्ये रोगः फले जयः ।
क्रमाद्गुणधनुर्मध्ये वाच्यौ भंगधनक्षयौ ५८६ ॥
गुणचापोर्द्धदेशेषु सल्लाभारिजयौ[2] ध्रुवौ ।
गुणचापयोरधोऽधःस्थे चाधोर्मृत्युर्बलक्षयः[3] ॥५८७॥
पापग्रहयुते वीरधिष्ण्ये पुंसः पलायनम् ।
जयलाभौ शुभे योगे चापचक्रे विचारितौ ॥५८८॥

पहले धनुष चक्र में गुण बाण से युक्त चन्द्र नक्षत्र अर्थात् दिन नक्षत्र से तीन तीन नक्षत्र स्थापित करें ॥५८४॥

बाण, चाप, गुणों के मूल मध्य अन्त में दिन नक्षत्र से तीन तीन नक्षत्र लिखें उन में वीर का नक्षत्र जहां पर हो उससे शुभाशुभ फल समझें ॥५८५॥

बाण के मूल में वीर का नक्षत्र हो तो मृत्यु होती है, मध्य में हो तो रोग होता है ऊर्द्ध हो तो जय होता है, गुण के मध्य में हो तो भंग होता है और धनुष के मध्य में हो तो धन क्षय होता है ॥५८५॥

यदि गुण के ऊर्द्ध देश में वीर नक्षत्र हो तो लाभ और चाप के ऊर्द्ध देश में हो तो निश्चय ही शत्रु का जय होता है, गुण और चाप के नीचे भाग में हो तो क्रम से मृत्यु और सेना का क्षय होता है ॥५८७॥

वीर नक्षत्र यदि पाप ग्रह से युक्त हो तो वह भाग जाता है शुभ ग्रह का योग हो तो जय लाभ दोनों होते हैं ॥५८८॥

1. शुभाशुभम् for फलाफलम् A. 2. सलाभविजयौ for सल्लाभारिजयौ A. 3. For this line the ms reads बन्धौचविमहो मृत्युगणाधौ स्थापितौ स्मृतौ ।

शुभक्रूरसमायोगे शुभाधिक्ये फलं वदेत् ।
विचार्य जयसंसिद्धयै निश्चयः क्रियते स्फुटम् ॥५८९॥

इति धनुश्चक्रम् ।

कुन्ताकारं लिखेच्चक्रं तीक्ष्णदण्डं सनाविकम्[1] ।
युधि धिष्ण्यादिमालोक्य क्रमात्तत्र नव त्रिधा[2] ॥५९०॥
नवके यत्र राजर्क्षं वच्मि तत्र शुभाशुभम् ।
मृत्युस्तीक्ष्णे जयं दण्डे नाविके च समं रणम् ॥५९१॥

इति कुन्तचक्रम् ।

## अथ भूबलानि युद्धे कथ्यन्ते ।

चक्रे भास्करपत्राख्ये मेषाद्याः सव्यमार्गगाः[3] ।
वर्त्तमानोदयस्थानाद् भुक्तिः सार्द्धघटीद्वयम् ॥५९२॥
पृष्ठदक्षिणसंस्थेयं जयदा कथिता बुधैः ।
महामारीति विख्याता कथिता भटसागरे ॥५९३॥

---

और जहाँ पर शुभग्रह अशुभग्रह दोनों का योग हो उसमें शुभाधिक्य हो तो जयसिद्धि होती है ऐसे फल का विचार करें ॥५८९॥

इति धनुश्चक्रम्

कुन्ताकार नाविक से युक्त तीक्ष्ण दण्ड चक्र लिखें उसमें युद्ध काल में जो नक्षत्र हो उस नक्षत्र से नौ नौ नक्षत्र तीन जगह लिखें उस में राजा का नक्षत्र जहां पर हो उस पर से शुभाशुभ का ज्ञान करें। यदि तीक्ष्ण में राजा का नक्षत्र हो तो मृत्यु और दण्ड में हो तो जय और नाविक में हो तो युद्ध में समान होता है ॥५९०॥५९१॥

इति कुन्तचक्रम्

अथ भूबलानि युद्धे कथ्यन्ते ।

द्वादश पत्रों के चक्र में मेषादि सव्य क्रम से वर्त्तमान उदय स्थान से अढ़ाई अढ़ाई घटी की भुक्ति होती है ॥५९२॥

इसमें पृष्ठ और दक्षिण की संस्था जय देने वाली होती है इसको भट सागर में महामारी कहते हैं ॥५९३॥

---

1. सनायकम् for सनाविकम् Bh. 2 This line is missing in the ms. 3. सवमागता for सव्यमार्गगा: ms.

महामारीभूमिः ।

ईश्वरसमीरकोणपत्र[1] ह्वीन्द्रोत्तरापरयमेषु ।
वायोरक्षस्यनिलये[2] चैत्राद्या उदिताः[3] क्रमात् ॥५९४॥
घटीचतुष्कसंभुक्ते रुद्रभूमिरियं परा ।
पृष्ठस्था दक्षिणस्था[4] च जयदा युधि भूभुजा[5] ॥१९५॥

रुद्रभूमिः[6] ।

विलोमे पूर्वतो मासाश्चैत्राद्या दिग् चतुष्टये ।
प्रहारवाममार्गेण मासगेहाच्च गण्यते ॥५९६॥
क्षेत्रपाली महाभूमिर्भूबलानां बलोत्तमा ।
चातुरङ्गे कवौ केन्द्रे[7] जयदा पृष्टिदक्षिणा ॥५९७॥
यद्बलाबलयुक्तानि भूबलान्यपराण्यपि ।
एतद्बलवियुक्तानि वृथा स्युश्चतुरशीत्यपि[8] ॥५९८॥

इति क्षेत्रपाली ।

इति महामारी भूमिः

ईशान, वायु, नैऋ ति, अग्नि, इन कोणों में तथा पूर्व, उत्तर पश्चिम, दक्षिण इन दिशाओं में वायव्य कोण के क्रम से चैत्रादिक मास, चार चार घड़ी करके उदित रहते हैं इसको रुद्रभूमि कहते हैं। युद्ध में इस के पृष्ठ दक्षिण कर के यात्रा करें तो राजा को जय होता है ॥५९४-९५॥

इति रुद्रभूमिः

पूर्वादि चार दिशाओं में विलोम अर्थात पूर्व, उत्तर, पश्चिम, दक्षिण के क्रम से चैत्रादि मास गणना करें, इसको क्षेत्रपाली महाभूमि कहते हैं, यह भूबलों में उत्तम बल है यदि शुक्र केन्द्र में हो और क्षेत्र पाली में पृष्ठ दक्षिण क्रम से यात्रा करें, तो जय होता है ॥५९६-५९७॥

यदि भूबलों के बल से युक्त भी हो परन्तु क्षेत्रपालीबल में यदि बलहीन हो तो चतुरशीति सेना से युक्त रहने पर भी वृथा परिश्रम होता है ॥५९८॥

इति क्षेत्रपाली

1. ०ह्वोत्तरा for वह्नीन्द्रोत्तरा Bh. 2 ०रक्षयस्यनले for रक्षस्यनिलये Bh. 3. उदयः A. A[1] 4. दक्षिणाङ्गस्था for दक्षिणस्था A. 5. भूभुजाम for भूभुजा A., Bh. 6. इत्युडभूमिः for रुद्रभूमिः A. 7. कोष्ठे for केन्द्रे A. 8. ०श्चतुरत्यहपि for ०श्चतुरशीत्यपि ms. स्युश्चतुरसी त्यपि Bh.

यातिं यत्र वपुश्छाया सूर्ये वहति दक्षिणे ।
उत्थातव्यं स खड्गेन तत्र मुख्यमरिं प्रति ॥ ॥५९९॥
जयत्येत्र महोत्साहादिन्द्रतुल्यं क्षितीश्वरम् ।
संमुखो[1] गृह्यते चन्द्रः पृष्ठतस्तु[2] दिवाकरः ॥६००॥
योगिनीवामतः कार्या[3] दक्षिणेऽपि[4] विधुन्तदः ।
ईदृशैर्भूबलैर्वीरः पृथ्वीं जयति संगरे ॥६०१॥
[5]मर्त्यचक्रे नरं न्यस्य सर्वावयवसंयुतम् ।
येन चिन्तितमात्रेण क्रियते घातनिश्चयः ॥६०२॥
मुखैकं मस्तके त्रीणि पाणौ पादे चतुश्चतुः ।
हृदि पञ्च त्रिकं कण्ठेऽप्यभिजित्तत्र विन्यसेत् ॥६०३॥
कृत्वा घोऽय (?) मादौ तु मुखे मस्तकवामके ।
हस्तपादोदरे कण्ठे दक्षहस्तांघ्रि गणवे (?)[6] ॥६०४॥

दिन में सूर्य को दक्षिण करने पर जिधर शरीर की छाया जाय उधर ही मुख्य शत्रु के प्रति खड्ग लेकर उठना चाहिये ॥५९९॥

जो राजा चन्द्रमा को सम्मुख दक्षिण करके और सूर्य को पृष्ठ करके योगिनी को वाम कर युद्ध करने को जाते हैं वह इन्द्र तुल्य बड़े बलवान् राजा को भी जय करते हैं इस तरह भूबल से वीर युद्ध में पृथ्वी को जीत लेते हैं ॥६००–६०१॥

मूर्त्ति चक्र में मनुष्य को सब अवयवों के साथ लिख कर विचार करें जिस का विचार मात्र करने से घात का निश्चय होता है ॥६०२॥

मुख में एक मस्तक में तीन और दोनों हाथों में चार चार नक्षत्र. दोनों चरणों में चार चार, हृदय में पांच, कण्ठ में तीन नक्षत्र अभिजित् भी इस चक्र में न्यास करें ॥६०३॥

इस प्रकार मर्त्य चक्र का न्यास करके मुख, मस्तक, वाम हाथ, पाद, तथा उदर, कण्ठ, दक्षिण हस्त, पाद इत्यादि का विचार करें ॥६०४॥

1. संमुखे for संमुखो A. 2. पृष्ठस्तस्य for पृष्ठतस्तु A. 3. कुर्याद् for कार्या 4. दक्षिणो for दक्षिणे Bh. 5. मूर्ति for मर्त्य Bh. 6. This verse is missing in Bh.

यत्रांगे सूर्य [1]भौमार्किराहवो भगणे स्थिताः ।
घातस्तत्र ध्रुवं वाच्यश्चन्द्रयोगे विशेषतः ॥६०५॥
[2]ग्रहभुक्त्यानुमानेन नवांशकक्रमेण च ।
प्रहारो जायते तत्र वक्त्रे तु द्विगुणो भवेत् ॥६०६॥
निजभेऽप्यर्द्धघातश्च पादोनो मित्रगे ग्रहे ।
उदासीनो भवेत्सन्धिर्द्विगुणः शत्रुभावतः ॥६०७॥
एकोऽप्यनेकघातांश्च करोति त्यक्तभूबलः ।
भूबलस्थे भटे क्रूराः स्थिता घातं न कुर्वते ॥६०८॥
यत्र स्थिते ग्रहे घातो यत्र स्थिते ग्रहे नहि ।
तत्फलं कथयिष्यामि ग्रहभूमिवशात्पुनः ॥६०९॥
[3]क्रूराघातं न कुर्वन्ति पृष्टदक्षिणगा युधि ।
संमुखा वामगास्ते तु[4] योधाङ्गे घातकारकाः ॥६१०॥

जिस अंग में सूर्य, मंगल, शनि, राहु, भगण में स्थित हो उसमें निश्चय घात होता है और चन्द्रमा के योग से विशेष रूप से होता है ॥६०५॥

ग्रह की भुक्ति के अनुमान से और नवांश के क्रम से प्रहार होता है और मुख में हो तो द्विगुण होता है ॥६०६॥

यदि अपने घर में हो तो भी आधा घात होता है, मित्र के घर में हो तो पादोन घात होता है, और सम के घर में हो तो दोनों में सन्धि होती है और शत्रु के भाव में हो तो द्विगुण घात करता है ॥६०७॥

यदि एक भी ग्रह भूबल से रहित हो तो अनेक प्रकार का घात होता है और भूबल में यदि क्रूर ग्रह हो तो घात नहीं होता है ॥६०८॥

जहां पर ग्रह रहने से घात होता है जहां पर रहने से नही होता है उस फल को ग्रह भूमि के वश से मैं कहता हूँ ॥६०९॥

पृष्ठ और दक्षिण में पापग्रह हो तो युद्ध में घात नहीं होता है और योद्धा के अंग में सम्मुख और वाम में पाप ग्रह हो तो घात करता है ॥६१०॥

1. सौमा for भौमा ms 2. भावा for भुक्त्या A. 3. क्रूरे for क्रूरा Bh. 4. हस्ते for स्तेतु A.

दक्षिणाङ्गगताः क्रूराः सौम्या वामाङ्गमाश्रिताः[1] ।
शिरश्छेदे समुत्पन्ने रुण्डं धावति सम्मुखम् ॥६११॥
यस्य वामाङ्गगाः क्रूराः सौम्या यस्य च दक्षिणे[2]।
भङ्गस्तस्य रणे सम्यग् यदि शूरो महाभटः[3] ॥६१२॥

घातपरिज्ञानाय नरचक्रम् । इति सप्तमे युद्धप्रकरणं पञ्चमं सम्पूर्णम् ॥

युद्धानन्तरं सन्धिविग्रहप्रकरणमारभ्यते ।

लग्नेश[4]सुहृदः केन्द्रे सन्धिं[5] कुर्वन्ति शोभनाः ।
शत्रवो विग्रहं क्रूरा घनेशसुहृदो[6] यदि[7] ॥६१३॥
शुभवर्गगताः सन्धिं सौम्ययोगेक्षितास्तथा ।
मूर्तिसप्तेश्वरारित्वे षष्ठारित्वे च विग्रहः ॥६१४॥
आपोक्लिमे[8] (?) नृलग्नस्थः प्रीत्यैव लग्नगः[9] शुभः ।
द्विदेहस्थैर्ग्रहैः सौम्यैः सन्धिः पापैस्तु विग्रहः ॥६१५॥

यदि दक्षिण अंग में पाप ग्रह हो और शुभ ग्रह वाम अंग में हो तो उसका शिर कट जाने पर भी रुण्ड आगे को दौड़ता है ॥६११॥

जिस के वाम अंग में पाप ग्रह हो, और दक्षिण अङ्ग में शुभ ग्रह हो तो महा बलवान् योद्धा होने पर भी युद्ध में उसका भंग होता है ॥६१२॥

घातपरिज्ञानाय नरचक्रम् इति सप्तमे युद्धप्रकरणं पंचमं सम्पूर्णम् ॥ अथ युद्धानन्तरं सन्धिविग्रहप्रकरणं प्रारभ्यते ।

लग्नेश यदि केन्द्र में हो और शुभ ग्रहों के साथ मित्रता हो तो शत्रु सन्धि करे यदि सप्तमेश केन्द्र में हो और उसकी पापग्रहों के साथ मैत्री हो तो शत्रु विग्रह करता है ॥६१३॥

यदि लग्नेश, सप्तमेश दोनों शुभ ग्रह के वर्ग में हों और शुभग्रह से युक्त हों या देखे जाते हों तो दोनों में सन्धि होती है और लग्नेश, सप्तमेश को आपस में शत्रुता या षष्ठेश के साथ शत्रुता हो तो विग्रह होता है ॥६१४॥

आपोक्लिम में नर राशि हो, और शुभग्रह लग्न में हो तो प्रीति होती है, शुभग्रह यदि द्विःस्वभाव राशि में हो तो सन्धि होती है और पापग्रह यदि द्विः स्वभाव राशि में हो तो विग्रह होता है ॥६१५॥

1. संस्थिताः for ०माश्रिताः A. 2. दक्षिणे for दक्षिणे A. 3. महामदः for महाभटः A. 4. लग्नेशः for लग्नेश ms. 5. सद्धिं for सन्धिं ms. 6 ०शोऽसुहृदो for शसुहृदो ms. 7. यथा for यदि A. 8. आपोत्क्लेम Bh. 9. लग्नदः for लग्नगः A.

लग्ने बलाधिके सन्धावर्थी भवति लग्नपः ।
अबले सप्तमे सन्धौ दाता भवति सप्तपः ॥६१६॥
विलग्ने[1] दुर्बले सन्धौ दाता भवति लग्नपः ।
सप्तमे सबले तत्र वित्तार्थी सप्तमो भवेत् ॥६१७॥
द्वयोः समतया साम्यं न दाता नच याचकः ।
बलोत्कटे वपुर्नाथे हन्यते सप्तमेश्वरः ॥६१८॥
पुत्रगेहे तदीशे वा सन्धानं सबले ध्रुवम् ।
द्वयेऽपि[2] सबले सन्धिर्विग्रहो विबले भवेत् ॥६१९॥

इति सन्धिविग्रहप्रकरणम् ।

वृक्षा ज्ञेया ग्रहैः सर्वैः पंवृक्षाः पंग्रहैर्मताः ।
स्त्रीवृक्षाः स्त्रीग्रहैः प्रोक्ताः स्त्रीग्रहद्वितये लताः ॥६२०॥
रविशाकपलाशाद्या भौमाः कण्टकिनो मताः ।
क्षीरवृक्षा गुरावुक्ता बलाढ्ये बलिनः स्मृताः ॥६२१॥

---

लग्न बलवान् हो तो लग्नेश सन्धि में अर्थी होता है, और सप्तम भाव बलवान हो तो सप्तमेश सन्धि में दाता होता है ॥६१६॥

लग्न यदि निर्बल हो तो सन्धि में लग्नेश दाता होता है, और सप्तम भाव बलवान हो तो सन्धि में सप्तमेश, धनार्थी होता है ॥६१७॥

और लग्नेश सप्तमेश, में दोनों का बल समान हो तो समता होती है। यदि लग्नेश बल में अधिक हो तो सप्तमेश को मारते है ॥६१८॥

यदि पञ्चम भाव या उसके स्वामी बलवान् हों तो दोनों की सेनाओं में बड़े जोर की तैयारी होती है। यदि दोनों के पञ्चमेश बलवान् हो तो सन्धि होती है और निर्बल हो तो विग्रह होता है ॥६१९॥

इति विग्रहप्रकरणम् ॥

सब ग्रहों से वृक्ष का ज्ञान करें। पुरुष ग्रह से पुं वृक्ष और स्त्री ग्रह से स्त्रीवृक्ष, और दो स्त्रीग्रहों से लता का ज्ञान करें ॥६२०॥

रवि से शाक, पलाश इत्यादि वृक्ष, मंगल से कांटे वाले वृक्ष और बृहस्पति से दूध वाले वृक्ष का ज्ञान होता है। इन ग्रहों के बलवान होने से तत्तद्ग्रहों के वृक्ष भी बलवान होते हैं ॥६२१॥

---

1. लग्नगो for विलग्ने A. 2. भायेऽपि for द्वयेऽपि A., Bh.

बुधे च शमी[1] कर्कन्धू शुक्रे च कदली मता ।
चन्द्रे राजादनी वाच्या शनौ गुन्दीमुखाः पुनः ॥६२२॥
बलयुक्तैर्बलाढ्यास्तैर्वाबलैर्निष्फलाः पुनः[2] ।
भग्नाः शुष्काश्च ते सर्वे क्रूरयुक्तेक्षिता ग्रहैः ॥६२३॥
अष्टमे च स्थिते स्थाने त्वष्टमेशे बलोत्कटे ।
ऋतुकाले स्त्रियां नास्ति पुष्पं मूलत एव हि ॥६२४॥
पूर्णबलः शनिस्त्वेकः कालिमानं वदत्ययम् ।
ऋतौ सति च पुष्पस्य पृच्छालग्नेऽष्टमे स्थितः ॥६२५॥
राहुरेको जलाभं तु माञ्जिष्ठाजलसन्निभम् ।
बुधैर्विचित्रवर्णं तु कदाचित् कीदृशं पुनः ॥६२६॥
श्वेतच्छायं स्थितः शुक्रो भौमे रक्तं तु पुष्पकम् ।
कपिलं मर्कटं सूर्ये प्रवाहो धवलो विधौ ॥६२७॥

बुध से शमी और बदरी फल के पेड़, शुक्र से केला, चन्द्रमा से राजादनी और शनि से गुन्दी इत्यादिक वृक्षों के ज्ञान करें ॥६२२॥

यदि ये ग्रह बलवान् हों तो तत्तद्वृक्षों को बलवान् कहना चाहिये और जो ग्रह निर्बल हों उनके वृक्ष निर्बल, और फलरहित होते हैं। और यदि ग्रह क्रूर ग्रह से युक्त हों या देखे जाय तो उनके वृक्षों को शुष्क, टूटा हुआ समझे ॥६२३॥

स्त्री के ऋतुकाल में बलवान् अष्टमेश यदि अष्टम भाव में स्थित हो तो वह पुष्पवती नहीं होती ॥६२४॥

ऋतु होने पर प्रश्न काल में लग्न से अष्टम भाव में एक बलवान शनि हो तो कुछ काला उसका पुष्प होता है ॥६२५॥

और एक राहु वा एक गुरु हो तो जल के समान और बुध हो तो अनेक वर्ण का होता है ॥६२६॥

शुक्र हो तो श्वेत वर्ण के समान और मंगल हो तो रक्त वर्ण सा और सूर्य हो तो कपिल, और मर्कट जैसा वर्ण, और चन्द्रमा हो तो श्वेत वर्ण होता है ॥६२७॥

---

1 शनौ for शमी Bh. 2 बलयुद्धोक्तैर्बलाद्यास्तै for बलयुक्तैर्बलाढ्यास्तै A., बलयुक्तो बलाढ्यास्ते Bh.

ग्रहशून्येऽष्टमस्थाने स्वभावसहितं पुनः ।
मार्गं यान्त्याश्चले [1]खेटे पुष्पमायाति निश्चितम् ॥६२८॥
[2]भौमरवी सदोष्णौ तु शीतमन्ये ग्रहाः पुनः ।
कटिवातं वदेद्राहुः[3] पीडाकरमहर्निशम् ॥६२९॥
योनिस्थाने स्थिता एतेऽप्येवं कुर्वन्ति योषिताम् ।
ग्रहभावानुसारेण ज्ञेयं पुष्पं महात्मभिः ॥६३०॥

इदमष्टमस्थाने प्रथमपुष्पप्रकरणम् । अथ दोषप्रकरणं साम्नायं सानुभूतं चोच्यते ।

व्यये लग्नेऽष्टमे भानौ पीडकः क्षेत्रनायकः[4] ।
व्यये लग्ने रिपौ छिद्रे चन्द्रे ऽप्याकाशदेवता ॥६३१॥

---

यदि अष्टम स्थान में कोई ग्रह नहीं हो तो वह अपने वर्ण के समान ही होता है और अष्टम भाव में यदि चल ग्रह हो तो स्त्री को रास्ते में चलते चलते ही रजस्राव हो जाता है ॥६२८॥

मंगल, और रवि, सर्वदा उष्ण स्वभाव के ग्रह होते हैं और ग्रह शीत स्वभाव के होते हैं, राहु यदि अष्टम स्थान में हो तो कमर मे वात के उपद्रव से रात दिन पीड़ा करता है ॥६२९॥

ये ग्रह योनिस्थान में स्थित होवें तो स्त्रियों को इसी प्रकार करते हैं, ग्रहों के भावों के अनुसार पंडित पुष्पों को समझें ॥६३०॥

इदमष्टमस्थाने पुष्पप्रकरणम् ॥

अब दोषप्रकरण को कहते हैं ।

सूर्य यदि व्यय, लग्न, अष्टम, भावों में हो तो क्षेत्र पाल ही पीड़ा करने वाले होते हैं । और व्यय, लग्न, षष्ठ, अष्टम, इन भावों में चन्द्रमा हो तो आकाश देवता पीड़ा करते हैं ॥६३१॥

---

1. खेटे for खोट A., खेटाः Bh. 2. भौमवीरं for भौमरवी A. 3. वदेचन्द्रे for वदेद्राहुः A. 4. ०पालकः for ०नायकः A.

व्यये कर्मणि मृत्यौ च भौमे [1]शस्त्रहताश्च ये[2] ।
एवं योगे ग्रहैर्जाते शाकिनीगोत्रपीडिकाः ॥६३२॥

बुधो गुरुः सितः सौरी[3] राहुश्च व्ययसप्तगः[4] ।
अरण्योत्तमदेवौ च ततोऽपि जलमातरः ॥६३३॥

चण्डालाश्च क्रमाज्ज्ञेया दोषप्रश्ने हि पीडकाः ।
अष्टमे खेचरैः क्रूरैर्दोषश्च व्यभिचारकः[5] ॥६३४॥

केन्द्रत्रिकोणगे दोषस्त्वष्टमे द्वादशेऽपि वा ।
चन्द्रे देव्यो रवौ देवा भौमे स्वकुलगोत्रजाः ॥६३५॥

बुधे विचित्रजो दोषः किं वा कामणसम्भवः ।
गुरावामकृतो दोषः शुक्रे शुक्रकृतस्तथा ॥६३६॥

मंगल जिसके जन्म समय में व्यय, कर्म, और अष्टम, भाव में हो तो इस योग में वे जो शस्त्र से मरे हैं उनसे और शाकिनी के समूह से पीड़ित होते हैं ॥६३२॥

बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, ये व्यय, और सप्तम भाव में हों तो क्रम से अर्थात् बुध हो तो अरण्य देवता, गुरु हो तो उत्तम देवता, शुक्र हो तो जलमातृगण ॥६३३॥

शनि और राहु हो तो चाण्डालों से पीड़ित होते हैं ऐसे दोष का प्रश्न करने पर प्रश्न लग्न से इस स्थिति के अनुसार फल समझें और यदि अष्टम भाव में पापग्रह हो तो दोष का व्यभिचार होता है ॥६३४॥

केन्द्र, त्रिकोण में पापग्रह हो तो दोष होता है. वा अष्टम, द्वादश से भी दोष होता है । चन्द्रमा से देवी का उपद्रव, रवि में देवता का, मंगल में अपने वंशजों से कृत पीड़ा होती है ॥६३५॥

बुध से नाना प्रकार के दोष वा कर्म से उत्पन्न दोष होता है, गुरु से वामकृत दोष, शुक्र से वीर्यकृत दोष होता है ॥६३६॥

1. शत्रु० for शस्त्र A. 2. ०हता भयं for ०हताश्च ये Bh. 3. शौरी for सौरी A. 4. The ms reads सौरिराहू च व्ययसप्तमे for सौरी...सप्तगः 5. दोषाः स्युरभिचारकाः for दोषश्च व्यभिचारकः A., Bh.

तदा कार्मणजो दोष एकः क्रूरो यदाष्टमे ।
ग्रहद्वयं त्रयं वाच्यं तदाकाशपतिर्भवेत् ॥६३७॥
यदा चतुर्षु केन्द्रेषु क्रूरग्रहा भवन्ति चेत् ।
तदा दोषः सदा वाच्यो यावज्जीवं हि जन्मनाम् ॥६३८॥
उच्चगेहे भवेदुच्चो नीचे नीचस्तु पीडकः ।
निजक्षेत्रे बली वाच्यः शत्रुगेहेऽबलः पुनः ॥६३९॥
पादो दोषो भवेत्केन्द्रे त्रिकोणेंशद्वयं मतम् ।
छिद्रेंशत्रितयं दोषो विंशत्यंशा व्यये पुनः[1] ॥६४०॥
अस्तंगतोऽथवा नीचो ग्रहो दोषकरो यदि ।
तदा दोषफलं नास्ति दोषपृच्छा सुनिश्चितम् ॥६४१॥

अथ प्रकारान्तरमाह—

अष्टमे द्वादशे सूर्ये[2] दोषः स्यात्क्षेत्रपालजः ।
[3]यक्षोद्भवस्तथा सौरे गोत्रजायाश्च निर्दिशेत् ॥६४२॥

---

एक भी पापग्रह यदि अष्टम में हो तो कर्मसम्बन्धी दोष कहना चाहिये, यदि दो या तीन ग्रह हों तो आकाशजन्य उपद्रव होता है।।६३७।।

जिसको जन्मकाल में चारों केन्द्रों में पापग्रह हों तो उसको यावज्जीवन दोष कहना चाहिये ।।६३८।।

उच्च में हों तो अच्छा ही होता है, और नीच मे हों तो पीड़ा करने वाले होते हैं, अपने घर में ग्रह बलवान होते हैं, और शत्रु के घर में निर्बल होते हैं ।।६३९।।

केन्द्र में चतुर्थांश दोष होता है और त्रिकोण में दो भाग दोष होता है, अष्टम में तीन अंश दोष होता है और व्यय भाव बीस अंश दोष होता है ।।६४०।।

दोष प्रश्न में अस्त मे गत ग्रह या नीच स्थित ग्रह दोषकारक हो तो दोष का फल निश्चय नहीं होता ।।६४१।।

अब प्रकारान्तर से कहते हैं

अष्टम और द्वादश में सूर्य हो तो क्षेत्रपालकृत दोष होता है, इन स्थानों में शनि हो तो यक्षकृत तथा गोत्रजों से कृत दोष होता है ।।६४२।।

---

1. मतः for पुनः A. 2. भानौ for सूर्ये 3. रक्षो for यक्षो ms.

भौमे च शाकिनीदोषो दृष्टिदोषस्तथा[1] परैः[2] ।
बुधे च भूतजो दोषो जीवे पितृसमुद्भवः ॥६४३॥
दोषस्तु चन्द्रशुक्राभ्यामाकाशजलमात्रतः[3] ।
उदयात्प्रहरौ द्वौ तु चन्द्रे [4]यान्त्यास्तु गच्छति ॥६४४॥
व्यावृत्तदेव्या दोषोऽयं चन्द्रे पराह्णगे भवेत् ।
नीचे चन्द्रे भवेन्नीचो दुस्साध्यो बलिपूजितैः ॥६४५॥
सौम्ये चन्द्रे शुभा देवी क्रूरा कृष्णार्द्धपक्षके ।
छिद्रे भौमस्थिते [5]सूर्ये स्वोच्चभावेऽपि तिष्ठति ॥६४६॥
रक्तबन्धे ध्रुवं जाते नाभ्याधस्तापमादिशेत् ।
उष्णवातादिपीडा स्यात् स्वोच्चभावेऽपि तिष्ठति ॥६४७॥

मंगल अष्टम में हो तो शाकिनीकृत दोष होता है तथा बहुत आचार्यों के मत से दृष्टि दोष होता है, और बुध हो तो भूत कृत दोष, बृहस्पति हो तो पितृ-कृत दोष होता है ॥६४३॥

यदि चन्द्रमा, शुक्र अष्टम मे हों तो आकाश और जलकृत दोष होता है, उदय से दो पहर के अन्दर चन्द्रमा यदि अष्टम में हो तो वायु कृत दोष होता है ॥६४४॥

और दो प्रहर के बाद चन्द्रमा अष्टम में हो तो व्यावृत्त देवी के कोप से दोष होता है, यदि चन्द्रमा नीच में हो तो नीच होता है बलि पूजा से भी दुःसाध्य होता है ॥६४५॥

शुक्लपक्ष के चन्द्रमा शुभ कारक होते हैं और कृष्णपक्ष के चन्द्रमा क्रूर होते हैं । यदि मंगल अष्टम में हो सूर्य उच्च का होने पर भी रक्तबन्ध में नाभी के नीचे ताप होता है और गर्मी तथा वात इत्यादिक पीड़ा होती है, उच्च में रहने पर भी ये पीड़ा होती है ॥६४६-४४७॥

1. The portion beginning with ०स्तथा परैः and ending with परस्तोत्रे is missing in A A[1]. 2. परः for परैः Bh. 3 ०काशे जलमात्रतः Bh. 4 वान्त्या for यान्त्या Bh. 5. तुर्ये for सूर्ये Bh.

रक्तबन्धे ध्रुवं जाते क्षेत्रपालानुभावतः ।
दिनान्ताः सर्वलग्नेषु षट् त्रिकेऽष्टादशे स्थिताः ॥६४८॥
उदये मध्यसन्ध्यायां क्षेत्रपालाः पृथक् पृथक् ।
अतिचारे[1] देवी गृह्णाति बालकं जवात् ॥ ६४९ ॥
स्थिरग्रहे स्थिरा ज्ञेया जलराशौ जलाश्रयाः ।
स्थिरे राशौ स्थलदेव्यश्चर[2]राशौ नरो ध्रुवम् ॥ ६५० ॥
स्त्रीराशौ युवतीदोषः क्रूरक्रूरग्रहे पुनः ।
गोत्रदेव्या भवेद्दोषः शुक्रे वृषतुलाश्रिते ॥ ६५१ ॥
स्वपक्षे गोत्रजो दोषः परक्षेत्रे[3] परो मतः ।
शत्रुक्षेत्रे भवेच्छत्रुर्मित्रे स्वजनसम्भवः ।

---

क्षेत्रपालों के अनुभाव से दिनान्त में सब भावों में रहते हैं और उदय, मध्य सन्ध्या में क्षेत्रपाल पृथक्-पृथक् छठे, तीसरे, आठवें, दसवें भावों में क्रम से रहते हैं, इन स्थानों में यदि अतिचारी ग्रह हों तो देवी बालक को हठात् ग्रहण कर लेती है ॥६४८-६४९॥

स्थिर राशि में हो तो स्थिर जाने और जल राशि में जलाश्रय में और स्थिर राशि में स्थल देवी का दोष, चर राशि में नर का दोष जाने ॥६५०॥

स्त्री राशि में स्त्रीकृत दोष, और पाप गृहों में पाप कृत दोष जाने यदि शुक्र वृष, तुला, में हो तो अपने गोत्र के देवी का उपद्रव जानना चाहिये ॥६५१॥

इस प्रकार अपने घर में हो तो स्वगोत्रकृत, और परक्षेत्र में हो तो परकृतदोष, शत्रु क्षेत्र में होने से शत्रुकृत, तथा मित्रक्षेत्र में हो तो स्वकीयबन्धुवर्गकृत, और उदासीन घर में हो तो उदासीन आदमी कृत दोष होता है ऐसा ही इसका निर्णय करें ॥६५२॥

---

1. Two syllables are wanting in ms. Bh. supplies गृहे । 2. नर for स्थिर Bh. 3. The mss A, A[1] begin from here.

उदासीनेप्युदासीनस्त्वेवं दोषस्य निर्णयः ॥ ६५२ ॥

इत्यष्टमस्थाने दोषप्रकरणम् ।

अथ जीवितमृत्युप्रकरणम् ।

लग्नेशोऽभ्युदितो लग्ने मृत्युपोऽस्तंगतः पुमान् ।
मृत्युप्रश्ने नरैर्वाच्यं रोगग्रस्तोऽपि जीवति ॥ ६५३ ॥

लग्नेशोऽभ्युदितः प्रश्ने लाभेशोऽपि शुभेक्षितः[1] ।
अस्तंगतेऽष्टमाधीशे शस्त्राविद्धोऽपि जीवति ॥ ६५४ ॥

लग्नेशोऽभ्युदितः प्रश्नेऽभ्युदितो मृत्युपो बली[2] ।
षष्ठे वा छिद्रभावे वा चन्द्रे च म्रियते नरः ॥ ६५५ ॥
षष्ठे चन्द्रे व्यये क्रूरे सद्योऽपि म्रियते नरः ।
चन्द्रेऽष्टमे धने क्रूरः सद्यो मृत्युः सतां मतः ॥ ६५६ ॥
लग्ने रवौ द्युने चन्द्रे सद्यो रोगः किलोदितः ।

---

अब जीवित मृत्यु प्रकरण कहते हैं।

यदि मृत्यु प्रश्न में लग्नेश अभ्युदित होकर लग्न में और अष्टमेश, अस्त हो तो रोग ग्रस्त भी मनुष्य जीता है ॥६५३॥

प्रश्न काल में लग्नेश, अभ्युदित हो, लाभेश शुभ ग्रहों से देखे जाते हों, और अष्टमेश अस्त हो तो मनुष्य शस्त्र से आघात होने पर भी जीता है ॥६५४॥

प्रश्न काल में लग्नेश अभ्युदित हो और बलवान् अष्टमेश अभ्यु- दित होकर षष्ठ वा अष्टम में और चन्द्रमा भी इन दोनों भावों में हो तो मनुष्य मर जाता है ॥६५५॥

षष्ठ भाव में चन्द्रमा और व्यय में पाप ग्रह हो तो तभी मर जाता है, और चन्द्रमा अष्टम में हो, धन भाव में पाप ग्रह हो तो भी सद्यः मर जाता है ॥६५६॥

---

1. शुभोदितः for शुभेक्षितः A[1]. 2. For this line A[1]. reads लग्नेशोऽभ्युदितः प्रश्नेऽभ्युदितो मृत्युपो बली ।

लग्ने चन्द्रे द्युने भानुः सद्यो मृत्युरसंशयम्[1] ॥ ६५७ ॥

मेषलग्नोदये प्राप्ते[2] वृश्चिकांशे त्वलीश्वरे ।

मेषेश[3]चन्द्रसंयुक्ते तदा मृत्युः क्षणाद्भवेत् ॥ ६५८ ॥

लग्नपो मृत्युपश्चापि मृत्यौ स्यातामुभौ यदि ।

स्थितौ द्रेष्काण एकस्मिन् तदा मृत्युर्भवेदिह ॥ ६५९ ॥

लग्नपो मृत्युपश्चापि चन्द्रयुक्तौ बलोत्कटौ ।

द्वाविंशतितमे त्र्यंशे तदा मृत्युर्भवेत्पुनः ॥ ६६० ॥

यथा स्वामिनि गेहं स्वं याति चौरैर्न मुच्यते[4] ।

तथा लग्नं स्वके नाथे पश्यति म्रियते पुनः ॥ ६६१ ॥

यथा गेहपतिः स्वामी यात्येव पुरतो ध्रुवम् ।

तथा लग्नस्थिते नाथे जीवत्येव न संशयः ॥ ६६२ ॥

लग्न में रवि हो और सप्तम में चन्द्रमा हो तो बहुत शीघ्र रोग का उदय होता है, और लग्न मे चन्द्रमा, सप्तम मे रवि हो तो निश्चय सद्यः मर जाता है ॥६५७॥

प्रश्न काल मे मेष लग्न हो और वृश्चिक का स्वामी ( मंगल ) वृश्चिक के नवमांश मे हो और मंगल, चन्द्रमा से युक्त हो तो उसी क्षण उसकी मृत्यु होती है ॥६५८ ॥

लग्नेश और अष्टमेश दोनों मृत्यु भाव मे एक ही द्रेष्काण मे हों तो शीघ्र मृत्यु हो जाती है ॥६५९॥

लग्नेश, और अष्टमेश दोनों बलवान् होकर चन्द्रमा से युक्त हों, और वे दोनों जिस किसी राशि मे बाईसवें त्रिंशांश मे गत हों तो मृत्यु होती है ॥६६० ॥

जैसे अपने स्वामी के घर में गया हुआ चोर नहीं छूटता वैसे जिसको प्रश्न काल मे लग्नेश लग्न को देखे वह मर जाता है ॥६६१॥

जैसे घर के मालिक अपने ग्राम को अवश्य जाते हैं वैसे लग्नेश यदि लग्न में हो तो अवश्य ही जीते हैं इस में संशय नहीं ॥६६२॥

1. ०र्भवेदयम् for ०रसंशयम् A. 2. प्रश्ने for प्राप्ते Bh. 3. मेषांश for मेषेश Bh. 4. मुच्यते for मुच्यते Bh.

बंधनं मरणं नौश्च फलेन सदृशं त्रयम् ।
म्रियते येन योगेन तेन योगेन मुच्यते ॥ ६६३ ॥
लग्नतुर्यसुधीहर्षलाभेशाः सततोदिताः ।
दैवादपि न मृत्युः स्याद्रोगाद्वा शस्त्रसंकटात् ॥ ६६४ ॥
जीवितमृत्युपृच्छायां लग्ने शुक्रो बली यदि
जीवत्येवं तदावश्यं शस्त्रैर्विद्धोऽपि मानवः ॥ ६६५ ॥
यदि पृच्छति मन्दोऽयं जीविष्यत्यथवा नहि ।
लग्नेशश्चेत्तदोदेति जीवत्येव तदा ध्रुवम् ॥ ६६६ ॥
नन्दा षट् कृत्तिका भौमे भद्राश्लेषा बुधे सिते ।
धनिष्ठादिषट्कं रिक्ता मघामनुजया गुरौ ॥ ६६७ ॥
भरण्यां च शनौ वारे पूर्णा स्याद्दैवयोगतः ।
उत्पद्यते यदा रोगो म्रियते प्रेतयोगतः[1] ॥ ६६८ ॥

इति छिद्रे जीवितमृत्यु प्रकरणम् ॥

---

मृत्यु, बन्धन, नौका का आगमनादि ये तीनों फल में समान हैं, रोग प्रश्न में जिस योग से मरता है, बन्धन प्रश्न मे उस योग से छूटता है । नौका प्रश्न में नौका कुशल पूर्वक आती है ॥६६३

लग्नेश, चतुर्थेश, पञ्चमेश, हर्षेश, लाभेश ये सदोदित हों तो उस को दैव से, या रोग से, या शस्त्रादि संकटों से भी मृत्यु नहीं होती ॥६६४॥

जीवन, मरण के प्रश्न मे लग्न मे यदि बलवान् शुक्र हो तो शस्त्र से विद्ध भी मनुष्य अवश्य जीता है ॥ ६६५ ॥

यदि पूछे कि यह रोगी जीवेगा या नहीं उस मे लग्नेश यदि उदित हो तो अवश्य जीवेगा ऐसा कहना चाहिये ॥६६६॥

यदि मंगल दिन नन्दा ( १ । ६ । ११ ) तिथि और कृत्तिका से छः नक्षत्र हों, बुध और शुक्र दिन भद्रा ( २ । ७ । १२ ) तिथि अश्लेषा नक्षत्र, बृहस्पति बार धनिष्ठादि छः नक्षत्र रिक्ता और मघा, (४ । ९ । १४) तिथि हो ॥ ६६७ ॥

और शनिवार दैवयोग से भरणी नक्षत्र, और पूर्णा ( ५।१०।१५ ) तिथि हो जाय, तिथि नक्षत्र विशिष्ट इन दिनों में यदि रोग उत्पन्न हो तो प्रेत के योग से मनुष्य मर जाते हैं ॥६६८॥

---

1. प्रेतगोऽपि सः for प्रेतयोगतः Bh.

अथ छिद्रे प्रवहणप्रकरणम्[1]

कुशलागमनं पूर्वं लाभोऽपि[2] व्यवहारतः ।
बुडनं वपनं चाथो नावि प्रश्नचतुष्टयी[3] ॥ ६६९ ॥
लग्नं पश्यति लग्नेशः छिद्रं छिद्रेश्वरो यदि ।
न बुडति तदा पोतो लाभो भवति चिन्तितः[4] ॥ ६७० ॥
लग्नपश्छिद्रपश्चापि सप्तमे यदि तिष्ठतः ।
तदा प्रवहणप्रश्ने ध्रुवं वापनिका[5] भवेत् ॥ ६७१ ॥
अस्तं गतोऽपि लग्नेशो लग्ने तुर्ये तथाष्टमे ।
क्रूरास्तिष्ठन्ति पृच्छायां म्रियते[6] पोतपस्तदा[7] ॥ ६७२ ॥
विलग्नं नैव लग्नेशश्छिद्रं छिद्रपतिर्न च ॥
पश्यतो[8] यदि पृच्छासु तदासौ बुडति[9] ध्रुवम् ॥ ६७३ ॥

---

नौका पर गमन करने वालों का चार प्रश्न होता है, पहला कुशलागमन, दूसरा व्यवहार में लाभ, तीसरा पोत का बुड़ना, चौथा वपन अर्थात् वायु आदि से इधर उधर घूमते रहना ॥६६९॥

लग्नेश, यदि लग्न को देखें और अष्टमेश, अष्टम भाव को देखें तो पोत नहीं बूडती है और व्यवहार से लाभ होता है ॥६७०॥

लग्नेश, अष्टमेश, यदि सप्तम में हो तो प्रवहण के प्रश्न में अवश्य ही नौका भ्रमण कर रही है ऐसा कहना चाहिये ॥६७१॥

लग्नेश अस्त हो और पाप ग्रह लग्न, चतुर्थ, अष्टम, में हो तो पोत के मालिक अवश्य ही मर जाते है ॥६७२॥

प्रश्न काल में लग्नेश यदि लग्न को नहीं देखे और अष्टमेश, अष्टम स्थान को नहीं देखे तो पोत अवश्य ही बूड़ती है ॥६७३॥

---

1. पृच्छा for प्रवहण A, A[1]. 2. लाभे च for लाभोऽपि Bh. 3. चतुष्टयम् for चतुष्टयी A. 4. चिन्तत: for चिन्तित: Bh. 5. वापनिकां वदेत for वापनिका भवेत् A. 6. मृत्यु: for म्रियते A. 7. पोतपते for पोतप० A. 8 पश्यति for पश्यतो Bh. 9. नौमज्जनं for सौ बुडति A.

यदा छिद्रेशलग्नेशौ नीचे वा शत्रुवेश्मनि ।
नीचगौ नवमस्थौ चेत् लाभो न व्यवहारतः ।। ६७४ ।।
लग्नं पश्यति लग्नेशः छिद्रे भवति वाग्पतिः ।
व्यवहाराद् घनो लाभस्तरी प्रश्ने सतां मतः ।। ६७५ ।।
बलयुक्तो हि लग्नेशः छिद्रयुक्ते च भार्गवे ।
अक्राध्यासिते तत्राऽसंख्यो लाभो जलोद्भवः ।। ६७६ ।।
अष्टमे चन्द्रसंयुक्ते पृच्छालग्ने बलोत्कटे ।
परदेशीयवस्तुभ्यो लाभो भवति निश्चितः ।। ६७७ ।।
उच्चेऽष्टमे शुभैर्युक्ते मूललग्ने बलाश्रिते ।
परदेशीयवस्तूनां लाभः शतगुणो भवेत् ।। ६७८ ।।

इति प्रवहणप्रकरणं चतुर्थं सम्पूर्णम् ।

[1] बेडाप्रश्ने तनुर्वक्रं पद्वानं तुर्यकं स्मृतम् ।
सप्तशत्रुसुते लग्नं सुकाणमस्तभागगम् ।। ६७९ ।।

---

जब अष्टमेश और लग्नेश नीच में हों वा शत्रु के घर में हों वा दोनों नीच स्थित होकर नवम स्थान में हों तो व्यवहार से लाभ नहीं होता है ।।६७४।।

लग्नेश यदि लग्न को देखें और गुरु अष्टम स्थान में हो तो नौका के प्रश्न में व्यवहार से बहुत धन लाभ होता है ।।६७५।।

यदि लग्नेश बलवान् हो और शुक्र अष्टम स्थान में हो शुभग्रहों से सम्बन्ध हो तो जल से बहुत लाभ हो ।।६७६।।

प्रश्न लग्न में बलवान् चन्द्रमा अष्टम स्थान में हो तो परदेशीय वस्तु के व्यवहार से निश्चय लाभ होता है ।।६७७।।

शुभग्रह उच्च का होकर अष्टम भाव में हो, और लग्न बलवान् हो तो परदेशीय वस्तुओं का सौगुणा लाभ होता है ।।६७८।।

इति प्रवहणप्रकरणं चतुर्थं सम्पूर्णम्

बेड़ा प्रश्न में लग्न को वक्र, चौथा को पद्वान, सातवां, छठां, पांचवां, लग्न को सुकाण ।।६७९।।

---

1. The portion beginning with बेडा and ending with इति प्रवहणपद्धतिस्ताजिकाभिप्राये is missing in A,

दशमं कूपकं ख्यातं तदेव पञ्जरं मतम् ।
मध्ये मौलिक्यजङ्घायां बध्यन्ते जिनकाष्ठकम् ॥ ६८० ॥
तत्रैव बध्यते कूपः सङ्गः पोतस्ततो भवेत् ।
परवाणाग्रसंलग्नो हारिणीदोर उच्यते ॥ ६८१ ॥
कुवारं छिद्रसंज्ञं च नवमं पुष्पसंज्ञकम् ।
आयुरायुरिति ज्ञेयं द्वादशमन्त्यनामकम् ॥ ६८२ ॥
पुण्याये सबले लाभाष्टमे दुष्टधनागमः ।
यत्र क्रूराः क्षयस्तत्र सौम्या यत्र शुभं ततः ॥ ६८३ ॥
इति प्रवहणपद्धतिस्ताजिकाभिप्राये ।
आदित्याद्यैर्बलिभिर्भवन्ति पुंसां यथाक्रमं दीक्षाः ।
तापसाय[1]कपालिसौगतभगवद्यतिचरकजैनानाम् ॥ ६८४ ॥
यावन्तो बलिनः खेटाः प्रव्रज्या तावतामपि ।
एकभवे[2]ऽपि चैकस्य तावद्वेलाव्रतं भवेत् ॥ ६८५ ॥

---

दशवां को कूपक, तथा पञ्जर कल्पना करें, मध्य में मौलिक्य जंघा मे जिनकाष्ठ को बांधते हैं ॥६८०॥

उस में पोत को बांधते हैं तब कूप से संग होता है पर बाणाग्र में लगा हुआ हारिणीदोर कहलाता है ॥६८१॥

आठवां कुवार तथा नवमां पुष्प संज्ञक, आयु स्थान को आयु, और द्वादश को अन्त्य कल्पना करके फल का विचार करें ॥६८२॥

यदि बलवान ग्रह नवम एकादश भाव में हो तो धन का लाभ होता है और अष्टम, एकादश में हो तो दुष्ट से धन का लाभ होता है जहां पर पाप ग्रह हो वहां क्षय होता है और शुभग्रह जहां पर हो वहां शुभ होता हैं ॥६८३॥

सूर्यादि ग्रह बलवान् हो तो क्रम से मनुष्य दीक्षा, तापस, कपाली, मोक्ष, भगवान् यति, चरक, जैन, इन पक्षों को अवलम्बन करने वाले होते हैं ॥६८४॥

जितने बलवान् ग्रह प्रव्रज्यायोग कारक होते हैं उन के बल से फल का विचार करें। यदि एक ग्रह भी प्रव्रज्यायोग कारक हो तो उसी एक पक्ष का व्रत धारण करने वाला होता है ॥६८५॥

---

1. तापस for तापसाय Bh. 2. एकभावे for एकभवे Bh.

प्रव्रज्येशे विनष्टे तु व्रतं त्यजति मानवः ।
दीक्षेशे राहुयुक्ते तु व्रतगन्धोऽपि नो भवेत् ॥ ६८६ ॥

सबले सौम्यदृष्टे तु गुरुभक्तिर्दृढा मता ।
नीचेऽत्र क्रूरदृष्टे तु व्रतेन सह नश्यति ॥ ६८७ ॥

जन्मराशिपतिर्मन्दैर्दृष्टः शेषैर्न वीक्षितः ।
अबलो यस्य संजातो रोगाद्दीक्षां दधाति सः ॥ ६८८ ॥

सौरिर्हीनाङ्गजन्मेशः[1] केन्द्रे पश्यति सद्बलम् ।
यस्य स पुण्यसंत्यक्ता[2] भोज्यार्थी कुरुते व्रतम् ॥ ६८९ ॥

चन्द्रं शुभांशकस्थं बलिनं स्वोच्चस्थितं तथा शेषान्[3] ।
पश्यति बलिनि शनौ स्याज्जगदीशो दीक्षितः शान्तः ॥ ६९० ॥

एकगेहगतैः सर्वैर्जन्मेशो यत्र वीक्षितः ।

---

यदि प्रव्रज्या योगकारक नष्ट बल का हो तो मनुष्य अपने व्रत को त्याग कर देते हैं और वही दीक्षेश यदि राहु से युक्त हो तो मनुष्य को व्रत का स्पर्श भी नहीं रहता है ॥६८६॥

यदि प्रव्रज्या योग कारक सबल हों और शुभ ग्रहों से देखे जाते हों तो दृढ़ गुरु की भक्ति करने वाले होते हैं और वह यदि नीच में हो पाप ग्रहों से देखे जाते हों तो व्रत के साथ ही नष्ट हो जाते हैं ॥६८७॥

जिस का जन्म राशीश शनि से देखा जाय और शेष ग्रह उसको न देखें तो वह अबल हो जाता है इस लिये वह मनुष्य रोग के कारण दीक्षा को ग्रहण करते हैं ॥६८८॥

जिसको जन्म लग्नेश से रहित केन्द्र को बलवान् शनि देखे वह पुण्य से त्यक्त होकर केवल भोजन के लिये व्रत को धारण करता है ॥६८९॥

जिस को जन्म काल में उच्च का बलवान् चन्द्रमा शुभ ग्रहों के अंश में स्थित हो उसको और शेष ग्रहों को भी बलवान् शनि यदि देखे तो वह भगवान का मन्त्र ग्रहण करता है और शान्त भी होता है ॥६९०॥

---

1. जन्माङ्गहीनेशः for हीनाङ्गजन्मेशः A. A[1]. 2. ०त्यक्तो for ०त्यक्ता A, A[1], Bh. 3. शेषात् Bh.

तस्यावश्यं भवेद्दीक्षा त्वेवमुक्तं पुरातनैः ॥ ६९१ ॥

प्रकटितमुनियोगे राजयोगो यदि स्या-
दशुभफलविपाकं कर्म प्रोन्मूल्य पश्चात् ।
जनयति पृथिवीशं दीक्षितं साधुशीलं
प्रणतनृपशिरोभि घृष्टपादारविन्दम् ॥ ६९२ ॥

भाग्यग्रहोऽथ मूर्तौ स्यान्मूर्तिपो भाग्यवेश्मनि ।
दीक्षायोगो भवेदेको भाग्ये भाग्यग्रहो[1] यदि ॥ ६९३ ॥
लग्ने मूर्तिपतिर्जातो दीक्षायोगः परो भवेत् ।
विलग्नं लग्नपः पश्येद् गुरुं च गुरुपो यदि ॥ ६९४ ॥
दीक्षायोगो भवेदन्यो लग्ननाथो [2]रुस्तथा ।
गुरुनाथो विलग्नं चेद्दीक्षायोगश्चतुर्थकः ॥ ६९५ ॥

---

जिस का जन्म लग्नेश, एक राशि में स्थित सब ग्रहों से देखा जाय तो उस को अवश्य ही दीक्षा होगी ऐसा प्राचीनाचार्यों का मत है ॥६९१॥

इस प्रसिद्ध मुनि के योग में यदि राज योग भी हो जाय तो अशुभ फल के विपाक को हटा कर पीछे वे दीक्षित और साधुशील होकर राजा अर्थात् किसी बड़े स्थान के महन्त होते हैं और उनके चरणारविन्द नम्र राजाओं के शिर मुकुट से सेवित होते हैं ॥६९२॥

जिस का जन्म में भाग्येश लग्न मे हो, और लग्नेश भाग्य में हो तो एक दीक्षा योग हुआ ॥६९३॥

भाग्येश भाग्य में हों, और लग्नेश लग्न में हो तो द्वितीय दीक्षा योग हुआ, यदि लग्नेश लग्न को देखे और भाग्येश, भाग्य को देखे तो ॥६९४॥

तृतीय दीक्षा योग हुआ और यदि लग्नेश नवम भाव को देखे। नवमेश लग्न को देखे तो चतुर्थ दीक्षा योग हुआ ॥६९५॥

---

1. ग्रहौ for ग्रहो A. 2. गुरुं शुभम् for गुरुस्तथा A, A[1]

चतुःप्रभृतिभिः खेटै रेकगृहसमाश्रितैः ।

प्रव्रज्या जायते जन्तो रबलैर्भक्तिरेव हि ॥ ६९६ ॥

धत्ते धर्मे[1] धर्मभावमादित्ये कुरुते नहि ।

बुधशुक्रद्वये तत्र शाक्तो[2]ऽयं बुध्यते विधिः ॥ ६९७ ॥

भौमे धर्मस्थिते पीडां प्रजानां कुरुते घनाम् ।

राहौ तत्र स्थिते कान्तामस्पर्शां रूपशालिनीम् ॥ ६९८ ॥

धर्मश्रद्धां नवा धत्ते पापकर्म करोति च ।

शनियुक्ते स्थिते राहावर्धधर्मं करोति च ॥ ६९९ ॥

शनौ तत्र स्थिते जैनं मार्गमाश्रयतेऽखिलम् ।

रवौ राहौ च भौमे च ब्रह्महत्यां करिष्यति ॥ ७०० ॥

तुंगे शुभेक्षिते धर्मे स्वामियुक्ते बलाधिके ।

राजा भवति पुण्याढ्यो वर्णाश्रमविधौ गुरुः ॥ ७०१ ॥

---

चार प्रभृति के अर्थात् चार पांच इत्यादिक ग्रह यदि एक राशि में हों प्रव्रज्यायोग होता है, निर्बल ग्रह हों तो भक्तिमात्र होता है ॥६९६॥

धर्म स्थान में धर्म भाव का धारण करता है और सूर्य हो तो वह नहीं करता है और बुध शुक्र हो चन्द्रमा भी हो तो शाक्त होता है ॥६९७॥

धर्म स्थान में यदि मंगल हो तो वह प्रजाओं को बहुत पीड़ा करता है, यदि उस स्थान में राहु हो तो वह बहुत सुन्दरी स्त्री का अंग स्पर्श भी नहीं करता ॥६९८॥

और वह धर्म पर श्रद्धा भी नहीं करता है और पाप कर्म करता है, और शनि से युक्त राहु उस स्थान में हो तो आधा धर्म करता है ॥६९९॥

यदि उस स्थान में शनि हो तो जैन का ही मार्ग अवलम्बन करता है, और उस स्थान में यदि रवि, राहु मंगल, हो तो वह ब्रह्म हत्या करेगा ॥७००॥

यदि धर्मेश उच्च का बलवान् होकर धर्म स्थान में हो और शुभ ग्रहों से देखा जाता हो तो वे बड़े पुण्यवान् राजा होते हैं और वर्णाश्रम में श्रेष्ठ कहलाते हैं ॥७०१॥

---

1. भावे for धर्मे A. 2. शाक्रे for शाक्ते A, A[1].

सितयुक्ते शनौ तुंगे गुरुयुक्ते[1] विलोकिते ।
जायते धार्मिको राजा राजपूज्यो गुरुश्च वा ॥ ७०२ ॥
क्रियते केवलादर्शो दीक्षासिद्धिप्रकाशकः[2] ।
श्रीमद्देवेन्द्रशिष्येण श्रीहेमप्रभसूरिणा ॥ ७०३ ॥

इति भाग्यभवने प्रव्रज्याप्रकरणम् ॥

अथ दशमे पदप्रकरणम् ।

हर्षावस्थे[3] नभोनाथे तुङ्गादिस्थे शुभेक्षिते ।
चित्ते[4] केन्द्रत्रिकोणस्थे राज्यादिपदलब्धयः ॥ ७०४ ॥
मूर्तिपत्युच्चनाथेन स्वोच्चादिस्थेन वीक्षितः ।
ददात्येव पदावाप्तिं लग्ने लग्नेश्वरो यदि ॥ ७०५ ॥

---

यदि उच्च का शनि शुक्र से वा बृहस्पति से युक्त हो वा देखा जाय तो वह धार्मिक राजा होता है, वा राजपूज्य गुरु होता है ॥७०२॥

श्रीमान् देवेन्द्र के शिष्य हेमप्रभसूरि ने इस त्रैलोक्य प्रकाश नाम के ग्रन्थ में दीक्षासिद्धि के प्रकाश करने वाले केवल आदर्श को किया ॥७०३॥

इति भाग्यभवने प्रव्रज्याप्रकरणम्

अथ दशमे पदप्रकरणम्

दशमेश उच्चादि में स्थित होकर हर्षस्थान में हो और शुभ ग्रहों से देखा जाता हो और धनेश, केन्द्र, त्रिकोण में हो तो राज्यादि पद का लाभ होता है ॥७०४॥

अष्टमेश, यदि अपने उच्च के स्वामी से और स्वोच्च स्थित ग्रह से देखा जाता हो इन योग में यदि लग्नेश, लग्न में हो तो पद की प्राप्ति होती है ॥७०५॥

---

1. युक्ता for युक्ते A. 2. ०र्शस्त्रैलोक्यस्य for ०र्शोदीक्षासिद्धि A. 3. हर्षावस्थानभोनाथे for हर्षावस्थे नभोनाथे ms. 4. वित्ते for चित्ते Bh.

स्थिरलग्ने पदावाप्तिः सौम्यस्वामियुतेक्षिते ।
तदोदिते च राज्येशे राज्यं भवति भूभुजाम् ॥ ७०६ ॥
इत्थमेव पदावाप्तिः सा त्वल्पा किन्तु वृश्चिके ।
स्थिरं पदं स्थिरैः प्रोक्तं द्व्यङ्गैश्चापि शुभस्थितैः ॥ ७०७ ॥
क्रूरयोगे च वेधे च[1] भवत्येव पदच्युतिः ।
चतुःपञ्चभिरुच्चादिकेन्द्रकोणगतैर्ग्रहैः ।
वाञ्छितैव पदावाप्तिर्देशवंशानुसारतः ॥ ७०८ ॥
सेनाधिपत्ययोगैश्च दुर्धराशुनफादिभिः ।
पदावाप्तिर्भवत्येव नच स्वल्पा विपर्यये ॥ ७०९ ॥
स्वोच्चं तनुः शुभः स्वोच्चात्पश्यत्युच्चपदार्पकः ।
द्व्याद्युच्चादिकेन्द्रादिस्थितदृष्टोदितस्तथा ॥ ७१० ॥

जन्म काल में स्थिर लग्न हो और वह अपने स्वामी तथा शुभ ग्रहों से युक्त तथा दृष्ट हो उस समय यदि राज्येश उदित हो तो राजाओं को राज्य होना है ॥७०६॥

इस प्रकार पद की प्राप्ति होती है यदि वृश्चिक लग्न हो तो अल्प रूप से पद की प्राप्ति होती है स्थिर राशि लग्न हो तो स्थिर पद होता है, द्विस्वभाव राशि हो और शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो भी स्थिर पद होता है ॥७०७॥

यदि क्रूर ग्रहों का योग हो वा वेध हो तो पद की च्युति होती है ।

चार पांच ग्रह उच्चादि अर्थात उच्च, स्वगृह, मित्रादि उत्तम स्थानों में तथा केन्द्र, त्रिकोण, में हों तो अपनी इच्छानुकूल, कुल देश के अनुसार पद की प्राप्ति होती है ॥ ७०८ ॥

दुर्धरा, सुनफादि सेनाधिपत्य योग से पद की प्राप्ति होती है विपरीत होने पर नहीं होती ॥ ७०९ ॥

शुभ ग्रह लग्न में उच्च का हो और स्वोच्च स्थित शुभग्रहों से दृष्ट हो तो उच्च पद को देने वाला होता है एवं द्व्यादि ग्रह उच्चादि अर्थात् उच्च, वर्गोत्तम, स्वगृही, मित्रगृही, इत्यादि होकर केन्द्र त्रिकोण में स्थित हो और इसी तरह का बलवान् ग्रह से दृष्ट हो और उदित हो तो उच्च पद को देता है ॥ ७१० ॥

1. क्रूरवेधे च योगेशे for क्रूरयोगे च वेधे च A, A[1].

तुंगस्थो मूर्तिगः खेटः शेषैराद्यत्रिकोणगैः।
आकस्मिका पदावाप्तिरेवं स्तोका स्वगेहगैः ॥ ७११ ॥
प्रभुमेनं करोमीति प्रश्ने क्रूरग्रहो[1] यदि ।
छिद्रे द्युने धने च स्याद्विनाशो वाञ्छितः प्रभो ॥ ७१२ ॥
वर्गोत्तमैः शुभैर्युक्ते शीर्षोदयस्वभावके ।
उच्चांशे स्वगृहांशे वा पदप्राप्तिर्न दुर्लभा ॥ ७१३ ॥
अन्योन्यधामगोलोकौ लग्नाधिपपदेश्वरौ ।
खे च चन्द्रनभोनाथे मूर्तीशाः स्युः पदार्पकाः ॥ ७१४ ॥
पदेशश्चेत्पदं पश्येत् पदं[2] तदा स्थिरात्मकम् ।
[3]मध्यपेशशुभे राज्यं पदभ्रंशो हि पापगे[4] ॥ ७१५ ॥
मुथसिले नभोनाथे तत्र च सूर्यमिश्रिते ।
मकचूले महायोगे राज्यं भवति तत्क्षणात्[5] ॥ ७१६ ॥

---

लग्न स्थित ग्रह उच्च का हो और शेष ग्रह पञ्चम में हो तो आकस्मिक पद की प्राप्ति होती है, यदि वे ग्रह अपने घर के हों तो छोटे पद की प्राप्ति होती है ॥ ७११ ॥

इसको मालिक बनायेंगे ऐसा प्रश्न करने पर यदि पाप ग्रह, अष्टम, सप्तम, द्वितीय, में हों तो उसकी इच्छासिद्धि नहीं होती ॥७१२॥

शुभग्रह अपने वर्गोत्तम में हों, शीर्षोदय राशि लग्न हो और वे ग्रह उच्चांश में या स्वगृही के अंश में हों तो पद की प्राप्ति दुर्लभ नहीं है ॥ ७१३ ॥

लग्नेश पद स्थान में हो पदेश लग्न मे हो और चन्द्रमा, दशमेश लग्नेश ये दशम भाव में हों तो पद को देने वाले होते हैं ॥ ७१४ ॥

पदेश यदि पद स्थान को देखे तो स्थिर पद कहना चाहिये। पदेश यदि शुभयुक्त हो तो राज्य होता है, पाप राशी में हो तो पद भ्रंश होता है ॥ ७१५ ॥

यदि दशमेश मुथशिल करता हो उस में सूर्य भी हो इस प्रकार मकचूल महायोग मे उसी क्षण राज्य होता है ॥ ७१६ ॥

---

1. ०ग्रहौ for ग्रहो A. 2. पदे for पदं ms. 3 मध्यमांश for मध्यपेश Bh. 4. भ्रंशः समापगैः for भ्रंशो हि पापगे Bh. 5. भूभुजाम् for तत्क्षणात् A.

उच्चयुक्तेषु केन्द्रेषु किंवा दृष्ट्युतेषु च[1] ।
मकचूले महायोगे राज्यं भवति भूभुजाम् ॥ ७१७ ॥
उदयाद्दशमं स्थानं मुख्यस्वामिप्रकाशकम् ।
ततश्च दशमं गेहं प्रतिहस्तः प्रकाशकृत् ॥ ७१८ ॥

इति मध्यताजिके पदप्रकरणं सम्पूर्णम् ।

दुष्कालकालज्ञानार्थं कौतुकार्थं च जन्मिनाम् ।
दृष्टि[2]प्रकरणं वक्ष्ये नत्वा देवं जिनेश्वरम् ॥ ७१९ ॥
केन्द्रे च जलराशिस्थे सौम्यपक्षे सिते ध्रुवम् ।
मूर्त च जलराशिस्थे चन्द्रे वा स्याद्बहूदकम् ॥ ७२० ॥
लग्नाद् द्विके त्रिके वापि[3] जलराशिर्यदा भवेत् ।
जलखेटस्तु तत्रैव जलपातस्तदा ध्रुवम् ॥ ७२१ ॥

---

सब ग्रह उच्च के होकर केन्द्र में हों अथवा उच्च स्थित ग्रहों की दृष्टि से युक्त हों तो मकचूल महायोग में राजाओं को राज्य होता है ॥७१७॥

लग्न से दशम स्थान मुख्य स्वामी का प्रकाश करने वाला होता है। और उस से दशम स्थान प्रतिहस्त को प्रकाश करने वाला होता है ॥ ७१८ ॥

इति मध्यताजिके पदप्रकरणम्

अपने इष्ट जिनेश्वर देव को नमस्कार कर दुष्काल काल अर्थात् जिस समय वर्षा नहीं होने से अकाल कहलाता है उस समय के ज्ञान के लिये और शरीर धारियों के आनन्द के लिए वृष्टि प्रकरण को कहते हैं ॥ ७१९ ॥

जलचर राशि केन्द्र में हो, उस में शुभ ग्रह स्थित हो, शुक्ल पक्ष में बहुत जल होता है वा ज । राशि लग्न हो उस में चन्द्रमा हो तो भी बहुत जल होता है ॥ ७२० ॥

लग्न से दूसरा, तीसरा, स्थान में जलचर राशि हो उस में चन्द्रमा आदि जल स्वभाव के ग्रह हों तो अवश्य ही वृष्टि होती है ॥ ७२१ ॥

---

1. दृष्टे शुभेषु वा for दृष्ट्युतेषु च ms. 2. वृष्टि for दृष्टि Bh.
3. तृतीये वा for त्रिके वापि A.

जललग्नं ग्रहैर्युक्तं सजलैर्जलदायकम्
सजलैर्लग्नखेटैश्चाप्यंशस्थैर्वा घनं जलम् ॥ ७२२ ॥
शुक्लपक्षे शशी दृष्टोऽथवा युक्तो यदाशुभैः ।
लग्नस्थो जलराशिस्थः केन्द्रस्थो वा जलार्पकः ॥ ७२३ ॥
चेत्कर्कमृगमीनाःस्यु केन्द्रस्थाः क्रूरवर्जिताः ।
पूर्णेन्दुशुक्रदेवेज्यबुधैर्युक्ता बलान्विताः ॥ ७२४॥
वृष्टिरेवविधे योगे वीतरागेण भाषिता ।
लग्नात्तुर्ये[1] यदि स्थाने शुक्रेन्दुगुरुचन्द्रजाः ॥ ७२५ ॥
एवंयोगे महावृष्ट्या शुभकालः सतां मतः ।
कण्टकेऽप्यन्यलग्नेषु शुभलग्नेषु[2] सर्वतः ॥ ७२६ ॥
पादोनवृष्टिरादेश्या क्रूरयुक्तेष्ववर्षणम् ।
अन्ये च राशयः केन्द्रे शुष्कसाम्बुग्रहैर्युताः ॥ ७२७ ॥

जलचर राशि लग्न हो उस में जल स्वभाव के ग्रह हों तो जल होता है वा जल स्वभाव के ग्रह जलचर राशि के लग्न में हों वा उस के अंश में हों तो बहुत जल होता है ॥ ७२२ ॥

प्रश्न काल में जलचर राशि लग्न में वा केन्द्र में हो, उस में शुभग्रहों से दृष्ट वा युक्त शुक्लपक्ष के चन्द्रमा स्थित हों तो जल होता है ॥७२३॥

यदि कर्क, मकर, मीन, राशि केन्द्रों में हो और उन में पाप ग्रह नहीं हो तो और पूर्ण चन्द्रमा, शुक्र, बृहस्पति, बुध इन शुभ ग्रहों से युक्त हो तथा बल से युक्त हो ॥ ७२४ ॥

इस प्रकार के योग में वर्षा होती है यह मुनियों की उक्ति है यदि लग्न से चतुर्थ स्थान में शुक्र चन्द्रमा, गुरु, बुध हों तो ॥ ७२५ ॥

इस प्रकार के योग में बहुत वृष्टि होने के कारण शुभ काल होगा ऐसा सज्जनों का मत है । केन्द्र के और राशि अर्थात सप्तम दशम, में शुभ ग्रहों का योग तथा दृष्टि हो तथा बल युक्त हो तो ॥ ७२६ ॥

पादोन वृष्टि कहनी चाहिये और क्रूर ग्रह का योग तथा कोई प्रकार का सम्बन्ध हो तो वृष्टि नहीं होती, और केन्द्रों में यदि जलचर से अन्य राशि हो उस में सजल तथा शुष्क ग्रह बैठा हो तो ॥ ७२७ ॥

1. लग्ने तुर्ये for लग्नात्तुर्ये ms. 2. युक्तेषु for लग्नेषु A[1], Bh.

तदार्द्धवृष्टिरादेश्या सौम्यासौम्यप्रमाणतः ।
सजलराशयो[1] लग्ने शुभाशुभग्रहैर्युताः ॥ ७२८ ॥
त्रिभागवृष्टिरादेश्या वृष्टिज्ञानविशारदैः ।
शुष्कलग्नगतैःक्रूरैर्वृष्टिरोधः प्रकीर्तितः ॥ ७२९ ॥
लग्नतस्तुर्यगे सौरे दुर्भिक्षं च सविग्रहम् ।
वृष्टिप्रश्ने कुजे मूर्तौ विद्युल्लपति चञ्चला ॥ ७३० ॥
घनगर्जनसंयुक्ता भवेद्वृष्टिर्गरीयसी ।
लग्ने शुक्रः कुजश्चन्द्रः शनिश्च मिलिता यदि ॥ ७३१ ॥
अतिवृष्टिस्तदादेश्या नानाचित्रकरी जने[2] ।
सवातकरका वृष्टिर्विद्युच्चलति सर्वतः ॥ ७३२ ॥
शनिनेन्दो[3]र्विनाशित्वात् करकैर्वर्षणं घनम् ।
वृष्टियोगे चरे लग्ने वृष्टिर्द्वादश यामकः ॥ ७३३ ॥

---

शुभ अशुभ के प्रमाण से आधी वृष्टि कहनी चाहिये । जलचर राशि लग्न में हो और शुभाशुभ ग्रह से युक्त हो तो ॥ ७२८ ॥

त्रिभाग वृष्टि वर्षा के जानने वाले पंडितों को कहना चाहिये, और शुष्क राशि लग्न हो उस मे पाप ग्रह हो तो वर्षा नहीं होती है ॥ ७२९ ॥

लग्न से चतुर्थ स्थान मे शनि हो तो विग्रह के साथ दुर्भिक्ष होता है, और वर्षा के प्रश्न में मंगल लग्न में हो तो विद्युत् बहुत चपलता के साथ चलती है ॥ ७३० ॥

और मेघों के बहुत गर्जन शब्दों के साथ वृष्टि होती है, यदि लग्न में शुक्र, मंगल, चन्द्रमा, शनि ये सब मिल कर स्थित हों तो ॥७३१॥

उक्त योग में बहुत वृष्टि होती है और करकापात होता है वायु बहुत चलती है । चारों तरफ़ से विद्युत् चलती है जिस से लोक विचित्र होते हैं ॥ ७३२ ॥

यदि चन्द्रमा से अष्टम स्थान में शनि हो तो करकापात के साथ वृष्टि होती है । यदि वृष्टि योग में चर लग्न में हो तो बाहर प्रहर तक वृष्टि होती है ॥ ७३३ ॥

---

1. सजला for सजल Bh. 2. जनैः for जने Bh. 1. श्नेन्दो for नेन्दो A. A[1], ०श्नेन्दु० Bh.

चरे लग्ने धने सौम्ये मासतो वृष्टिरुत्तमा ।
जललग्ने शुभैर्युक्ते सद्यो वृष्टिर्जलग्रहैः ॥ ७३४ ॥
वृष्टिप्रश्ने स्थिरे मूर्तौ द्विद्वादशभिर्दिनैर्भवेत् ।
द्विस्वभावो यदा प्रश्नः षट्त्रिंशद्भिर्दिनैर्जलम् ॥ ७३५ ॥
पृच्छालग्ने चतुर्थस्थौ शनिराहू युतौ पुनः ।
दुर्भिक्षं च महाघोरं तत्र वर्षे ध्रुवं भवेत् ॥ ७३६ ॥
अत्र वर्षे दिशो भंगः कस्या अपि[1] भविष्यति ।
कस्यां वा सस्यनिष्पत्तिरिति प्रश्ने कृते सति ॥ ७३७ ॥
चतुर्णामपि केन्द्राणां मध्ये यत्र शुभग्रहः ।
तस्यां च सस्यनिष्पत्तिः सुभिक्षं च प्रजायते ॥ ७३८ ॥
यस्यां दिशि शनिः पुष्टः क्रूरैरेव निरीक्षितः ।
दिशि तस्यां बुधैर्वाच्यं दुर्भिक्षं त्वीतिसम्भवम् ७३९ ॥

यदि वर्षा प्रश्न में चर लग्न हो, धनस्थान में शुभग्रह हो तो एक मास तक वृष्टि होती है और जलचर राशि लग्न हो उसमें शुभ ग्रह से युक्त जल स्वभाव के ग्रह हों तो सद्यः वृष्टि होती है ॥७३४॥

वर्षा प्रश्न में पूर्वयोग में यदि स्थिर राशि लग्न हो तो चौवीस दिन में, और द्विःस्वभाव राशि लग्न में हो तो छत्तीस दिन में वृष्टि होती है ॥७३५॥

प्रश्न लग्न मे चतुर्थ स्थान में यदि शनि, राहु हों तो उस वर्ष में महाघोर दुर्भिक्ष होता है ॥ ७३६ ॥

इस वर्ष में कब किस दिशा का मंगल होगा और किस दिशा में धान्यादि होगा ऐसा प्रश्न करने पर ॥ ७३७ ॥

चारों केन्द्रों में जहां पर शुभ ग्रह हों वहां उस दिशा में धान्य की निष्पत्ति होगी और सुभिक्ष होगा ॥ ७३८ ॥

जिस दिशा में क्रूर ग्रहों से दृष्ट हो कर पुष्ट शनि स्थित हो उस दिशा में ईति होने के कारण दुर्भिक्ष होगा ऐसा फल पंडित कहें। ईति का का लक्षण जैसे संहिता ग्रंथों में लिखा है "अतिवृष्टिरनावृष्टि मूषकाः शलभाः शुकाः ॥ प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः ॥ ७३९ ॥

1. कस्यां दिशि for कस्या अपि Bh.

दिशि यस्यां रविस्तस्यां धान्यनाशोऽतितापतः ।
यत्रापि मङ्गलः क्रूरः सस्यनाशोपि तापतः ॥ ७४० ॥
यस्यां दिशि शुभाः पुष्टाः समस्तबलगर्विताः ।
निष्पन्ना सा च विज्ञेया समस्ताःसस्यसम्पदः ॥ ७४१ ॥
अस्मदीये पुनः क्षेत्रे वृष्टिः शस्या[1] भविष्यति ।
एवं प्रश्ने बुधैश्चिन्त्यं लग्नं सव्योमतुर्यकम्[2] ॥ ७४२ ॥
लग्नस्य सबलत्वे च सस्याधिक्यं वनं स्मृतम् ।
चतुर्थस्य बलाधिक्ये क्षेत्रं सर्वं समृद्धिमत् ॥ ७४३ ॥
कर्मणः सबलत्वेन शुभग्रहबलात् पुनः[3] ।
सफलानि सुकर्माणि सस्योत्पत्तौ भवन्ति हि ॥ ७४४ ॥
चन्द्रशुक्रादितस्तुर्ये[4] महावृष्टिः प्रकीर्तिता ।
क्रूरैस्तत्राप्यनावृष्टिर्वक्तव्या हितमिच्छता[5] ॥ ७४५ ॥

---

जिस दिशा में रवि हो उस दिशा में अत्यन्त ताप होने के कारण धान्य का नाश होता है, और जिस दिशा में मंगल हो उसमें भी अत्यन्त ताप से सस्य का नाश होता है ॥ ७४० ॥

जिस दिशा में शुभ ग्रह पुष्ट तथा समस्त बल से युक्त होकर स्थित हों उस दिशा में समस्त सस्य-सम्पत्ति की निष्पत्ति करनी चाहिये ॥७४१॥

हमारे यहां वर्षा तथा धान्यादि होगा या नहीं इस प्रश्न में पंडित लोग लग्न, चतुर्थ, दशम, भावों का विचार करें ॥ ७४२ ॥

लग्न को बलवान् होने से धान्य बहुत कहना चाहिये । चतुर्थ भाव बलवान् हो तो सब क्षेत्रों को सस्यादि से समृद्ध कहना चाहिये ॥७४३॥

कर्मस्थान के बल से तथा शुभ ग्रहों के बल से क्षेत्रों में सुन्दर फल तथा कर्मों से युक्त सस्योत्पत्ति होती है ॥ ७४४ ॥

चन्द्रमा शुक्र यदि चतुर्थ स्थान में हों तो महावृष्टि होती है । वहीं पर यदि पाप ग्रह हो तो अनावृष्टि होती है । हित की इच्छा करने वाले ऐसा कहें । ७४५ ॥

---

1. भव्या for शस्या A., Bh. 2. व्योमचतुर्थकम् Bh. 3. बलात्मके for बलात्पुनः A, A[1], Bh. 4. चतुर्थचन्द्रशुक्राद्यैः for चन्द्रशुक्रादितस्तुर्ये A[1]. 5. ०मिच्छताम् for ०मिच्छता A.

मूषकाः शलभा वृष्टौ तुलासिंहवृषोदये ।
मृगे मेषालिकुम्भेषु वायुवह्नी वृकादयः ॥ ७४६ ॥
युग्मे मीनधनुःस्त्रीषु शलभाः कृमिकत्तराः ।
कर्काख्या जलशीतेन रसौघः स्वामिदर्शनात्[1] ॥ ७४७ ॥
शालिजतैल[2]गोधूमतिलाढकीमकुष्टकाः ।
मुद्गचणकमाषाश्च सकांगुः[3] कोद्रवस्तथा ॥ ७४८ ॥
चदुला[4] इति चान्नानि द्वादशांशक्रमात्पुनः[5] ।
लग्नादेकैकलग्नेषु समसंख्यांशकैर्युतः ॥ ७४९ ॥
स्वीयेशदृष्टयवस्थाभ्यां द्वादशान्नोद्भवः स्फुटः ।
धान्योत्पत्त्यनुमानेन बुधैर्वाच्यं शुभाशुभम् ॥ ७५० ॥

यदि तुल, सिंह, वृष, लग्न हो तो मूषक तथा शलभ की वृष्टि होती है, और मकर, मेष, वृश्चिक, कुम्भ, इन लग्नों में वायु, अग्नि, वृक, आदि की वर्षा होती है ॥ ७४६ ।

यदि मिथुन, मीन, धनु, कन्या, लग्न हो तो शलभ तथा कृमि इत्यादिक वृष्टि होती है । कर्क लग्न हो और वह अपने स्वामी से दृष्ट हो तो जल शीत से रस बहुत होते हैं ॥ ७४७ ॥

चावल तेल गोधूम, तिल, आढ़की, मकुष्टक, मुद्ग, चणक, माष कंगु, कोद्रव, तन्दुल, प्रथमादि बारह द्वादशांशों को क्रम से लग्न गत होने से उसी क्रम से इन अन्नों की निष्पत्ति होती है और लग्न से एक एक राशि में लग्न संख्यक अंश-पर उसके स्वामी के योग तथा दृष्टि पर स्थित हों अन्न की उत्पत्ति होती है यह स्पष्ट है, और धान्योत्पत्ति के अनुमान से पंडित लोग शुभाशुभ फल कहें ॥ ७४८–७५० ।

1. सरुकस्वाम्य० for रसौघः स्वामि० A. रसौघः स्वाम्य० Bh. 2. शालिजोनल for शालिजतैल A. शालयो तिल Bh. 3. सकंगु Bh. 4. तंदुला for चदुला Bh. 5. वदेत for पुनः A, A[1]

विलग्नादीतयश्चिन्त्या मण्डलैर्वृष्टिनिश्चयः ।
येन विज्ञातमात्रेण[1] ज्ञायतेऽर्थः परिस्फुटम् ॥ ७५१ ॥
धनिष्ठारोहिणी ज्येष्ठानुराधा श्रवणं तथा ।
अभीचिरुत्तराषाढा भूमिमण्डलमुत्तमम् ॥[2] ७५२ ॥
भरणी कृत्तिका पुष्यो मघा च पूर्वफाल्गुनी ।
पूर्वभद्रपदा चेति तेजोऽभिख्यं विशाखया ॥ ७५३ ॥
उत्तराफाल्गुनीहस्तचित्रा स्वाती पनर्वसु ।
अश्विनी च मृगश्चेति वातयन्त्रं चतुष्टयम्[3] ॥ ७५४ ॥
सप्तरात्रान्महीतत्त्वं फलत्येव शुभं फलम् ।
जलतत्त्वं च मासेन शुभसौख्यफलप्रदम् ॥ ७५५ ॥
अग्न्याख्यमष्टभिर्मासैर्मासयुग्मेन मारुतः ।
अशुभं द्वौ फलं दत्ते वायुवह्नी महीभुजाम् ॥ ७५६ ॥

---

लग्न से ईति का विचार करना चाहिये और मण्डल से वृष्टि का निश्चय करें जिसको जानते ही सब वस्तु का ज्ञान हो जाता है ॥ ७५१ ॥

धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, अनुराधा, श्रवण, और अभिजित्, उत्तराषाढ़ा, ये भूमिमण्डल होते हैं ॥ ७५२ ॥

भरणी, कृत्तिका, पुष्य, मघा पूर्वफल्गुनी, पूर्वभाद्र, विशाखा, ये तेज मण्डल कहलाते हैं ॥ ७५३ ॥

पूर्वाषाढ़ा, अश्लेषा, मूल, आर्द्रा, रेवती, उत्तराभाद्र ये जल-संज्ञक हैं। उत्तरा फल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, अश्विनी, मृगशिरा, ये चौथा वातमण्डल है ॥ ७५४ ॥

पृथ्वी तत्त्व सात रात्रि में शुभ फल देता है। जल तत्त्व एक मास में शुभ, सौख्य फल को देता है ॥ ७५५ ॥

अग्नितत्त्व, आठ मास में, और वायुतत्त्व दो मास में ये दोनों अशुभ फल देते हैं ॥ ७५६ ॥

---

1. विज्ञान for विज्ञात A. 2. After this verse A[1] adds पूर्वाषाढा तथाश्लेषा मूलमार्द्रा च रेवती । उत्तरभद्रपर्यायसंज्ञं शतभिषक् समम् ७५३ 3. चतुर्थकम् Bh.

उपभुङ्क्ते नृपः सौख्यं हृष्टा भूमिर्न चेतयः ।
निर्भया मुदिता लोका उत्पाते भूमिमण्डले ॥ ७५७ ॥
बहुदुग्धयुता गावो बहुपुष्पफला द्रुमाः ।
आरोग्यं जायते भूमावुत्पाते जलतत्त्वजे ॥ ७५८ ॥
धनक्षयो भयं घोरं पीडारोगोऽल्पनीरता ।
अग्न्याह्वमण्डलोत्पाते फलदुग्धादि[1]तुच्छता ॥ ७५९ ॥
आग्नेये पीड्यते याम्या वायव्ये पुनरुत्तरा ।
वारुणे पश्चिमा सौख्यं पूर्वा माहेन्द्रमण्डले ॥ ७६० ॥
मीनसंक्रान्तिकाले च पौष्ण्यभोग्ये दिने यदि ।
यत्र विद्युत् शुभो वातस्तत्र गर्भो ध्रुवो मतः ॥ ७६१ ॥
मेषसंक्रान्तिकालात्तु नवस्वपि दिनेष्वपि ।
यत्राभ्रं वातविद्युत्स्याद्देवेन्द्रस्तत्र वर्षति ॥ ७६२ ॥

---

यदि भूमि मण्डल में उत्पात हो तो राजा प्रसन्न भूमि को सौख्य पूर्वक उपभोग करते हैं और ईति का उपद्रव नहीं होता है और लोक सब प्रसन्न और निर्भय रहते हैं ॥ ७५७ ॥

जल तत्त्व में उत्पात होने से गौ बहुत दुग्धवती होती है और वृक्ष बहुत फल पुष्प से संयुक्त होते हैं। आरोग्य पूर्वक सब रहते हैं ॥ ७५८ ॥

अग्निमण्डल में उत्पात हो तो धनक्षय, भय, बहुत पीड़ा, रोग, स्वल्प जल और फल, दुग्धादि में अल्पता होती है ॥ ७५६ ॥

आग्नेय मण्डल में दक्षिण दिशा में पीड़ा होती है, वायव्य मण्डल में उत्तर दिशा में पीड़ा होती है और जल मण्डल मे पश्चिम दिशा में सौख्य होता है और माहेन्द्र मण्डल में पूर्व दिशा में सौख्य होता है ॥ ६६० ॥

मीन संक्रांति काल में उस दिन में रेवती नक्षत्र हो, उस में जहां पर विद्युत और शुभ वायु बहे तो वहां निश्चय गर्भ समझना चाहिये ॥७६१॥

मेष संक्रांति काल से नौ दिनों में जहां पर, बादल, वायु, विद्युत हो वहां पर इन्द्र वर्षा करते हैं ॥ ७६२ ॥

---

1. फलं पुष्पादि A[1].

किं वा नवसु यामेषु विद्युद्वाताभ्रदर्शनम्[1] ।
यस्यां दिशि च सम्पूर्णं तद्दिने तत्र वर्षति ॥ ७६३ ॥

चैत्रमासे मेषसंक्रान्तिदिने यामविद्भिरपि कालनिष्पत्तिज्ञानम् ।
आषाढीतः कालनिष्पत्तिज्ञानं कथ्यते ॥

आषाढ्या घटिकाषष्ठ्या मासद्वादशनिर्णयः ॥
द्वादश पञ्चका षष्ठिरित्येवं क्रममादिशेत् ॥ ७६४ ॥

पञ्चनाडी भवेन्मासे[2] मासि मासि फलं पृथक् ।
यत्र नाड्यां शुभो वातो विद्युदभ्राणि गर्जनम् ॥ ७६५ ॥

तत्र मासे भवेद्वृष्टिरिदं कालनिरीक्षणम् ॥
पूर्णमास्यां विनष्टायां विनष्टं वर्षमादिशेत् ॥ ७६६ ॥

---

अथवा मेष संक्राति काल से नौ प्रहरों मे जिस दिशा में विद्युत, वायु, बादल, सम्पूर्ण दिखाई दें तो उस दिशा में उस दिन वर्षा होती है ॥ ७६३ ॥

ऐसा चैत्र मास मे मेष संक्रांति दिन याम को भी जानने वाले काल निष्पत्ति का ज्ञान करें ।

अब आषाढ़ी पूर्णिमा पर से कालनिष्पत्ति ज्ञान को कहते हैं ।

आषाढ़ी पूर्णिमा के साठ घटी से द्वादश मासों का निर्णय करें । अब साठ घटी को द्वादश भाग करने पर पांच पांच घटी का एक भाग हुआ इसी के क्रम से फल का आदेश करें ॥ ७६४ ॥

पांच, पांच, नाड़ी का एक एक मास हुआ इस से मास मास का फल पृथक् होता है, जिस मास की नाड़ी में सुन्दर वायु, विद्युत्, बादल, तथा उसका गर्जन हो ॥ ७६५ ॥

उस मास में वर्षा होगी यही काल का निरीक्षण है । पूर्णिमा यदि नष्ट हो जाय अर्थात् पूर्णिमा में बादल, वायु इत्यादिक नहीं हो तो उस वर्ष को नष्ट ही समझना चाहिये ॥ ७६६ ॥

---

1· वाताभ्रादि शुभं बहु for विद्युद्वाताभ्रदर्शनम् A· 2· भवेन्मासो for भवेन्मासे A·

चलत्यङ्गारके वृष्टिरुदये च बृहस्पतौ ।
शुक्रस्यास्तमने वृष्टिर्वक्रं याते शनैश्चरे[1] ॥ ७६७ ॥

उदयास्तमने चारे[2] वक्रं याते शनैश्चरे ।
जलनाडिगताः खेटाः महावृष्टिकरा मताः ॥ ७६८ ॥

भृगुतः सप्तमश्चन्द्रः शुभदृष्टश्च वृष्टिदः ।
त्रिकोणस्मरगो वापि शनिः[3] प्रावृषि कीर्तितः ॥ ७६९ ॥

त्रिपूर्वमूलपैत्र्यग्निरग्नियोगाः षडेव हि ।
अश्विनीयाम्यकर्णाश्च धनिष्ठा मैत्र[4] रेवती ॥ ७७० ॥

पुष्यो मृगकरश्चित्रा पृष्टयोगा दश स्मृताः ।
एतानि दुर्गतिक्रम्य भुंक्ते वारे[5] सदैव हि ॥ ७७१ ॥

मंगल के संचार में वर्षा होती है, और बृहस्पति के उदय होने पर तथा शुक्र के अस्त होने से, तथा शनि को वक्री होने पर वर्षा होती है ॥ ७६७ ॥

इस प्रकार ग्रहों के उदय, अस्त, चार तथा शनि के वक्री होने पर जो वर्षा का योग कहा गया है उस में यदि आषाढ़ी में नाड़ी के बल से जो वर्षा का योग कहा गया है उन दोनों का यदि एक काल में योग हो तो महावृष्टि होती है ॥ ७६८ ॥

शुक्र से सप्तम में चन्द्रमा हो और शुभ ग्रहों से देखा जाय तो वर्षा होती है वा, नवम, पञ्चम, या, सप्तम, में शनि हो तो वर्षा होती है ॥ ७६९ ॥

पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्वभाद्र, मूल, मघा, कृत्तिका, ये अग्नि योग है, अश्विनी, भरणी, श्रवण, धनिष्ठा, अनुराधा, रेवती, पुष्य, मृगशिरा, हस्त, चित्रा, ये दश नक्षत्र पृष्ठ योग हैं, इन नक्षत्रों को चन्द्रमा दिन में सर्वदा क्रम से भोग करते हैं ॥ ७७०, ७७१ ॥

1 शनीश्वरे Bh. 2. वारे for चारे ms. चरे Bh. 3. शनैः for शनिः A., Bh. 4. मैत्र्य for मैत्र A. 5. वा for वारे Bh.

आर्द्राश्लेषाश्विनीज्येष्ठाभिजित्षष्ठं च वारुणम् ।
एतानि समयोगानि त्वेककालानि चेन्दुना ॥ ७७२ ॥
पूर्वाषाढात्समारभ्य ज्येष्ठा राकातिथेः परम् ।
कृष्णपक्षाद्यकाले चेद् वर्षत्युभययोगिषु ॥ ७७३ ॥
तदा त्रिकालधान्यानामुत्पत्तिस्तु घना भवेत् ॥
मासचतुष्टयं वृष्टिर्ज्ञातव्या वृष्टिवेदिभिः ॥ ७७४ ॥
अग्न्यायोगिषु[1] धिष्ण्येषु पुरोधान्यं घनं स्मृतम् ।
पृष्टयोगिषु[2] वृष्टौ तु स्वल्पधान्यं नवा पुनः ७७५ ॥
युज्यमानः शुभैश्चन्द्रः सुभिक्षं कुरुते घनम् ।
चन्द्रयोगानुमानेन धान्यवृष्टी घनाघने ॥ ७७६ ॥

इति दशमभावे वृष्टिप्रकरणं द्वितीयम् ।

---

और शेष आर्द्रा, अश्लेषा, रोहिणी, पुनर्वसु, तीनों उत्तर, स्वाती, विशाखा, अभिजित, शतभिषा, ज्येष्ठा, ये नक्षत्र समयोग के हैं ॥ ७७२ ॥

ज्येष्ठ, पूर्णिमा के बाद पूर्वाषाढ़ा से लेकर कृष्ण पक्ष के प्रतिपद् में उभय योग में यदि वर्षा हो ॥ ७७३ ॥

तो ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, तीनों ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले धान्यों की उत्पत्ति होती है और चार मास तक वर्षा भी होती है ॥ ७७४ ॥

अग्र योग के नक्षत्र में वर्षा होने से आगे बहुत धान्य होते हैं, और पृष्ठ योग में स्वल्प धान्य होता है वा नहीं भी होता ॥ ७७५ ॥

चन्द्रमा शुभ ग्रह से युक्त हो तो बहुत सुभिक्ष होता है, इस प्रकार चन्द्रमा के योग के अनुमान से धान्य, तथा वर्षा का भी फलादेश कहें ॥ ७७६ ॥

इति दशमभावे वृष्टिप्रकरणं द्वितीयम् ॥

---

1. अग्र for अग्न्या Bh. 2. पृष्ठ for पृष्ट Bh.

अर्घकाण्डं प्रवक्ष्यामि लग्नान्[1] गुरूपदेशतः ।
यथादृष्टं यथाभूतमुपकाराय धीमताम् ॥ ७७७ ॥
क्रेता लग्नपतिर्ज्ञेयो विक्रेतायपतिः स्मृतः ।
गृह्णाम्यहमिदं वस्तु सति प्रश्ने ह्यमूदृशि ॥ ७७८ ॥
बलाढ्यं प्रश्नलग्नं चेद् गृह्यते तत् क्रयाणकम् ।
तस्मात्क्रयाणकाल्लाभः सतां भवति संमतः ॥ ७७९ ॥
विक्रीणाम्यमुकं वस्तु प्रश्ने एवंविधे सति ।
आयस्थाने बलवति विक्रेतव्यं क्रयाणकम् ॥ ७८० ॥
विक्रेता लग्नपो ज्ञेयो ग्राहकस्त्वस्तभावपः ।
यो यस्य स्थानगः सोऽर्थी स दृग्योगे तयोः शुभम् ॥ ७८१
लग्नेशः स्वोच्चगेहाद्यौ विक्रेता द्रविणेश्वरः ।
एवंविधे तु जायेशे[2] ग्राहकोऽपि धनेश्वरः ॥ ७८२ ॥

अब लग्न से गुरु के उपदेश के अनुसार बुद्धिमानों के उपकार के लिये जैसा मैं ने देखा, तथा अनुभव किया वैसे ही अर्घकाण्ड को मैं कहता हूं ॥ ७७७ ॥

ऐसे इस वस्तु को खरीदूंगा इस प्रश्न मे लग्नेश को क्रेता, तथा आयेश को विक्रेता समझ कर विचार करें ॥ ७७८ ॥

यदि प्रश्न लग्न बलवान् हो उस समय में जो वस्तु खरीद करें तो उस से अवश्य ही लाभ होगा ऐसा सज्जनों का मत है ॥ ७७९ ॥

इस वस्तु को बेचूंगा इस प्रश्न में यदि लाभेश, बलवान् हो तो उसको बेच लेवें ॥ ७८० ॥

लग्नेश को विक्रेता सप्तमेश को ग्रह का समझ कर ये जिस के भाव में हों वह याचक होता है और दृष्टि योग होने से दोनों को शुभ होता है ॥ ७८१ ॥

लग्नेश यदि अपने उच्चादि स्थित हो तो विक्रेता बहुत धनी होता है, इस प्रकार सप्तमेश यदि उच्चादि में हो तो ग्राहक धनेश्वर होता है ॥७८२॥

§ लग्नाद् for लग्नान् Bh· 1· जायेशो for जायेशे A, A[1]

समर्घं वा महर्घं वा कदा धान्यं भविष्यति ।
इति प्रश्ने शुभैर्दृष्टे शुभयुक्ते बलाधिके ॥ ७८३ ॥
समर्घं सबले लग्ने महर्घमबले पुनः ।
क्रेता चेत्स्वगृहं पुष्टं पश्यति सबलं शुभः ॥ ७८४॥
तदा धान्यं समर्घं स्याच्छुभकालः प्रवर्तते ।
धनस्थानेश्वरे दुष्टे महर्घं स्यात्कणादिकम् ॥७८५॥
सबले लाभनाथेऽपि महर्घं स्यात्कणादिकम् ।
अबले तत्र लाभेशे महर्घं[1] तु वदेत्सुधीः ॥७८६॥
येन ग्रहेण लग्नस्य शुभत्वं प्रतिपद्यते ।
क्रमाद् ग्रहः समंचार्यो धर्मादिसर्वराशिषु ॥७८७॥
यावद्राशौ शुभः स स्यात्तावन्मासान् समर्घता ।
यावत्कालं भवेद्दुष्टस्तावत्कालं महर्घता ॥७८८॥

कब धान्य, समर्घ, वा महर्घ होगा इस प्रश्न में लग्न में शुभ ग्रहों का योग तथा दृष्टि हो और बलवान् हो तो समर्घ होता है ॥ ७८३ ॥

सबल लग्न में समर्घ होता है और निर्बल लग्न मे महर्घ होता है । यदि क्रेता अपने सबल तथा पुष्ट घर को देखे तो शुभ होता है ॥७८४॥

और धान्य समर्घ तथा शुभ काल होता है, यदि धनेश दुष्ट हो तो कणादिक महर्घ होता है ॥ ७८५ ॥

लाभेश के सबल रहने पर भी कणादिक महर्घ होता है और लाभेश निर्बल हो तो भी महर्घ होता है ॥ ७८६ ॥

जिन ग्रहों के योग से लग्न को शुभ कहा गया है उन ग्रहों को क्रम से धर्मादि भावों में संचारित करके विचार करें ॥ ७८७ ॥

वह ग्रह जितने राशिपर्यन्त शुभ हों उतने मासों तक समर्घ होता है और जितने काल तक दुष्ट हों उतने कालों तक महर्घता होती है ॥ ७८८ ॥

1· समर्घ for महर्घ A·

ज्ञातव्या दिवसैर्मासा मासैस्तावद्भिरस्य हि ।
समर्घता वस्तुनो हि प्रतिपाद्या विचक्षणैः ॥७८९॥

प्रकारान्तरेणार्घरहस्यमाह—

शुक्लपक्षे द्वितीयायां भानोर्वामोदयः शशी ।
तस्मिन् मासे समर्घं स्यान्महर्घं दक्षिणोदये ॥७९०

बृहदृक्षेषु जायन्ते यदि द्वादश संक्रमाः ।
तत्र वर्षे समग्रेऽपि शुभः कालो भवेद् ध्रुवम् ॥७९१॥[1]

अमावास्यां यदा चन्द्रोऽप्युदयास्तं करोति चेत् ।
महदृक्षे तदा मासे भवेन्नूनं समर्घता ॥७९२॥

बृहस्पतौ बृहदृक्षे राशिगामिनि सद्बले ।
मासास्त्रयोदश तदा समर्घं जायते भुवि ॥७९३॥[2]

---

दिन से मास जानें अर्थात् जितने दिनों तक वह ग्रह शुभ अशुभ रहे क्रम से उतने मास पर्यन्त वस्तुओं को समर्घ और महर्घ कहना चाहिये ॥ ७८९ ॥

प्रकारान्तर से समर्घ और महर्घ को कहते हैं -

शुक्ल पक्ष की द्वितीया में सूर्य से चन्द्रमा का वामोदय हो तो उस मास में समर्घ होता है । दक्षिणोदय में महर्घ होता है ॥ ७९० ॥

बृहत्संज्ञक अर्थात् रोहिणी, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्र, विशाखा, पुनर्वसु, नक्षत्रों में बारह राशियों की सूर्य की संक्रांति हो तो सम्पूर्ण वर्ष शुभ काल होता है ॥ ७९१ ॥

अमावास्या में बृहन्नक्षत्र में यदि चन्द्रमा का उदय अस्त हो तो उस मास में समर्घ होता है ॥ ७९२ ॥

बृहत्संज्ञक नक्षत्र में बृहस्पति किसी राशि का संचार करें तो पृथ्वी में तेरह मास पर्यन्त समर्घ होता है ॥ ७९३ ॥

---

1. A. adds after this verse the following:
बृहत्सुधान्यं कुरुते समर्घं जघन्यं धिष्ण्याभ्युदिते महर्घम् ।
समेषु धिष्ण्येषु समं हिमाशोर्वदन्त्यसन्दिग्धमिदं महान्तः ॥

2 The verse is missing in Bh.

ऊर्ध्वसंक्रमणे मित्रे शुभयुक्ते च पूर्वकात् ।
त्रिवारे तुर्यगे धिष्ण्ये बृहदृक्षेऽर्कसंक्रमः ॥७९४॥
यदा भवेत्तदा वाच्यं सुभिक्षं सततं क्षितौ ।
रात्रौ सुप्ते च सक्रूरे पापविद्धेक्षितेऽपि वा ॥७९५॥
पूर्वात्तृतीयपञ्चर्क्षलघ्वर्क्षे यदि संक्रमः ।
तदा भवेन्महल्लोके दुर्भिक्षं कष्टकारकम् ॥७९६॥
मध्यर्क्षे मिश्रसंयुक्तेऽप्युपविष्टे च संक्रमः ।
अर्घसाम्यं तदा वाच्यं सर्वसंक्रान्तिलक्षणैः ॥७९७॥
यदा धनुषि मार्तण्डः संक्रामति तदा विधुः ।
विलोक्यते बृहदृक्षे[1] किंमध्ये किंजघन्यके ॥७९८॥

---

अनुराधा, तथा तीनों पूर्वा से तृतीय, चतुर्थ, तथा बृहत् संज्ञक नक्षत्र में शुभग्रह से युक्त रवि यदि ऊर्ध्व-संज्ञक संक्रान्ति करता हो ॥ ७९४ ॥

तो पृथ्वी पर सर्वदा सुभिक्ष होता है और सुप्त अर्थात् तैतिल, नाग, चतुष्पद करणों में रवि के संक्रान्ति होने से सुप्त संक्रान्ति होती है जैसे नारद का वचन है

"निविष्टो वणिजे विष्ट्यां बालवे च बवे गरे । कौलवं शकुनौ भानुः किंस्तुघ्ने चोर्ध्व संस्थित । चतुष्पात्तैतिले नागे सुप्तः क्रान्तिं करोति सः । धान्यार्घवृष्टिषु समं श्रेष्ठं हीनं भवेत्क्रमात् ॥"

रात्रि में पाप ग्रह से युक्त वा विद्ध वा दृष्ट पूर्वा से तृतीय, पञ्चर्क्ष ( हस्त, स्वाती, अभिजित्, धनिष्ठा, रेवती, भरणी, ) और लघ्वर्क्ष (अश्लेषा, शतभिषा, आर्द्रा, स्वाती, ज्येष्ठा, भरणी, ) इन नक्षत्रों में रवि की सुप्त संक्रान्ति हो तो महर्लोक में दुर्भिक्ष तथा कष्ट कारक होता है । प्रसङ्ग से बृहत सम जघन्य नक्षत्रों की संज्ञा संक्रांति वश से जैसे नारद का वचन है "तारा जघन्याः सार्पेन्द्रा वातार्द्रान्तकतोयपाः । ध्रुवादिति द्विदैवत्यं बृहत्ताराः पराः समाः ।" इति ॥ ७९५ ॥ ७९६ ॥

मध्यम अर्थात् सम संज्ञक तथा विशाखा, कृत्तिका इन नक्षत्रों में रवि की संक्रान्ति हो तो संक्रान्ति के लक्षण से अर्घ साम्य कहना चाहिये ॥ ७९७ ॥

धनुराशि की संक्रान्ति में चन्द्रमा यदि बृहन्नक्षत्र, या मध्य नक्षत्र, या जघन्य नक्षत्र में हो ॥ ७९८ ॥

---

1· बृहद्धिष्ण्ये for बृहदृक्षे A·

उत्तमर्क्षे समर्घं[1] स्यान्मध्यमे समता मता ।
जघन्येषु महर्घं स्यादेवं संक्रमधिष्ण्यतः ॥७९९॥

तिथिः षष्टिघटीमानात् त्रिभागेन विभाजिता ।
आद्यभागे ततो नाड्यः पञ्चदश प्रकीर्तिताः ॥८००॥

त्रिंशन्नाड्यो द्वितीयेऽपि पञ्चदश तृतीयके ।
एवं चन्द्रस्य धिष्ण्यं तु ततस्त्रेधा विभज्यते ॥८०१॥

[2]बृहद्धिष्ण्यस्य चाद्योंऽशश्चन्द्रतिथ्योरथांशकः ।
आद्यो भवेत्त्रिधा तुल्यस्ततः सूर्यः शुभेक्षितः ॥८०२॥

धनुषि याति संपुष्टस्तूत्तमार्घं तदा भवेत् ।
यदा च गुरुधिष्ण्यस्य कंटकः स्याद्[3] द्वितीयकः ॥८०३॥

---

बृहन्नक्षत्र में हो तो समर्घ होता है । मध्यम में हो तो-समता, जघन्य में महर्घ होता है ऐसा संक्रान्ति के नक्षत्र-से फल का विचार करें ॥ ७९९ ॥

तिथि के साठ घटी मान को तीन विभाग करने पर पहले भाग में पन्द्रह घटी कही हैं ॥८००॥

और द्वितीय भाग में तीस घटी, तृतीय भाग मे पन्द्रह घटी, इसी तरह चन्द्र नक्षत्र के साठ घटी मान के भी तीन भाग करें ॥८०१॥

बृहत् संज्ञक नक्षत्र के तथा चन्द्र नक्षत्र के पहले घटी विभाग में सूर्य की संक्रान्ति हो और शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो अर्घ समान होता है ॥८०२

यदि बलवान् सूर्य बृहत् संज्ञक नक्षत्र के द्वितीय घटी विभाग में धनु राशि में जाय तो उत्तम अर्घ होता है ॥८०३॥

---

1· सुभिक्षं for समर्घं A, A[1] 2. Bh adds before this verse the following: 3. कण्टकस्य for कण्टकःस्याद् A·

बृहद्दक्षाद्यभागश्च प्रातश्चन्द्रतिथिरपि ।
तदोत्तमजघन्यार्थपाकश्रीशास्त्रसम्मतः ॥

But this verse is repeated, see V. 806·

चन्द्रधिष्ण्ये तिथेश्चापि कण्टकोऽथ द्वितीयकः ।
तदाप्युत्तम एवार्घो विज्ञातव्यो महर्द्धिकैः[1] ॥८०४॥

यदा च गुरुधिष्ण्यस्य तृतीयः कण्टको भवेत् ।
चन्द्रधिष्ण्यतिथेश्चापि तृतीयश्चोत्तमोत्तमः ॥८०५॥

बृहदृक्षाद्यभागश्चेत् चन्द्रतिथ्योर्द्वितीयकः ।
तदाऽपि चोत्तमार्घोऽस्ति नक्षत्रस्य स्वभावतः ॥८०६॥

बृहदृक्षाद्यभागश्चेत् प्रान्तश्चन्द्रतिथेरपि ।
तदोत्तमजघन्यार्घपाकः शास्त्रसंमतः ॥८०७॥

गुर्वृक्षमध्यमो भागश्चन्द्रतिथ्योरथान्त्यगः ।
तदा मध्यो भवेदर्घो गुरुनक्षत्रवैभवात् ॥८०८॥

एवं चन्द्रतिथिभ्यां च महदृक्षं विचारितम् ।
त्रिंशन्मुहूर्तके[2] ऽप्येवमाद्यमध्यान्तकल्पना ॥८०९॥

---

यदि चन्द्र नक्षत्र तथा तिथि की भी द्वितीय घटी विभाग में संक्रान्ति हो तो भी उत्तम अर्घ होता है ॥८०४॥

यदि बृहत् संज्ञक नक्षत्र तथा तिथि की भी तृतीय घटी विभाग में संक्रान्ति हो तो अर्घ उत्तमोत्तम होता है ॥८०५॥

बृहन्नक्षत्रों का प्रथम भाग चन्द्र, तिथि, का द्वितीय भाग हों तो भी नक्षत्र के स्वभाव से उत्तमार्घ होता है ॥८०६॥

बृहन्नक्षत्र का आद्य भाग, और चन्द्र तिथि का अन्त भाग हो तो शास्त्र संमत से उत्तमाधम अर्घ पाक होता है ॥८०७॥

बृहन्नक्षत्र का मध्य भाग, और चन्द्र, तिथि का अन्त्य भाग हो तो बृहन्नक्षत्र के प्रभाव से मध्यम अर्घ होता है ॥८०८॥

इस प्रकार चन्द्रमा, तिथि पर से बृहन्नक्षत्र का विचार किया, इसी तरह तीस मुहूर्त पर से भी आद्य मध्य अन्त्य की कल्पना करें ॥८०९॥

---

1· महर्षिभिः for महर्द्धिकैः A· 2· मौहूर्तिके for मुहूर्तके A·

मध्यर्क्षस्याद्यभागश्चेच्चन्द्रतिथ्योरथादिमः ।
तदा मध्योत्तमार्घोऽपि धान्यस्य विदुषां मतः ॥८१०॥

मध्यर्क्षो[1] मध्यभागश्चेत् चन्द्रतिथ्योश्च मध्यमः ।
तदा मध्योत्तमार्घः स्यादन्तिमेऽपि च मध्यमः ८११॥

मध्यर्क्षस्यापि मध्यश्चेत् चन्द्रतिथ्योरथादिमः ।
तदा मध्यम एवार्घो द्वयोर्मध्येऽपि मध्यमः ॥८१२॥

एवं तिथिचन्द्रेण लघ्वर्क्षविचारोऽपि वाच्यः । तथा च

[2]लघ्वर्क्षस्याद्यभागश्चेत् चन्द्रतिथ्योरथादिमः ।
तदा जघन्योत्तमार्घो लघ्वर्क्षमध्यमो यदि ॥७१३॥

चन्द्रतिथ्योश्च मध्येऽस्ति[3] तदा जघन्यमध्यमः।
लघ्वर्क्षस्यान्तभागश्चेत् चन्द्रतिथ्योरथान्त्यमः[4] ॥८१४

यदि मध्यनक्षत्र का पहला भाग चन्द्र, तिथि का भी पहला भाग हो तो धान्य का मध्यम, उत्तम अर्घ होता है ॥ ८१० ॥

मध्य नक्षत्र का मध्यभाग चन्द्र, तिथि, का मध्यभाग हो तो मध्यम, उत्तम अघ धान्य का होता है और अन्तिम भाग में भी मध्यम होता है ॥ ८११ ॥

मध्यम नक्षत्र का मध्यभाग चन्द्र तिथि का आदिभाग हो तो मध्यम अर्घ समझना चाहिये। दोनों के मध्य में होने पर भी मध्यम होता है ॥ ८१२ ॥

इस प्रकार लघुनक्षत्र चन्द्र तिथि पर से विचार कहते हैं। लघुनक्षत्र का आद्य भाग तथा चन्द्र तिथि का भी आद्य भाग हो तो अधमोत्तम अर्घ होता है यदि लघ्वर्क्ष मध्यम में हो तो भी वही होता है ॥ ८१३ ॥

लघु नक्षत्र का मध्यभाग तथा चन्द्र तिथि का भी मध्य भाग हो तो इस तरह लघु नक्षत्र का अन्त्य भाग तथा चन्द्र तिथि का भी अन्त्य भाग होता है ॥ ८१४ ।

1 मध्यर्क्षे for मध्यर्क्षो Bh. 2. लघ्वर्क्षं० for लघ्वर्क्ष Bh. 3. मध्यास्ति for मध्येऽस्ति Bh. 4. ०रथान्तिमः for ०रथान्त्यमः for A.

तदा दुर्भिक्षमादेश्यं नक्षत्रस्य प्रभावतः ।
विकल्पैः सकलैरेवं सुभिक्षं पृच्छतां वदेत् ॥८१५॥

शुक्रो बुधकुजौ सौरिर्बृहद्धिष्ण्ये च राशिगाः।
तदा जने समर्घं स्यान्मध्यं मध्येऽधमेऽधमम् ॥८१६॥

पुनर्वसौ विशाखायां रोहिण्यामुत्तरात्रये ।
नवेन्दुः कुरुते प्रोद्यत् दुर्भिक्षं दक्षिणोन्नतः॥८१७॥

समो नवेन्दुरुद्गच्छन् समर्घं कुरुतेऽशनम् ।
नवेन्दुः कुरुते प्रोद्यत्सुभिक्षमुत्तरोन्नतः ॥८१८॥

स्वात्यश्लेषा भरण्यार्द्रा ज्येष्ठा शतभिषक्सु च ।
पंच दशसु शेषेषु नक्षत्रेषु च सर्वदा ॥८१९॥

पुनर्वसू विशाखा च रोहिणी चोत्तरात्रयम् ।
एतानि पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्तानि संक्रमे ॥८२०॥

वेदार्कौ[1] याति मेषादौ विधौ सप्तमराशिगे ।
त्रिशद्येकशराम्भोधिमासैरर्घः[2] क्रमाद् भवेत् ॥८२१॥

---

तो नक्षत्र के प्रभाव से दुर्भिक्ष कहना चाहिये इस के विकल्प में सुभिक्ष कहना चाहिये ॥ ८१५ ॥

शुक्र, बुध, मंगल, शनि यदि बृहन्नक्षत्र के राशि में हों तो समर्घ होता है । मध्यम में मध्यम; तथा अधम में अधम होता है ॥ ८१६ ॥

पुनर्वसु, विशाखा, रोहिणी, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तरभाद्र, इन नक्षत्रों में चन्द्रमा का दक्षिणोन्नत शृङ्ग उदित हो तो दुर्भिक्ष होता है ॥ ८१७ ॥

पूर्व के नक्षत्रों में यदि चन्द्रमा का सब शृङ्ग उदित हो तो समर्घ होता है, उत्तरोन्नत शृङ्ग उदित हो तो सुभिक्ष होता है ॥ ८१८ ॥

स्वाती, अश्लेषा, भरणी, आर्द्रा, ज्येष्ठा, शतभिषा, इन, नक्षत्रों में संक्रान्ति होने से पन्द्रह मुहूर्त होते हैं, पुनर्वसु, विशाखा, उत्तरात्रय, इन नक्षत्रों में संक्रान्ति होने से ४५ मुहूर्त होता है और शेष नक्षत्रों में तीस ३० मुहूर्त होता है ॥ ८१९ ॥ ८२० ॥

यदि सूर्य के मेष संक्रम काल में चन्द्रमा सप्तम राशि में हो तो क्रम से तीन, दो, एक, पांच, चार, मासों में जाकर अर्घ होता है ॥८२१॥

---

1· वेद को for वेदार्कौ A वेदर्कौ Bh. 2· त्रिशद्येकषट्शरम्भो for त्रिशद्येकशराम्भोधि A. A[1]

आर्द्रा च भरणी स्वातिरश्लेषा शततारका ।
ज्येष्ठा च रविसंक्रान्तौ पञ्चदश मुहूर्तिका ॥८२२॥
धनिष्ठा रेवती पुष्योऽनुराधा कृत्तिकाश्विनी ।
हस्तः पूर्वात्रयं चित्रा श्रुतिर्मूलं मृगो मघा ॥८२३॥
एतानि पञ्चदश च नक्षत्राणि मनीषिभिः ।
त्रिंशन्मुहूर्तकानीति प्रोक्तानि रविसंक्रमे ॥८२४॥

इत्यार्घेऽर्घकाण्डम् ।

अथ लाभप्रकरण एवार्घकाण्डं निरूप्य स्त्रीलाभप्रकरणम् ।
मूर्तौ सुरेज्ये ऽस्तगते शशाङ्के बुधेऽथवा स्वर्क्षगते तु शुक्रे ।
संप्राप्यते व्योमगते च सूर्ये कन्या नरैः पार्थिववल्लभेव ॥८२५॥
कर्कोदये सप्तमगे शशाङ्के चतुष्टये पापविवर्जिते च ।
अवाप्यते भूरिधनादियुक्ता नयप्रधाना विजितारिपक्षा ॥८२६॥
आयस्थिते तीव्रकरे स्वतुंगे मूर्तौ शशाङ्के परिपूर्णदेहे ।

---

आर्द्रा, भरणी, स्वाती, अश्लेषा, शतभिषा, ज्येष्ठा, इन नक्षत्रों में संक्रान्ति होने मे पन्द्रह मुहूर्त होता है ॥८२२॥

धनिष्ठा, रेवती, पुष्य, अनुराधा, कृत्तिका, अश्विनी, हस्त, पूर्व फल्गुनी पूर्वाषाढ़, पूर्वभाद्र, चित्रा, श्रवण, मूल, मृगशिरा, मघा, ॥८२३॥

इन पन्द्रह नक्षत्रों में रवि संक्रान्ति हो तो पन्द्रह मुहूर्त होता है, ऐसा मुनियों का वचन है ॥८२४॥

लाभ प्रकरण में ही अर्घकाण्ड को कहकर अब स्त्रीलाभ प्रकरण कहते हैं ॥

जिसको जन्म में बृहस्पति लग्न में हो, सप्तम में चन्द्रमा वा बुध हो, शुक्र अपने राशि में हो और सूर्य दशम स्थान में हो तो वह मनुष्य रानी के समान कन्या का लाभ करता है ॥८२५॥

जन्म समय में जिसको कर्क लग्न हो, सप्तम में चन्द्रमा हो और केन्द्र में एक भी पापग्रह नहीं हो वह बहुत धनादि से युक्त और नीति को जाननेवाली, तथा शत्रु पक्ष को पराजित करने वाली स्त्री का लाभ करता है ॥८२६॥

सौम्येम्बरस्थे सुभगा सुरूपा संप्राप्यते स्त्री बहुपुत्रपौत्रा ॥८२७

छिद्रे स्थिते चन्द्रयुते च शुक्रे लग्ने गुरौ सौम्ययुते च सूर्ये ।
लाभेऽथ दुश्चिक्यगतेशनौतु प्राप्नोतिकन्यां सुरसां सुरूपाम्॥८२८

शुक्रे मूर्तौ सुरूपा स्त्री साहंकारा च भूमिजे ।
बुधे वक्रा गुरौ सश्रीश्चतुरस्राखिलैः शुभैः ॥८२९॥

शुद्धे शनौ दरिद्रा तु दुर्भगा युवती मता ।
शुक्रे लग्ने गुरौ द्यने सेवते न पतिं निजम् ॥ ८३० ॥

तुर्ये तुंगाश्रिते चन्द्रे जीवदृष्टे महोदया ।
विद्याधरीसमा प्राप्या जितारिश्च बहुप्रजा ॥ ८३१ ॥

चन्द्रो लग्नेश्वरो वापि कन्यालाभाय सप्तगौ ।
सप्तपो मूर्तिगः शीघ्रं स्त्रीलाभो निश्चितो भवेत् ॥ ८३२ ॥

---

सूर्य उच्च का होकर लाभ स्थान में हो, पूर्ण चन्द्रमा लग्न में हो, शुभग्रह दशम स्थान में हो तो वह बहुत सुन्दरी सुभगा तथा बहुत पुत्र पौत्र को उत्पन्न करने वाली स्त्री का लाभ करता है ॥८२७॥

चन्द्रमा से युक्त, शुक्र, अष्टम स्थान में हो, लग्न में गुरु हो, बुधसे युत सूर्य लाभ में हो और शनि तृतीय में हो तो वह सुन्दर रस वाली सुन्दरी स्त्री को प्राप्त करता है ॥ ८२८ ॥

लग्न में शुक्र हो तो सुन्दर स्त्री का लाभ होता है । यदि मंगल, लग्न में हो तो अहंकारयुक्ता स्त्री, और बुध हो तो वक्रा स्त्री, गुरु हो तो लक्ष्मी रूपा, सब शुभग्रह हों तो सब गुणों से युक्ता स्त्री का लाभ होता है ॥ ८२९ ॥

शनि हो तो दरिद्रा, दुर्भगा, स्त्री होती है, यदि शुक्र लग्न में हो, और बृहस्पति सप्तम भाव में हो तो उसकी स्त्री अपने पति की सेवा नहीं करती ॥ ८३० ॥

चन्द्रमा उच्च का होकर चतुर्थ में हो, उस पर बृहस्पति की दृष्टि हो तो वह महोदया, तथा विद्याधरी के समान शत्रु को जीतने और बहुत पुत्रादिक उत्पन्न कर वाली स्त्री को प्राप्त करता है ॥ ८३१ ॥

चन्द्रमा, लग्नेश, दोनों, सप्तम में हों तो कन्या का लाभ होता है, और सप्तमेश लग्न में हो तो शीघ्र स्त्रीलाभ होता है ॥ ८३२ ॥

तुलावृषमकर्केषु शुक्रेन्दुयुतदृष्टिषु ।
वधूलाभो भवत्येव घूने वा सबले रवौ ॥ ८३३ ॥

शुभा केन्द्रत्रिकोणस्था बुधर्क्षं स्मरगेहगम् ।
[1]कनीलाभाय पश्यन्तस्त्र्यं[2]शस्त्रीगेहगास्तथा ॥ ८३४ ॥

कनीद्रेष्काणगोलग्ने कन्यालग्ने नवांशके ।
वीक्षिते सोमशुक्राभ्यां कन्यालाभो ध्रुवो मतः ॥ ८३५ ॥

शुक्रेन्दू समराशिस्थौ स्त्रीद्रेष्काणनवांशकौ ।
सवीर्यौ मूर्तिधी[3]स्वस्थौ कन्यालाभाय निश्चितौ ॥ ८३६

स्मरस्वोपचये चन्द्रे कन्याप्तिर्गुरुवीक्षिते ।
प्राप्या कन्या समे भानौ पतिलाभोऽन्यथा स्त्रियाम् ॥ ८३७॥

---

तुल, वृष, कर्क, लग्नों में शुक्र, चन्द्रमा दोनों का योग तथा दृष्टि हो वा सबल रवि सप्तम में हो तो स्त्री का लाभ होता है ॥ ८३३ ॥

बुध की राशि ( मिथुन, कन्या, ) सप्तम भाव में हों और इस भाव के त्रिशांश पर, केन्द्र, और त्रिकोणस्थित शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो कन्या का ही लाभ होता है ॥ ८३४ ॥

कन्या लग्न में कन्या का ही द्रेष्काण तथा नवमांश लग्न में हो और चन्द्रमा, शुक्र दोनों से देखे जाते हों तो ध्रुव कन्या का लाभ होता है ॥ ८३५ ॥

शुक्र, चन्द्रमा, सम राशि का हो कर कन्या राशि का द्रेष्काण, नवमांश में हो तथा बल से युक्त होकर लग्न पंचम, धन, स्थान में हो तो कन्या का लाभ होता है ॥ ८३६ ॥

चन्द्रमा, सप्तम तथा उपचय में हो उस पर गुरु की दृष्टि हो तो कन्या की प्राप्ति होती है, सम राशि में सूर्य हो तो कन्या की प्राप्ति होती है, और स्त्री की कुण्डली में विषम राशि में सूर्य हो तो पति प्राप्त होता है ॥ ८३७ ॥

---

1. So Bh. कन्या mss 2. पश्यन्तः स्त्रीशा Bh. 3. ०श० for ०स्व० Bh.

केन्द्रत्रिकोणगैः सौम्यैर्दृष्टिद्यूने गमागमः ।
स्त्रीराशिमूर्तिगैस्तैस्तु दृष्टे वा स्त्रीगृहांशके ॥ ८३८ ॥
स्त्रीप्राप्तिर्व्यस्तयोगैस्तु लाभस्तासां वरस्य च ।
लग्नेश्वरो वरश्चिन्त्यो नारी च द्यूनपा मता ॥ ८३९ ॥
लग्ने पुष्टे वरः श्रीमान् द्यूने पुष्टे च कन्यका ।
वित्ते पुष्टे स्वयं भर्ता दत्ते पत्न्यै धनं बहु ॥ ८४० ॥
छिद्रे पुष्टे वधूर्दत्ते स्वभर्त्रे स्नेहतो धनम् ।
समृद्धौ छिद्रवित्तौ द्वावुभौ दत्तो वधूवरौ ॥ ८४१ ॥
सक्रूरे वित्तगेहे तु समृद्धौ वधूवरौ ।
ससौम्ये वित्तगेहे तु समृद्धौ तौ परस्परम् ॥ ८४२ ॥
मित्रक्षेत्रे च तौ प्रीतौ यावज्जीवं क्रियापरौ ।
शत्रुक्षेत्रगतौ द्वौ तु बद्धवैरौ निरात्मकौ ॥८४३॥

---

शुभ ग्रह केन्द्र त्रिकोण स्थान में होकर सप्तम स्थान को देखते हों तो स्त्री का आगमन होता है. यदि कन्या लग्न हो उस में शुभ ग्रह का योग अथवा दृष्टि हो वा कन्या राशि के नवमांश में हो ॥ ८३८ ॥

तो स्त्री की प्राप्ति होती है और स्त्री की कुण्डली में इसका विपरीत योग हो तो उसको वर का लाभ होता है। लग्नेश को वर और सप्तमेश से स्त्री का विचार करें ॥ ८३९ ॥

लग्न पुष्ट हो तो वर लक्ष्मीवान होता है, और सप्तम भाव पुष्ट हो तो कन्या लक्ष्मीरूपा होती है और धन भाव पुष्ट हो तो स्वामी अपनी स्त्री को बहुत धन देता है ॥ ८४० ॥

यदि अष्टम भाव पुष्ट हो तो स्त्री अपने स्वामी को प्रेम से बहुत धन देती है, और अष्टम, तथा धनभाव दोनों बलवान् हों तो दोनों परस्पर धन देते हैं ॥ ८४१ ॥

धन स्थान में पाप ग्रह हो तो स्त्री पुरुष दोनों को धन की इच्छा रहती है, और धन स्थान में शुभ ग्रह हो तो वधूवर दोनों परस्पर समृद्ध होते हैं ॥ ८४२ ॥

यदि लग्नेश, सप्तमेश, दोनों मित्र के घर में हों तो स्त्री पुरुष अपनी क्रिया में यावज्जीवन प्रेम पूर्वक रहते हैं, और दोनों यदि शत्रु के घर में हों तो दोनों का परस्पर वैर भाव रहता है ॥ ८४३ ॥

तुर्ये पुष्टे[1] पतिःस्वीयो[2] दत्ते परस्त्रिया धनम् ।
पदे सौम्ये निजा भार्या दत्ते जाराय सम्पदम् ॥ ८४४ ॥

तृतीयैकादशे ख्यातः प्रीतिर्वाच्या परस्परम् ।
अन्योन्यक्षेत्रगामित्वे तयोः प्रीतेः समानता ॥ ८४५ ॥

लग्ने गुरौ स्मरे शुक्रे नोढेन सुरतं मतम् ।
सुरूपाः पतयो बाह्याः सम्भवन्ति स्त्रियस्तदा ॥८४६॥

पतिप्राप्तिस्तु कन्यानां पुंलग्नैः पुंग्रहैरपि ।
द्रेष्काणैर्नरसंज्ञैस्तु स्यात्पुंग्रहनवांशकैः[3] ॥ ८४७॥

सप्तमे चन्द्रशुक्राभ्यां कन्याप्तिः स्याद्वरस्य च ।
सप्तमे सितचन्द्राभ्यां वरलाभोऽपि योषिताम् ॥ ८४८ ॥

---

यदि चतुर्थ स्थान पुष्ट हो तो स्वामी दूसरे की स्त्री को धन देता है और शुभ ग्रह पद स्थान में हो तो स्त्री जार को सम्पत्ति देती है ॥८४४॥

यदि लग्नेश, अष्टमेश, दोनों तृतीय, एकादश में हों तो बहुत ख्यात होता है और आपस में परस्पर प्रेम रहता है, और दोनों परस्पर एक दूसरे के घर में हों तो स्त्री पुरुष को परस्पर समान प्रेम होता है ॥ ८४५ ॥

यदि लग्न में गुरु हो और सप्तम में शुक्र हो तो नवोढ़ा के साथ सुरत कहना चाहिये । उस में स्त्री तथा पुरुष दोनों को बहुत सुन्दर कहना चाहिये ॥ ८४६ ॥

यदि पुरुष राशि लग्न हो तथा पुरुष ग्रह हो और पुरुष संज्ञक राशि का द्रेष्काण तथा नवमांश हो तो कन्या को पति की प्राप्ति होती है ॥ ८४७ ॥

वर की कुण्डली में सप्तम में चन्द्रमा, शुक्र हो तो वर को कन्या प्राप्ति होती हैं और स्त्री की कुण्डली शुक्र, चन्द्रमा, यदि सप्तम में हो तो वर लाभ होता है ॥ ८४८ ॥

---

1· तुष्टे for पुष्टे A. 2. पतिः स्त्रीयो Bh पतिस्त्रियो mss·
3· ०के for ०कैः A.

लाभे शुक्रेन्दुदेवेज्ययुक्ते कन्या स्वहस्तगा ।
कन्याया रमणो रम्यो लाभे सौम्ययुतेक्षिते ॥ ८४९ ॥
दौस्थ्यं[1] कन्यावरादीनां तल्लग्नेशोदयादिभिः ।
उच्चकेन्द्रस्वमित्रस्थैः सौम्ययुक्तेक्षितैः शुभम्[2] ॥ ८५० ॥

इत्याये कन्यालाभप्रकरणम् ।

अथ नष्टलाभप्रकरणं द्वितीयवारं कथ्यते ।
लाभवन्नष्टलाभस्य सम्यग् ज्ञानं प्रकाशितम् ।
निजानुभावसंवादाद्विशेषः कोऽपि कथ्यते ॥ ८५१ ॥
पुष्टश्चन्द्रः शुभो वापि दृष्टः शीर्षोदये शुभैः ।
गतप्राप्तिं करोत्येवं लाभे वा सबलैः शुभैः ॥ ८५२ ॥
वित्ते तुर्येऽनुजे पुत्रे षष्ठे वा शुभदः खगः ।
विधत्ते गतलाभं तु क्रूरैस्तत्र विपर्ययः ॥ ८५३ ॥

---

लाभ स्थान में शुक्र, चन्द्रमा, बृहस्पति हो तो कन्या को अपने हाथ में समझना चाहिये, लाभ स्थान में शुभ ग्रह का योग तथा दृष्टि हो तो कन्या का सुन्दर रमण होता है ॥ ८४९ ॥

लग्नेश और सप्तमेश का उदय हो तो कन्या वर को स्वस्थ कहना चाहिये, और वे यदि उच्च, केन्द्र, या मित्रादि गृह में स्थित हों तथा शुभ ग्रहों से देखे जाते हों तो दोनों को शुभ कहना चाहिये ॥८५०॥

इत्याये कन्यालाभप्रकरणम् ॥

अथ नष्ट लाभप्रकरण द्वितीयवारं कथ्यते ।

लाभ की तरह नष्ट लाभ का ज्ञान सम्यक् प्रकाश किया । अब अपने भावों के अनुसन्धान से कुछ विशेष कहते हैं ॥ ८५१ ॥

पुष्ट चन्द्रमा या शुभ ग्रह शीर्षोदय में हो और शुभ ग्रहों से देखे जाँय वा लाभ स्थान में बलवान् शुभ ग्रह हो तो नष्ट वस्तु का लाभ होता है ॥ ८५२ ॥

धन, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, वा षष्ठ भाव में शुभ ग्रह हों तो नष्ट वस्तु का लाभ होता है, यदि इन स्थानों में पाप ग्रह हो तो लाभ नहीं होता है ॥ ८५३ ॥

---

1 सौस्थ्यं for दौस्थ्यं Bh, 2. शुभैः for शुभम् Bh·

लग्नद्यूनांशयोः[1] संगे नष्टं कष्टेन लभ्यते ।
लग्नेशे शुभसंयुक्ते लब्धिः क्रूरयुतेन हि ॥ ८५४॥
लग्ने लग्नेशसंयुक्ते द्यूनपो नष्टलाभदः ।
स्मरं गते तु लग्नेशे नष्टलाभो न दृश्यते ॥ ८५५॥
शुभयुक्ते विधौ पूर्णे तुर्ये वित्ते च लभ्यते ।
सार्के चन्द्रे स्मरे लाभे वक्रिणि द्यूनपे नहि ॥ ८५६ ॥
द्यूनपे लग्नमायाते नष्टं चौरः प्रयच्छति ।
चन्द्रे क्रूरयुते नष्टं चौरेभ्योऽपि प्रणश्यति ॥ ८५७ ॥
अस्तपे शुभसंयुक्ते केन्द्रे नष्टस्य लब्धयः ।
द्यूनस्वामिप्रणाशे तु चौर्येशोऽपि मरिष्यति ॥ ८५८ ॥
वक्रिणि द्यूनपे प्राप्तिः स्वस्थे मार्गस्थिते नहि ।
लग्नास्तपयुते नष्टं भूपायत्तं पदेश्वरे ॥ ८५९ ॥

---

लग्न, तथा सप्तम, भाव के नवमांश का योग हो तो नष्ट वस्तु का कष्ट से लाभ होता है, लग्नेश शुभ ग्रह से युक्त हो तो लाभ होता है और क्रूर ग्रह से युक्त हो तो लाभ नहीं होता है ॥ ८५४ ॥

सप्तमेश से युक्त लग्नेश लग्न में हो तो नष्ट वस्तु का लाभ होता है, और लग्नेश, सप्तम में हो तो नष्ट वस्तु का लाभ नहीं होता है ॥ ८५५ ॥

शुभ ग्रह से युक्त पूर्ण चन्द्रमा चतुर्थ, तथा धन भाव में हो तो नष्ट वस्तु का लाभ होता है, और सूर्य से युक्त चन्द्रमा सप्तम भाव में हो तो लाभ होता है इस में यदि द्यूनेश वक्री हो तो नहीं होता है ॥ ८५६ ॥

यदि द्यूनेश लग्न में हो तो नष्ट वस्तु चोर दे देता है, और चन्द्रमा पाप ग्रह से युक्त हो तो वह नष्ट वस्तु चोर के पास से भी नष्ट हो जाती है ॥ ८५७ ॥

सप्तमेश शुभ ग्रहों से युक्त होकर केन्द्र में हो तो नष्ट वस्तु का लाभ होता है, और सप्तमेश नष्ट हो तो चोर भी मर जाता है ॥ ८५८ ॥

सप्तमेश वक्री हो तो नष्ट वस्तु का लाभ नहीं होता है और वह स्वस्थ तथा मार्गी हो तो उस वस्तु का लाभ होता है यदि पद स्थान के स्वामी लग्नेश, अष्टमेश से युक्त हों तो वह नष्ट वस्तु राजा के अधीन होती है ॥ ८५९ ॥

---

1. द्यूनांशसंयोगे for ॰द्यूनांशयोः संगे A.

स्वामी नष्टस्य लग्नेशश्चौरो धूनपतिर्भवेत् ।
चन्द्रार्को नष्टवित्तस्य ततस्तेभ्यो विनिर्णयः ॥ ८६० ॥
स्थिरषड्वर्गबाहुल्ये सौम्ययोगे विलोकिते ।
प्रपश्यति न तन्नष्टं नष्टं चेत्स्वामिना हृतम् ॥ ८६१ ॥
लग्ने मृगाख्यो मिथुनः स मेषः शुभाश्रयोऽसौ दशमोपगश्च ।
नष्टस्य लाभं कुरुते सदैव बलाद्[1]वियुक्तो बलदृष्टिपुष्टः ॥८६२॥
शुभेक्षिता वृश्चिकमेषकन्याकर्का भवेयुर्यदि कर्मसंस्थाः ।
प्रनष्टलब्धिः प्रथमश्चरो रो (?) शुभोदया वा भवनाय जन्तोः
छिद्रे चौरो धने वस्तु सप्तमे वस्तुसंस्थितिः ।
एवंगत[2]परिज्ञाने गत[3]स्थानविनिश्चयः ॥ ८६४

लग्नेश, नष्ट का स्वामी, और द्यूनेश चोर के स्वामी और चन्द्रमा, सूर्य, नष्ट वस्तु का, इस लिये इन सब के बलाबल के अनुसार नष्ट वस्तु का निर्णय करें ॥ ८६० ॥

प्रश्न काल में स्थिर राशि के षड्वर्ग की विशेषता हो और शुभ ग्रहों का योग तथा दृष्टि हो तो उस वस्तु को नष्ट नहीं कहना चाहिये यदि नष्ट भी हो तो उसके मालिक ने उस वस्तु को हरण कर लिया है ऐसा कहना चाहिये ॥ ८६१ ॥

यदि मकर, मिथुन, वा मेष लग्न हो और उसका शुभ ग्रहों से सम्बन्ध हो, तथा शुभ ग्रह दशम स्थान मे हों तो बलवान् तथा शुभ ग्रहों की दृष्टि से पुष्ट हो तो नष्ट वस्तु का लाभ होता है ॥ ८६२ ॥

यदि दशम भाव मे वृश्चिक, मेष, कन्या, कर्क, राशि हो और शुभ ग्रह से दृष्ट हो, चर राशि लग्न हो और शुभ ग्रह से सम्बन्ध हो तो नष्ट वस्तु का लाभ होता है ॥ ८६३ ॥

अष्टम, भाव से चोर, धन भाव से वस्तु, सप्तम से वस्तु की संस्थिति, इन स्थानों के परिज्ञान से गत स्थान का निश्चय करें ॥ ८६४ ॥

1. शुभाद् for बलाद् A. 2. गति for गति Bh. 3. वस्तु for गत Bh.

स्थिरलग्ने स्थिरे भागे वर्गोत्तमनवांशके ।
स्थितं तत्रैव तद् द्रव्यं स्वकीयेनैव चोरितम् ॥ ८६५ ॥
द्विशरीरे गृहबाह्ये गृहनिकटनिवासिना हृतं द्रव्यम् ।
स्थिरराशौ तत्रस्थं चरराशौ निर्गतं बहिर्भवनात् ॥ ८६६ ॥
धिषणादष्टमे सौम्ये नष्टप्रश्नेऽथ धिष्ण्यके ।
वेगेन लभ्यते नष्टं दीप्तत्वेन विशेषतः ॥ ८६७ ॥

इति लाभे नष्टलाभप्रकरणम् ॥

अथ लाभप्रकरणम् ॥

त्रयं त्रयं दिवारात्रावन्धं द्वयं द्वयं पुनः ।
बधिरं चैककं पंगुर्मेषाद्येवं विचारयेत् ॥ ८६८ ॥
चन्द्रलग्नेशवित्तेशा युतदृष्टाः परस्परम् ।
वित्तलग्नत्रिकोणस्थाः सद्यो लाभकरा मताः ॥ ८६९ ॥
एवं केन्द्रे शुभाः सर्वे सद्यो लाभकरा मताः ।
क्रूराः कुर्वन्ति दारिद्र्यं त्रिकोणे कण्टके स्थिताः ॥ ८७० ॥

---

स्थिर लग्न हो स्थिर राशि का अंश हो और वर्गोत्तम नवमांश में हो तो वहीं पर उस वस्तु को स्थित कहना चाहिये वा स्वयं उसकी चोरी करवा दिया हो ऐसा फल कहना चाहिये ॥ ८६५ ॥

द्विः स्वभाव राशि लग्न हो तो घर के बाहर उसके समीपवर्त्ती लोगों ने धन हरण किया ऐसा कहना चाहिये, स्थिर राशि में वहीं पर चर राशि में घर से बाहर द्रव्य कहना चाहिये ॥ ८६६ ॥

नष्ट प्रश्न में सूर्य से अष्टम शुभ ग्रह हो तो शीघ्र नष्ट वस्तु का लाभ होता है । दीप्त अवस्था में विशेष करके लाभ होता है ॥ ८६७ ॥

इति लाभे नष्टलाभप्रकरणम् ॥

अहोरात्रि में मेषादि क्रम से तीन तीन राशि अन्ध, तथा दो दो राशि बधिर एक, एक राशि पंगु, होता है ऐसा विचार करें ॥ ८६८ ॥

चन्द्रमा, लग्नेश, और धनेश, ये परस्पर युत या दृष्ट होकर धन, लग्न, पञ्चम, नवम, में हों तो सद्यः लाभ होता है ॥ ८६९ ॥

इस प्रकार केन्द्र मे सब शुभ ग्रह हों तो सद्यः लाभ होता है और पाप ग्रह यदि केन्द्र, त्रिकोण, स्थित हों तो दरिद्र होता है ॥ ८७० ॥

शुभः स्वोच्चादिगो मूर्तौ धने राज्येऽथवा स्थितः ।
कुर्याल्लाभं क्षणादेवमेवं पुण्यं शुभेक्षितम् ॥ ८७१ ॥
गुरौ लग्ने रवौ राज्ये द्यूने सौम्येऽथवाऽम्बरे ।
लाभो लाभास्तगैः सौम्यैः पापैस्त्रिमध्यगैस्तथा ॥ ८७२ ॥
उच्चगेहे धनेऽप्युच्चे लग्ने तुंगे शुभेक्षिते ।
पुष्टे त्वायगते चन्द्रे लाभो भवति तत्क्षणात् ॥ ८७३ ॥
लग्ने लग्नेशसंयुक्ते लाभेशेऽभ्युदिते तदा ।
स्वोच्चे वा यातुकामे वा लाभो भवति सम्पदाम् ॥ ८७४ ॥
लाभे लाभेशसंहृष्टे लाभे शुक्रे गुरौ विधौ ।
लाभो भवति तत्कालं स्वस्यान्यस्य श्रिया समम् ॥ ८७५ ॥
लग्ने तुंगे सुखे तुंगे तुंगे पुत्रे शुभेक्षिते ।
तुंगे च लाभगे शुक्रे ग्रामदेशादि लभ्यते ॥ ८७६ ॥

---

शुभ ग्रह स्वोच्चादि में स्थित होकर लग्न धन, वा राज्य, स्थान में स्थित हों तो उसी क्षण लाभ कहना चाहिये यदि पुण्य स्थान शुभ ग्रह देखे तो भी लाभ होता है ॥ ८७१ ॥

गुरु लग्न में हो रवि राज्य स्थान में हो और शुभ ग्रह सप्तम वा दशम में हो तो लाभ होता है, और शुभ ग्रह यदि लाभ, तथा सप्तम में हो तथा पाप ग्रह तृतीय, मध्य में हो तो लाभ होता है ॥ ८७२ ॥

शुभ ग्रह उच्च का होकर, धन में तथा लग्न में हो, और शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तथा पुष्ट चन्द्रमा लाभ स्थान में हो तो उसी समय लाभ होता है ॥ ८७३ ॥

लग्नेश लग्न में हो, तथा लाभेश अभ्युदित होकर उच्च में स्थित हो वा उस मे आने वाला हो तो सम्पत्ति का लाभ होता है ॥ ८७४ ॥

लाभ स्थान लाभेश से युक्त हो तथा लाभ स्थान में शुक्र, गुरु, चन्द्रमा, हो तो उसी समय अपना या दूसरे का धन से लाभ होता है ॥ ८७५ ॥

शुभ ग्रह उच्च का होकर लग्न, चतुर्थ, तथा पञ्चम भाव में और शुक्र उच्च का होकर लाभ स्थान में हो इन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो देश अथवा ग्राम का लाभ होता है ॥ ८७६ ॥

मिथुने लाभगेहे तु चन्द्रे तत्रैव संस्थिते ।
बुधस्यात्यन्तवैरित्वाल्लाभो भवति वाल्पकः[1] ॥ ८७७ ॥

स्वगृहे मित्रगेहे च तुंगे गेहे तदोदिते ।
चन्द्रदृष्टे भवेल्लाभो लाभगेहे तु संपदाम् ॥ ८७८ ॥

मकबूले महायोगे मुंथसिलार्कमिश्रिते ।
ग्रहैः सर्वेषु योगेषु लाभो भवति पृच्छताम् ॥ ८७९ ॥

चरलग्ने शुभैर्युक्ते लाभे चन्द्रबलाधिके ।
त्रिकोणकेन्द्रगैः खेटैर्लाभो भवति निश्चितः ॥ ८८० ॥

यत्रान्यलाभयोगो न भवति नच संभवति[2] शुभदृष्टम् ।
न तत्रान्वितलाभः प्रष्टुर्गणकेन निर्देश्यः ॥ ८८१ ॥

यो यो भावो भवेत्पुष्टो द्वादशक्षेत्रमध्यगः ।
तस्माद्धनादिपुत्रादिलाभो भवति तद्विधः ॥ ८८२ ॥

मिथुन लाभ स्थान में उस मे चन्द्रमा स्थित हो तो बुध के अत्यन्त शत्रु के कारण लाभ वा अल्प लाभ होता है ॥ ८७७ ॥

कोई भी शुभ ग्रह स्वगृह, वा मित्र के घर, उच्च, का होकर लाभ स्थान में हो और उदित हो, और उस पर चन्द्रमा की दृष्टि हो तो सम्पत्तियों का लाभ होता है ॥ ८७८ ॥

मकबूल महायोग में, तथा सूर्य से युक्त मुथसिल हो, इसतरह सब ग्रहों के योग में प्रश्न कर्त्ता को लाभ होता है ॥ ८७९ ॥

चर लग्न हो उस में शुभ ग्रह स्थित हो और बलवान् चन्द्रमा लाभ स्थान में हो और ग्रह केन्द्र त्रिकोण में स्थित हो तो निश्चय लाभ होता है ॥ ८८० ॥

जहां पर और प्रकार का लाभ योग नहीं हो तथा शुभ ग्रहों की दृष्टि भी नहीं हो वहां लाभ नहीं कहे हैं ॥ ८८१ ॥

द्वादश भावों में जो जो भाव बलवान् हो उसी भाव के द्वारा उस प्रकार धनादि पुत्रादि का लाभ होता है ॥ ८८२ ॥

1. चालकः for वाल्पकः Bh· 2. नवसंस for A. नवसं नवमंच Bh·

क्रियते केवलादर्शस्त्रैलोक्यस्य प्रकाशकः ।
श्रीमद्देवेन्द्रशिष्येण श्रीहेमप्रभसूरिणा ॥ ८८३ ॥

इति लाभप्रकरणम् ॥

दिनचर्याफलं वच्मि दुर्बोधं विदुषां सदा ।
अंशकस्थैर्ग्रहैः सर्वैः क्षणे क्षणे सकौतुकम्[1] ॥ ८८४ ॥
मदीयस्यास्य शास्त्रस्य यो नाम चोरयिष्यति ।
गोहत्यादिकृतं पापं तस्य सर्वं भविष्यति ॥ ८८५ ॥
दिनफले ग्रहाः सर्वे सुसंचार्या नवांशकाः ।
मासफले नवांशस्था रविशुक्रबुधा अपि ॥ ८८६ ॥
दृग् वाच्या दिनचर्यायां विंशतिश्च विंशोपकाः[2] ।
दिने मासे फले चैवं नान्या दृष्टिर्विलोक्यते ॥ ८८७ ॥
दिनेन्दौ तुर्यगे सौमे तद्दिने भव्यभोजनम् ।
चन्द्रे पुष्टे सुखं[3] पुष्टं क्रूरयुक्ते विपर्ययः ॥ ८८८ ॥

श्रीमान् देवेन्द्र के शिष्य हेमप्रभसूरि ने त्रैलोक्य प्रकाश का केवलादर्श किया ॥ ८८३ ॥

अंशों मे स्थित ग्रह पर से क्षण क्षण में आश्चर्ययुक्त दिनचर्या फल को कहते हैं। जो कि पंडितों के लिये भी सर्वदा दुर्बोध है ॥ ८८४ ॥

जो मनुष्य हमारे इस शास्त्र को चुरायगा उसको गोहत्याकृत सब पाप होगा ॥ ८८५ ॥

दिन फल में सब ग्रहों को नवमांश में संचारण करके फल कहें एवं मासफल में नवांश में स्थित रवि, शुक्र, बुध का भी विचार करें ॥ ८८६ ॥

दिनचर्या फल में विंशोपक दृष्टि कहनी चाहिये। दिन तथा मास के फल में अन्य दृष्टि का विचार नहीं करते हैं ॥ ८८७ ॥

सोम दिन में चन्द्रमा चतुर्थ में हो तो सुन्दर भोजन कहना चाहिये। चन्द्रमा पुष्ट हो तो सुख पुष्ट कहें और पाप ग्रह के योग से विपरीत होता है ॥ ८८८ ॥

1. नवफलम् for सकौतुकम् Bh· 2· विंशापकाः mss· 3. सुखं for मुखं Bh.

प्रातः प्रश्नेषु संचार्यो नवांशेऽभ्युदितः शशी ।
धनांशे शुभदे दृष्टे धनं दत्ते सुभोजनम् ॥ ८८९ ॥
सहजांशे वरं वक्ति भोज्यं दत्ते न किञ्चन ।
तुर्यांशके महाभोज्यं सुतांशे तनयान् धनान् ॥ ८९० ॥
षष्ठांशे रोगसंतापं सप्तमे प्रमदासुखम् ।
अकस्मान्निर्वृतेःकर्त्री वार्ता पतति कर्णयोः ॥ ८९१ ॥
दिनेन्दौ सप्तमे शुक्रे गुरुज्ञसहिते वदेत् ।
वरस्त्रीभिर्महासौख्यं पञ्चदशघटीलयम् ॥ ८९२ ॥
दिनेन्दावष्टमे कस्माद्[1]रोगोद्धरणकं मृतिः ।
क्रूरद्वयस्य मध्यस्थे बन्धनं निबिडं वदेत् ॥ ८९३
राहौ वाथ कुजे क्रूरे परस्मिन्नपि खेचरे ।
अष्टमे स्वगृहेत्रैव दिनचन्द्रेऽसिना वधः ॥ ८९४ ॥

---

प्रातःकाल के प्रश्न में अभ्युदित चन्द्रमा को नवांश में संचार करके फल कहें, यदि चन्द्रमा धन भाव के नवांश में और शुभ दृष्टि हो तो धन और सुन्दर भोजन देता है ॥ ८८९ ॥

सहज भाव के अंश मे सुन्दर बात कहें किन्तु भोजन कुछ नहीं मिले, और चतुर्थभाव के अंश मे खूब सुन्दर भोजन मिले, पुत्र भाव के अंश में पुत्र और धन की प्राप्ति हो ॥ ८९० ॥

षष्ठ भाव के अंश मे रोग, संताप, होता है, सप्तम भाव के अंश में स्त्रीसुख होता है, और अकस्मात् निर्वृत्तिक करने वाली बात कान में सुनाई दे ॥ ८९१ ॥

दिन चर्या में चन्द्रमा, शुक्र, गुरु, बुध, ये साथ होकर सप्तम में हो तो सुन्दरी स्त्री से पन्द्रह घटी तक बहुत सुख होता है ॥ ८९२ ॥

दिनचर्या में चन्द्रमा अष्टम में हो तो अकस्मात् रोग हो जिस से मरण हो जाय, यदि दो पापग्रह के मध्य में हों तो दृढ़ बन्धन कहें ॥ ८९३ ॥

अष्टम में राहु, या मंगल, वा और कोई पाप ग्रह स्वगृही में हों इसी में चन्द्रमा हो तो शस्त्र से वध कहें ॥ ८९४ ॥

---

1. कन्या स्या० for कस्मा A, A[1],

सिंहे सिंहांशके सूर्ये चन्द्रे तत्रैव संस्थिते ।
मृगलग्नोदये जाते तद्दिने चासिना वधः ॥ ८९५ ॥
मृगे मृगांशके सौरे चन्द्रे तत्रैव संस्थिते ।
प्रश्ने च मिथुने जाते दिनचन्द्रेऽसिना वधः ॥ ८९६ ॥
दिनेन्दौ सिंहपूजादि तीर्थस्नानं च दक्षिणा[1] ।
पुण्यांशे जायते पुंसामकस्माद्विभवोदयः ॥ ८९७ ॥
दिनेन्दौ दशमेऽकस्मात्पुंसां भवेत् पदं महः[2] ।
गुरौ शुक्रे पदेशे च रवियुक्ते नृपात्पुनः ॥ ८९८ ॥
दिनेन्दौ लाभगे वाच्यं पञ्चदशघटीलयम् ।
सकलैः खेचरैर्युक्ते निधिवस्त्रादिसम्पदम्[3] ॥८९९॥
व्ययगे च शुभैर्युक्ते विवाहादौ च सद् व्ययम् ।
दिनेन्दौ पृच्छतां क्रूरैर्धने व्यये च लग्नतः ॥९००॥

---

सिंह और सिंह के अंश में सूर्य, चन्द्रमा हो और मृगशिरा लग्न हो तो उसी दिन शस्त्र से वध कहना चाहिये ॥ ८९५ ॥

प्रश्न काल में मिथुन लग्न हो उस में चन्द्रमा स्थित हो या मृगशिरा, या मृगशिरा के अंश में शनि हो उस में चन्द्रमा हो तो शस्त्र से वध कहना चाहिये ॥ ८९६ ॥

दिनचर्या प्रश्न में चन्द्रमा सिंह में हो तो उस दिन पूजा, पाठ, तीर्थ स्नान, दक्षिणा, इत्यादि करते हैं। और यदि पुण्य भाव के अंश में हो तो अकस्मात् विभव का उदय होता है ॥ ८९७ ॥

चन्द्रमा यदि दशम में हो तो पुरुष को अकस्मात् पद का लाभ होता है। गुरु, शुक्र और पदेश, यदि रवि से युक्त हो तो राजा से पद का लाभ होता है ॥ ८९८ ॥

चन्द्रमा लाभ में हो तो पन्द्रह घटी लय होता है और सब शुभ ग्रहों से युक्त हो तो निधि, तथा वस्त्रादि सम्पत्ति प्राप्त होती है ॥ ८९९ ॥

---

1. दक्षिणे for दक्षिणा Bh. 2. महत् for महः Bh. 3. सम्पदः for सम्पदम् Fh.

तत्कालं जायते रोधो बन्धार्थं वैरतोऽपि वा ।
अनाथे क्रूरगे लग्ने लाभे क्रूरयुतेक्षिते ॥९०१॥
दिनेन्दौ शस्त्रघातेन मृत्युयोगेन जीवति ।
यदीन्दुर्दिनचर्यायां शुभः स्यादुदयास्तयोः ॥९०२॥
श्रेयांस्तदापि वक्तव्यः समस्तोऽपि हि वासरः ।
लग्ननाथे शुभैर्युक्ते लाभस्थाने सिते गते ॥९०३॥
दिनेन्दौ शस्त्रघातेन मृत्युयोगेऽपि जीवति ।
यत्रांशेऽभ्युदितो भास्वान् स संचार्यो नवोदिते ॥९०४॥

अथ रविवशात्फलम् ।

विबुधैः सग्रहे लग्ने ततो मासफलं वदेत् ।
मासफले च सचार्यो रविर्द्वादशभावतः ॥९०५॥

---

व्यय स्थान में शुभ ग्रह हो तो विवाहादि शुभ कार्यों में सद् व्यय होता है, और प्रश्न काल में चन्द्रमा क्रूर ग्रहों के साथ धन, व्यय, लग्न, में हो ॥ ६०० ॥

तो उस काल में शत्रु से बन्धन के लिये अवरोध होता है, अपने स्वामी को छोड़ कर और पाप ग्रह लग्न में हो, तथा लाभ स्थान में पाप ग्रह का योग या दृष्टि हो ॥ ६०१ ॥

पूर्वोक्त योग में चन्द्रमा भी लाभ भवन में हो तो शस्त्र के घात से मृत्यु योग होने पर बच जाता है, यदि दिनचर्या में चन्द्रमा, उदय अस्त में शुभ हो ॥ ६०२ ॥

तो भी सम्पूर्ण दिन श्रेष्ठ कहना चाहिये, लग्नेश, शुभ ग्रहों से युक्त हो और शुक्र, लाभस्थान में हो ॥ ६०३ ॥

उस पूर्वोक्त योग में चन्द्रमा भी लाभ स्थान में हो तो शस्त्र घात से मृत्यु योग होने पर भी जीता है। जिस अंश में सूर्य उदित हो उस उस नवोदित अंश से सूर्य का संचार करें ॥ ६०४ ॥

यदि लग्न ग्रह से युक्त हो तो उस से पंडित लोग मास फल को कहें, मास फल के लिये सूर्य को द्वादश भाव में संचार करें ॥ ६०५ ॥

रवेरंशे च जायन्ते सत्रिभागा दिनास्त्रयः ।
यत्रांशेऽभ्युदितो भास्वान् तदंशकपते रवेः ॥९०६॥
मित्रता चेद् द्युतिदृष्टिर्भवेत्सदा शुभं बहु ।
एवं सर्वग्रहैर्योज्यमुच्चस्वमित्रसङ्गमः ॥९०७॥
तदनुसारेण सर्वत्र फलं वाच्यं शुभाशुभम् ।
मूर्तौ रवौ प्रतापाढ्योऽप्यधृष्यो द्विषतां पुनः ॥९०८॥
धने च धननाशं च तृतीये क्रूरभाषकः ।
तुर्ये भोजनदौस्थ्यं तु सुते पुत्रस्य पीडनम् ॥९०९॥
षष्ठे शत्रुविनाशः स्यात्सप्तमे न[1] धृतिर्भवेत् ।
आधिव्याधिधने छिद्रे नवमे पुण्यविप्लवः ॥९१०॥
महत्पदं भवेद्राज्ये स्वल्पो लाभो हि लाभगे ।
भूपादण्डो व्यये वाच्योंऽशकादिकविचारणा ॥९११॥
द्वादशराशिगो भास्वान् वने वर्षफलंस्फुटम् ।

---

रवि के अंश में त्रिभाग युक्त तीन दिन होते हैं, जिस अंश में सूर्य का उदय हो उस अंश के स्वामी से यदि सूर्य की मित्रता या द्युति दृष्टि हो तो अनेक प्रकार का शुभ होता है इस प्रकार सब ग्रहों का उच्च, स्वगृह, तथा मित्रादि योगों का विचार करें ॥ ६०६—७

और उसके अनुसार सब जगह शुभाशुभ फल कहें, यदि लग्न में सूर्य हो तो वह प्रतापी भी हो तो धृष्ट तथा शत्रुता का भाव उसमें होता है ॥ ६०८ ॥

यदि धन स्थान में हो तो धन का नाश करने वाला होता है, और तृतीय में दुष्ट बात बोलने वाला होता है, और चतुर्थ में हो तो भोज में दुःस्थिति होती है, पुत्र स्थान में हो तो पुत्र को पीड़ा होती है ॥ ६०६ ॥

और षष्ठ स्थान में शत्रु का नाश होता है, और सप्तम में हो तो अधैर्य्य वाला होता है. अष्टम में हो तो मानसिक व्याधि तथा धन होता है, नवम में पुण्य की हानि होती है ॥ ६१० ॥

राज्य स्थान में विशिष्ट पद की प्राप्ति होती है और लाभ में हो तो स्वल्प लाभ होता है, व्ययस्थान में राजा से दण्ड होता है ऐसे अंशादिक विचार करें ॥ ६११ ॥

---

1. च for न Bh·

अथ गुरुफलम् ।

गुरुणा भावगे नैवं द्वादशाब्दफलं वदेत् ।
प्रतिवर्षं स संचार्यो बुधैर्द्वादशराशिषु ॥९१२॥
बृहस्पतिर्धनुर्मीने कर्के सिंहेऽन्त्यजेऽलिनि ।
कुरुतेऽप्युत्तमं लाभं मासत्रयोदशावधि ॥९१३॥
गुरुर्मूर्तौ जयं दत्ते धनवृद्धिं धनस्थितः ।
तृतीये मधुरं ब्रूते तुर्ये भोज्यं धनं घनम् ॥९१४॥
कान्तासुखं धनावाप्तिर्वाटिका भूमिकर्षणम् ।
कुटुम्बं मित्रसौख्यं च कुरुते हायनावधि ॥९१५॥
सुतेऽवश्यं सुतं दत्ते प्रतापं बुद्धिवैभवम् ।
षष्ठे रोगं रिपोर्वृद्धिं कुरुते स्वफलावधि ॥९१६॥
सप्तमे ललनासौख्यं शुक्रज्ञेन्दुयुते बहु ।
अष्टमे निश्चिता रोगाः पुण्ये[1] सत्रादि[2] कारयेत् ॥९१७ ॥

द्वादश राशियों में सूर्य के वश स्पष्ट वर्ष फल कहते हैं, इसी तरह द्वादश भावों मे गुरु के वश द्वादशाब्द का फल कहते हैं ॥ ६१२ ॥

प्रतिवर्ष पंडित लोग द्वादश राशियों में गुरु का संचार करके फल कहें ॥

बृहस्पति यदि धनु, मीन, कर्क, सिंह, मेष, वृश्चिक, इन राशियों में हो तो त्रयोदश मास पर्यन्त उत्तम लाभ होता है ॥ ६१३ ॥

बृहस्पति, लग्न मे हो तो जय, धन में हो तो धन की वृद्धि, तृतीय में हो तो मधुर वाक्य होता है। चतुर्थ में सुन्दर भोजन और बहुत धन होता है ॥ ६१४ ॥

और स्त्री सुख, धन की प्राप्ति, वाटिका, भूमिकर्षण तथा कुटम्ब, मित्रों का सौख्य वर्षपर्यन्त होता है ॥ ६१५ ॥

सुत स्थान मे अवश्य ही पुत्र, प्रताप, तथा बुद्धि वैभव होता है, और षष्ठ मे रोग, शत्रु की वृद्धि अपने फल पर्यन्त करते हैं ॥ ६१६ ॥

सप्तम मे स्त्री का सौख्य और वह शुक्र, बुध, चन्द्रमा से युक्त हो तो उस से विशेष सौख्य होता है, अष्टम में निश्चित रोग होता है और पुण्य भाव में हो तो सत्रादिक कराता है ॥ ६१७ ॥

---

1. पुण्ये for पुष्ये A. 2. पुण्ययात्रादि for पुष्ये सत्रादि Bh.

पदेऽवश्यं पदाधिक्यं सर्वलाभं तु लाभगः ।
धर्माद् व्ययं व्यये दत्ते नीचादौ[1] स्वल्पकं फलम् ॥९१८॥

इति गुरुफलम् ।

सौभाग्यं स्यात्सिते मूर्तौ सविभागमहस्त्रयम् ।
धने ध्रुवं धनाधिक्यं तृतीये भ्रातृपोषणम् ॥९१९॥
तुर्ये परस्त्रिया भोगो भोज्यं च सुरसं घृतात् ।
पञ्चमे बुद्धिसम्पत्तिः षष्ठे कुटुम्बविग्रहः ॥९२०॥
सप्तमे स्त्रीद्वयाश्लेषोऽप्यष्टमे श्लेषसंभवः ।
धनोत्पत्तिः स्वपत्नीभ्यः सविभागमहस्त्रयम् ॥९२१॥
पुण्ये[2] सत्रप्रपादानमकस्माद् धनलब्धयः ।
पदे स्वोच्चे शुभैर्युक्ते राज्यं प्राज्यं ध्रुवं मतम् ॥९२२॥

पद स्थान में यदि गुरु हो तो पद का आधिक्य होता है और लाभ में हो तो सब तरह का लाभ होता है, और व्यय स्थान में हो तो धर्म मार्ग में व्यय होता है, और वह गुरु यदि नीचादि में हो तो अल्प फल होता है ॥ ९१८ ॥

यदि शुक्र, लग्न में हो तो अपने विभागों के तीन दिन सौभाग्य होता है, और धन स्थान में हो तो धन का आधिक्य होता है तृतीय में हो तो भाई का पालन करता है, ॥ ९१९ ॥

चतुर्थ में शुक्र हो तो दूसरी स्त्री के साथ भोग करे और घृत आदि के सुन्दर रस युक्त भोजन मिले, यदि पञ्चम में हो तो बुद्धि, सम्पत्ति, होती है, और षष्ठ में हो तो कुटुम्ब का विग्रह होता है ॥ ९२० ॥

सप्तम में हो तो दो स्त्री से आश्लेष होता है और अष्टम भाव में भी श्लेष का सम्भव तथा अपनी स्त्री से धन की उत्पत्ति, विभाग से युक्त तीन दिन पर्यन्त ये फल होते हैं ॥ ९२१ ॥

यदि शुक्र पुण्य भाव में हो तो यज्ञ तथा जलशाला दान इत्यादि से धन का लाभ होता है । यदि उच्च का शुक्र शुभ ग्रहों से युक्त हो कर पद स्थान में हो तो विशिष्ट राज्य अवश्य मिले ॥९२२॥

1. नीचे गुरौ for नीचादौ Bh. 2. पुण्ये for पुण्ये A., पुण्यो A.

लाभे शुक्रे महालाभः प्रतिवेश्म निधेरपि ।
व्यये तत्र महारंगात्स्त्रीरंगाच्च महाव्ययः ॥९२३॥

इति शुक्रफलम् ।

बुधे मूर्तौ सकौटिल्यो धने च कपटाद्धनम् ।
तृतीये कुटिला वाणी तुर्ये शिल्पिषु कौशलम् ॥९२४॥
पञ्चमे कुटिला बुद्धिः षष्ठे कुलादिविग्रहः ।
घ्ने कुटिलसंग्रामस्त्वष्टमे भोजनाद्रुजा ॥९२५॥
नवमे कपटाद् धर्मो दशमे शिल्पिनां पदम् ।
एकादशे भवेल्लाभः अन्ते पूर्वधनव्ययः ॥९२६॥

इति बुधफलम् ।

भौमः पञ्चदिनान्मूर्तौ स्वक्षेत्रे चोच्चगः शुभः ।
स्वहानिं तनुते वित्ते भौमः पञ्चदिनावधि ॥९२७॥

---

यदि लाभ स्थान में शुक्र हो तो निधि का भी महान लाभ होता है, प्रत्येक घर में विचार करें, यदि व्यय स्थान मे हो तो महान् रंग से या स्त्री के रंग से धन का व्यय होता है ॥६२३॥

इति शुक्रफलम्

यदि लग्न में बुध हो तो कुटिल होता है, और धनस्थान में हो तो कपट से धन प्राप्त करता है, तृतीय में हो तो उसकी कुटिल बात होती है, चतुर्थ में हो तो शिल्पकला में कुशल होता है ॥६२४॥

पञ्चम में हो तो उसकी कुटिल बुद्धि होती है, षष्ठ में हो तो विग्रह हो, सप्तम में हो तो कुटिलता से संग्राम होता है, अष्टम में हो तो भोजन से रोग होता है ॥६२५॥

नवम में हो तो कपटता से धर्म हो, दशम में हो तो शिल्पियों का पद प्राप्त करे, और एकादश में हो तो लाभ होता है, द्वादश में हो तो पूर्व धन का व्यय होता है ॥६२६॥

इति बुधफलम् ।

मंगल, यदि उच्च तथा स्वगृही का होकर लग्न में हो तो पांच दिनों में शुभ होता है, और वह यदि धन में हो तो पांच दिन पर्यन्त अपनी ही हानि करता है ॥६२७॥

तृतीये बन्धुभिर्युद्धं चतुर्थे भूमिकर्षणम् ।
पञ्चमे बुद्धिहानिं च षष्ठे स्वातन्त्र्यमुत्कटम् ॥९२८॥
सप्तमे ललनायुद्धमष्टमे तनुपातनम्[1] ।
नवमे पुण्यपीडां च दशमे मन्त्रिविग्रहम् ॥९२९॥
एकादशे निहन्त्यायुर्द्वादशे हठतो व्ययम् ।
स्वक्षेत्रे मित्रगेहे च स्वोच्चे च तनुते शुभम् ॥९३०॥

इति भौमफलम् ।

शनेर्मासत्रयं त्र्यंशे दारिद्र्यं कुरुते गृहे ।
धने हन्ति धनं गेहे तृतीये भ्रातृसम्पदम् ॥९३१॥
तुर्ये भोज्यश्रियं हन्ति पञ्चमे सुतपीडनम् ।
षष्ठे दुष्टान् रिपून् हन्ति सप्तमे हन्ति निर्वृतिम् ॥९३२॥

---

तृतीय में हो तो बन्धुओं के साथ युद्ध करता है, चतुर्थ मे भूमि कर्षण करता है, पञ्चम मे हो तो बुद्धि की हानि होती है, षष्ठ मे हो तो स्वतन्त्र तथा उत्कट होता है ॥९२८॥

सप्तम में हो तो स्त्री का युद्ध, अष्टम मे हो तो शरीर का पतन, नवम में पुण्य और पीड़ा होती है, और दशम में मन्त्री से विग्रह होता है ॥९२९॥

एकादश में हो तो आयु का नाश करता है, द्वादश में हो तो हठ से व्यय करता है, अपने घर, तथा मित्र के घर, या उच्च का मंगल हो तो शुभ फल देता है ॥९३०॥

इति भौमफलम् ॥

यदि शनि लग्न मे हो तो तीन मास पर्यन्त दरिद्र करता है, और धन में हो तो धन का नाश होता है, तृतीय में हो तो भ्रातृ सम्पत्ति का लाभ होता है ॥९३१॥

चतुर्थ में हो तो भोज्य और लक्ष्मी दोनों का नाश करता है, पञ्चम में हो तो पुत्र की पीड़ा, षष्ठ में हो तो दुष्ट शत्रुओं का नाश करता है, और सप्तम में हो तो वृत्ति का नाश करता है ॥९३२॥

---

1. तापनम् for पातनम् Bh.

अष्टमे तु सुखं हन्ति पुण्ये कुर्याज्जिनव्रतम् ।
पदेऽपि राजविध्वंसं लाभे हन्ति धनागमम् ॥९३३॥
व्ययेऽनिष्टव्ययं दत्ते स्वक्षेत्रे शुभकारकः ।
स्वोच्चे च मित्रभावे च शुभोऽयं तनुते शनिः ॥९३४॥

इति शनिफलम्

दिनेन्दौ तनुते राहुर्मासद्वयं तनोर्घनाम्[1] ।
पीडां करोति शस्त्राद्यैर्धने स्वं हन्ति तत्क्षणात् ॥९३५॥
तृतीये भ्रातरं हन्ति तुर्ये भोज्यकुटुम्बके ।
सुतेऽवश्यं घनान् पुत्रान् षष्ठे हन्ति रिपून् ध्रुवम् ॥९३६॥
धृतां च परिणीतां च प्रेयसीं हन्ति सप्तमे ।
अष्टमे च सुखं हन्ति मालिन्यं याति भाग्यगे ॥९३७॥

अष्टम में हो तो सुख का नाश करता है, और नवम में हो तो जैन मत का अवलम्बन करने वाला होता है, पद स्थान में हो तो राज्य का विध्वंस करता है । लाभ स्थान में हो तो धनागम का नाश करता है ॥९३३

व्यय स्थान में हो तो अनिष्ट मार्ग में व्यय कराता है, और वही स्वक्षेत्र तथा स्वकीय उच्च में, मित्र भाव में हो तो शभ फल को देता है॥९३४

इति शनिफलम् ।

यदि राहु लग्न में हो तो दो मास पर्यन्त शस्त्रादि से बहुत कठिन पीड़ा होती है, और धन भाव में हो तो उसी क्षण धन को नाश करता है ॥९३५॥

तृतीय में हो तो भ्राताओं का नाश करता है, और चतुर्थ में हो तो भोज्य तथा कुटुम्ब का नाश करता है, पुत्र भाव में हो तो बहुत पुत्रों का, और षष्ठ में हो तो शत्रुओं का नाश करता है, ॥९३६॥

राहु सप्तम में हो तो विवाहिता स्त्री, धृता, तथा प्रेम युक्ता का भी नाश होता है, अष्टम में हो तो सुख का नाश करता है, और भाग्य स्थान में हो तो उसको मालिन्य करता है ॥९३७॥

1. तनोऽर्थनाम् for तनोर्घनाम् Bh·

दशमे राज्यपदं हन्ति लाभौघं लाभगः पुनः ।
व्यये महाव्ययं हन्ति राहुः सर्वत्र बाधकः ॥९३८॥

इति राहुफलम् ।

वर्षफलं गुरोर्वाच्यं रवेर्मासफलं पुनः ।
पञ्चदशघटीनां च चन्द्राद् वाच्यं दिने फलम् ॥९३९॥
त्र्यंशांशकात्फलं चन्द्राद् घटीसार्द्धचतुष्टयम् ।
ग्रहाणामंशकं ज्ञात्वा फलं वाच्यं दिनोद्भवम् ॥९४०॥
दिनचर्याफले पुंसां क्षीणचन्द्रो न दृश्यते ।
दृष्टौ योगे समं चैव फलमंशगतं भवेत् ॥ ९४१ ॥
जन्मलग्ने च तद्राशौ नामलग्नदिशांशके ।
तत्कालकेऽथवा लग्ने दिनचर्याफलं वदेत् ॥ ९४२ ॥
अथ ग्रहान्ते षड्वर्गांशकुण्डलिकाः कथ्यन्ते ।
त्रिंशद्भागे दिनं चैकं बुधस्य रविशुक्रयोः ।
सार्द्ध चतुष्टयं नाड्यः शशिनश्च सतां मताः ॥ ९४३ ॥

---

राहु दशम में हो तो राज्य पद का नाश करता है, और लाभ स्थान में हो तो लाभ नहीं होता है, और, व्यय स्थान में हो तो बहुत व्यय कराता है, बाधक राहु सब जगह नाश ही करता है ॥९३८॥

इति राहुफलम् ।

गुरु से वर्ष फल, तथा रवि से मास फल और दिन में चन्द्रमा से पन्द्रह घटी का फल कहें ॥ ९३९ ॥

चन्द्रमा से त्रिशांश के वश साढ़े चार घटी का फल कहें, और ग्रहों का अंश जान कर दिन का फल कहें ॥ ९४० ॥

दिनचर्या फल में क्षीण चन्द्र का विचार नहीं करें, और पूर्ण चन्द्र का दृष्टि तथा योग से समान फल होता है, वह जिस अंश में गत हो उस से फल का विचार करें ॥ ९४१ ॥

जन्म लग्न से, और नाम राशि से या प्रश्नकालिक लग्न से दिन चर्या फल कहना चाहिये ॥ ९४२ ॥

अब ग्रह के बाद षड्वर्गांश कुण्डली को कहते हैं—

बुध, रवि, और शुक्र, इन ग्रहों के त्रिशांश पर से एक दिन का फल तथा चन्द्रमा से साढ़े चार घटी का फल कहें ॥ ९४३ ॥

मङ्गलस्य दिनं सार्द्धं मासमेकं शनेर्मतम् ।
अष्टादश दिनान्याहुः सिंहिकायाः सुतस्य च ॥ १४४ ॥

गुरोस्त्रिंशांशभागाः स्युस्त्रयोदश दिनान्यहो[1] ।
निश्चितं श्रीमताप्युक्तं श्रीहेमप्रभसूरिणा ॥ १४५ ॥

इति त्रिंशांशकुंडलिकाः ।

श्यामांगरविशुक्राणामुक्तं सार्द्धदिनत्रयम्[2] ।
सपादैकादशेन्दोश्च घटिका द्वादशांशके ॥ १४६ ॥
मासमेकं विजानीहि सार्द्धं दिनद्वयं गुरोः ।
सार्द्धं मासद्वयं चैव मन्दस्य कथितं बुधैः ॥ १४७ ॥

सपक्षं मासमेकं च राहोस्तु कथितं सदा ।
त्रिभागसहितं विद्धि मंगलस्य दिनत्रयम् ॥ १४८ ॥

इति द्वादशांशकुण्डलिकाः ।

और मंगल से डेढ़ दिन, शनि से एक मास, और राहु से अठारह दिन का फल कहें ॥१४४॥

गुरु से त्रिंशांश के वश तेरह दिन का फल कहें इस प्रकार श्रीमान् हेमप्रभसूरि भी निश्चित फल कहे हैं ॥ १४५ ॥

इति त्रिंशांशकुण्डलिकाः ।

बुध, रवि, शुक्र, इन ग्रहों से द्वादशांश के वश साढ़े तीन दिन का शुभाशुभ फल कहें, और चन्द्रमा से सवा ग्यारह घटी का फल कहे ॥ १४६ ॥

गुरु से एक मास अढ़ाई दिन का फल जानें और शनि से अढ़ाई मास का फल कहें ॥ १४७ ॥

राहु से द्वादशांश के वश डेढ़ मास का फल, और, मंगल से सवा तीन दिन पर्यन्त शुभाशुभ फल का द्वादशांश पर से विचार करें ॥ १४८ ॥

इति द्वादशांशकुण्डलिकाः ॥

1. दिनानि च for दिनान्यहो Bh. 2. द्वयम for त्रयम् Bh.

नवांशेऽर्कसितज्ञानां सत्रिभागमहस्त्रयम् ।
नाड्यः पञ्चदशैवेन्दोर्भौमे पञ्चदिनानि च ॥ ९४९ ॥

मासो जीवे दिनानि स्युस्त्रिभागोन[1]चतुर्दश ।
शनेर्मासत्रयं त्र्यंशो राहोर्मासद्वयं पुनः ॥ ९५० ॥

इति नवांशकुंडलिका: ।

श्रीहेलाशालिनां योग्यमप्रभीकृतभास्करम् ।
सूक्ष्मेक्षिकया चक्रेऽरिभिः शास्त्रमदूषितम् ॥ ९५१ ॥
क्रियते केवलादर्शस्त्रैलोक्यस्य प्रकाशकः ।
श्रीमद्देवेन्द्रशिष्येण श्रीहेमप्रभसूरिणा ॥ ९५२ ॥

अथार्घकाण्डः ।

शुक्रास्ते भाद्रमासे शुभभगणगते वाक्पतौ सौख्यहेतौ
ज्येष्ठाद्याहे सुवारे शशिसुतधिषणे सूदिते निश्यगस्त्ये ।
क्रूरे भूपादिवर्गो विघटति[2] समये मङ्गले वक्रिते वा

---

सूर्य, शुक्र बुध, इन ग्रहों से नवांश के वश तृतीयांश तीन दिन का फल कहे, और चन्द्रमा से नवांश वश पन्द्रह घटी और मंगल से पांच दिन का फल कहें ॥ ६४६ ॥

गुरु से एक मास तृतीयांश ऊन चौदह दिन का फल विचार करें, और शनि से तृतीयांश युक्त तीन मास, तथा राहु से नवांश के वश दो मास का फल विचार करें ॥ ६५० ॥

इति नवांशकुण्डलिका: ।

श्रीमान हेलाशालिकायोग्य जो कि सूर्य को भी निस्तेज करते हैं, ऐसे वे श्रीमान् देवेन्द्र के शिष्य श्री हेमप्रभसूरि सूक्ष्म दृष्टि से शत्रु से अदूषित त्रैलोक्यप्रकाश नामक शास्त्र मे केवलादर्श करते हैं ॥ ६५१-६५२ ॥

भाद्रमास में शुक्र अस्त हो, बृहस्पति शुभ राशि में हो तो सौख्य का कारण होता है, और ज्येष्ठ मास का पहला शुभ दिन बुध या गुरु का हो उस रात्रि में अगस्त्य का उदय हो और पाप ग्रह राजा आदि के

---

1. ण्गा for ण्गो A¹. 2. विघटित for विघटति Bh.

चाषाढ्यां पूर्वधिष्ण्ये प्रहरवमुगते जायते दिव्यकालम्[1] ९५३
भौमे[2]ऽमात्येऽन्ननाथे कुशलकृतिरवेः संक्रमे वृश्चिके स्यात्
आषाढ्यां सौम्यपूर्वे प्रमरति पवने दुर्दिने सर्वयामान्।
रात्रावार्द्राप्रवेशे वृषभतनुगते सौम्ययुक्ते च सूर्ये
चिह्नरेतैः सुकालो जगति शुभकरो वर्षणे कृत्तिकायाम् ॥९५४॥
रात्रौ संक्रान्तिगार्द्रायामप्यगस्त्योदयो भवेत्।
तदा वर्षे सुभिक्षं स्याद् विपरीते विपर्ययः ॥ ९५५ ॥
सौम्यादौ पञ्चके स्यात्सुरगुरुरुदितो दुःखदौर्गत्यकर्ता
पित्र्यादौ वा चतुष्के भवति समुदितः सौख्यसद्भिक्षदाता।
चित्राद्यैर्वाष्टधिष्ण्यैः[3] तृणसिहिमभयं संततं संविधत्ते
कर्णादौ धिष्ण्यपंक्तौ जगति वितनुते सौस्थ्यसम्पत्तिसौख्यम्

वर्गों में हो वा मंगल वक्री हो, और आषाढी पूर्णिमा में पूर्वाषाढ़ नक्षत्र हो और आठों प्रहर सुन्दर काल हो ॥ ६५३ ॥

राजा, मन्त्री, तथा अन्नाधिप ये रवि के संक्रान्ति काल में वृश्चिक में हो, आषाढ़ी पूर्णिमा में उत्तरा, पूर्वा वायु चले और सब प्रहरों में दुर्दिन हो, और रात्रि में आर्द्रा का प्रवेश हो, सूर्य शुभ ग्रह से युक्त हो कर वृष लग्न में हो और कृत्तिका मे वर्षा हो तो इन चिन्हों से संसार में शुभ कर समय होता है ॥ ६५४ ॥

रात्रि में आर्द्रा नक्षत्र म सूर्य की संक्रान्ति हो और अगस्त्य का उदय भी हो तो उस वर्ष में सुभिक्ष समय होता है और विपरीत होने पर विपरीत ही फल कहें ॥ ६५५ ॥

मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, इन नक्षत्रों में बृहस्पति उदित हो तो दु.ख और दुर्गति करता है, और मघा, पूर्वफल्गुनी, उत्तर फल्गुनी, हस्त, इन नक्षत्रों में उदित हो तो सौख्य और सुभिक्ष होता है।

चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, इन नक्षत्रों में गुरु उदित हो तो तृण, शीतादि का भय सतत होता और श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा पूर्वभाद्र, उत्तरभाद्र, रेवती, इन नक्षत्रों में उदित हो तो स्वस्थता सौख्य, और सम्पत्ति का विस्तार करता है ॥६५६

1. कालः for कालम् Bh. 2. भूपे for भौमे Bh. 3. ०ण्येष्य-क्यामहि for ०ण्यैः तृणसिहि Bh.

उदग्वीथीं चरन् जीवः सुभिक्षक्षेमकारकः ।

मध्यमे मध्यमं चार्घमेवमन्येऽपि खेचराः ॥ ९५७ ॥

इति गुरुवारः ।

उत्तरेण ग्रहाणां तु चन्द्रचारी भवेद् यदि ।

सुभिक्षं विग्रहाभावो जायते तत्र वत्सरे ॥ ९५८ ॥

पञ्च तारा ग्रहा यत्र सोमं कुर्वन्ति दक्षिणे ।

भौमे च राजमारी च जनमारी च भार्गवे ॥ ९५९ ॥

बुधे रसक्षयं कुर्याद् गुरौ कुर्यान्निरोदकम् ।

शनावर्थक्षयं कुर्यान्मासे मासे निरीक्षयेत् ॥ ९६० ॥

चित्रानुराधा ज्येष्ठा च कृत्तिका रोहिणी तथा ।

मघा मृगशिरा मूलं तथाषाढाविशाखयोः ॥ ९६१ ॥

एतेषामुत्तरे मार्गे यदा चरति चन्द्रमाः

क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं सुवृष्टिर्जायते तदा ॥ ९६२ ॥

---

यदि गुरु उत्तर वीथी से संचार करें तो सुभिक्ष और क्षेम कारक होते हैं, और मध्य वीथी से मध्यम अर्घ करते हैं इस तरह और ग्रह का भी विचार करें ॥९५७॥

इति गुरुवारः ।

जब चन्द्रमा ग्रहों के उत्तर मार्ग से जाते हैं तो, सुभिक्ष, विग्रह का अभाव उस वर्ष में होता है ॥९५८॥

पञ्चतारा ग्रह जहां पर चन्द्रमा को दक्षिण करते हैं, वहां यदि मंगल करे तो राजमारी अर्थात् कोई ऐसा उपद्रव जिससे राजा के तरफ से लोग मारे जाय और शुक्र करे तो बहुत लोग मरें, ॥९५९॥

बुध करे तो रसों का क्षय, बृहस्पति करें तो पानी नहीं मिले, और शनि करे तो धन का क्षय होता है, इस प्रकार मास मास का फल विचार करें ॥९६०॥

चित्रा, अनुराधा, ज्येष्ठा, कृत्तिका रोहिणी, मघा, मृगशिरा, मूल, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, इन नक्षत्रों के उत्तर मार्ग से यदि चन्द्रमा संचरण करे तो कल्याण सुभिक्ष आरोग्य, सुवृष्टि होते हैं ॥९६१-९६२॥

---

1. ॰चार्घ॰ for ॰चार्घ Bh.

एतेषां दक्षिणे मार्गे यदा चरति चन्द्रमाः ।
क्षयं गच्छन्ति भूतानि दुर्भिक्षं च भयं[1] भवेत् ॥९६३ ॥
शुक्रोस्तमयते मासे फाल्गुने यदि निश्चितः ।
तदा दुर्भिक्षमादेश्यं षण्मासावधि धीमता ॥ ९६४ ॥
चैत्रे तु स्याद्बले तुल्यो वैशाखेन चतुष्पदम् ।
ज्येष्ठे करोति वृष्टिं वा प्याषाढे जलशोषणम् ॥ ९६५ ॥
श्रावणे दधिदुग्धैस्तु भुवं सिञ्चति मेघतः ।
भाद्रपदे धनधान्यैर्मेघो हर्षात्प्रमोदते ॥ ९६६ ॥
आश्विनेऽपि सुखैर्भव्यो वृष्टिं करोति कार्तिकः ।
मार्गे च विग्रहो घोरो निश्छत्रं पौषमाघयोः ॥ ९६७ ॥

इति शुक्रास्तफलम् ।

समर्घयोगा एते ।

---

इन पूर्वोक्त नक्षत्रों के दक्षिण मार्ग से चन्द्रमा यदि संचरण करे तो प्राणियों का क्षय, दुर्भिक्ष और भय होता है ॥९६३॥

यदि शुक्र फाल्गुन मास में अस्त को प्राप्त करे तो छः मास पर्यन्त दुर्भिक्ष होगा ऐसा बुद्धिमान आदेश करें ॥९६४॥

यदि चैत्र में शुक्रास्त हो तो बल का आधिक्य होता है, वैशाख में हो तो चतुष्पद की वृद्धि, और ज्येष्ठ में शुक्रास्त हो तो वर्षा होती है, आषाढ़ में हो तो जल को सुखाता है ॥९६५॥

श्रावण मास में यदि शुक्रास्त हो तो मेघ से दधि दुग्धों की वर्षा से पृथ्वी का सेचन होता है, और भाद्रपद मास में हो तो बहुत धन धान्य होता है। जिस से लोग हर्षित होकर आनन्द से रहते हैं ॥९६६॥

आश्विन में हो तो बहुत सुख पूर्वक आनन्द से लोग रहते हैं, और कार्तिक में शुक्रास्त होने से वर्षा होती है अगहण में हो तो घोर विग्रह होता है, और पौष माघ में होने से निश्छत्र होता है ॥९६७॥

इति शुक्रास्तफलम् ।

---

1 क्षयो for भयं Bh.

तुलाषट्कविपर्याये ज्ञातिवारोऽपि संतते ।
ज्येष्ठे शुक्लद्वितीयेन्दोर्ब्राह्मीयोगे महर्घकः ॥ ९६८ ॥
बुधश्चेत्प्रथमो वारः सर्वमासाद्यवासरे ।
भवेत्तदा त्रिभिर्मासैर्महर्घं जायते ध्रुवम् ॥ ९६९ ॥
मासाद्यदिवसे वारो बुधो भवति चेद् यदा ।
मासत्रये महर्घं स्याद् भावे वर्षं विनश्यति ॥ ९७० ॥
अमावास्यातिथौ धिष्ण्यं यदा भवति कृत्तिका ।
ईतिर्घना क्षितौ नूनं वर्षे तत्र भविष्यति ॥ ९७१ ॥
पूर्वभद्रपदाधिष्ण्ये यदा क्रूरा भवन्ति वा ।
तदा सर्वं भवेद्वाच्यं महर्घं भूतले तदा ॥ ९७२ ॥
सप्तम्यां सोमवारः स्यान्माघे पक्षे सिते यदा ।
दुर्भिक्षं जायते रौद्रं विग्रहोऽपि च भूभुजाम् ॥ ९७३ ॥
वारे चतुर्थे यदि पञ्चमे वा धिष्ण्ये तृतीये यदि पञ्चमे वा ।
पूर्वक्रमात्संक्रमणं यदा स्यात्तदा च दौःस्थ्यं नृपविग्रहंच ॥९७४

तुलादि षट राशियों में बुध का अतिचार हो, और ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया में चन्द्रमा से रोहिणी का योग हो तो महर्घ होता है ॥९६८॥

सब मासों के प्रथम बुध का ही वार हो तो तीन मास तक निश्चय महर्घ होगा ॥९६९॥

यदि मासों का दिन बुध का ही दिन हो तो तीन मास में महर्घ होता है और वर्ष पर्यंत उसका भाव नष्ट ही रहता है ॥९७०॥

यदि अमावास्या तिथि में कृत्तिका नक्षत्र हो तो उस वर्ष में ईति का उपद्रव पृथ्वी पर बहुत होता है ॥९७१॥

यदि पूर्वभाद्र नक्षत्र में पापग्रह हो तो पृथ्वी में सब वस्तु को महर्घ ही कहना चाहिये ॥९७२॥

यदि माघशुक्ल सप्तमी को सोमवार हो तो बहुत कठिन दुर्भिक्ष होता है, और राजाओं का विग्रह भी होता है ॥९७३॥

बुध, या बृहस्पतिवार में और कृत्तिका या, मृगशिरा नक्षत्र में पूर्व क्रम से यदि संक्रान्ति हो तो दुःस्थिति होती है, और राजाओं का विग्रह भी होता है ॥९७४॥

---

वारे for वारो Bh.

सङ्क्रान्तिधिष्ण्याद्यदि[1] षष्ठसंख्ये जायेत धिष्ण्ये रविसंक्रमोऽपि
तदापि दौस्थ्यं नृपविध्वरंश्च त्रिभागतुच्छा भवति हि पृथ्वी॥१७५
तुर्ये धिष्ण्ये च पूर्वस्माद्यदि वारे तृतीयके ॥
संक्रमो यदि[2] सूर्यस्य सुभिक्षं स्यात्तदोत्तमम् ॥ १७६ ॥
सूर्यस्यान्यग्रहाणां वा गुरुभेऽभ्युदयास्तमौ[3] ।
शशिदृष्टौ सुभिक्षं स्याद्दुर्भिक्षं लघुभे पुनः ॥ १७७ ॥
तिथिदिनोडुलग्नानामाद्यकण्टे रविस्थतौ ।
सुभिक्षं जायतेऽवश्यं दुर्भिक्षं तु त्रिकण्टके ॥ १७८ ॥
मित्रस्वगृहतुंगस्थः शुभदृष्टियुतो रविः ।
पूर्णचन्द्र महाधिष्ण्ये पूर्वसङ्क्रान्ति तुर्यके ॥ १७९ ॥
तृतीयवारसम्बद्धः सुभिक्षः क्षेमदः स्मृतः ।
सुप्तोऽरिभिर्युतो दृष्टो विद्धः क्रूरस्तु नीचगः ॥१८०॥

बुध के संक्रान्ति नक्षत्र से छठे नक्षत्र में यदि रवि की भी संक्रान्ति हो तो भी लोगों की दुःस्थिति होती है, तथा राजाओं के विग्रह से त्रिभाग शून्य पृथ्वी हो जाती है। १७५॥

उस संक्रान्ति से चतुर्थ नक्षत्र में मंगल दिन यदि सूर्य की संक्रान्ति हो तो उत्तम रूप से सुभिक्ष होता है ॥१७६॥

सूर्य का या अन्य ग्रहों का गुरुनक्षत्र में उदय, वा अस्त हो उस पर चन्द्रमा की दृष्टि हो तो सुभिक्ष होता है, और लघुसंज्ञक नक्षत्र में उदयास्त हो तो दुर्भिक्ष होता है ॥१७७॥

तिथि, दिन, नक्षत्र, राशि, इनके प्रथम कण्टक रवि स्थित हों तो अवश्य ही सुभिक्ष होता है, और त्रिकण्टक में हों तो दुर्भिक्ष होता है ॥१७८॥

मित्र स्वगृह, उच्च, आदि में स्थित सूर्य शुभ ग्रहों की दृष्टि से युक्त हो और पूर्ण चन्द्रमा पूर्व के संक्रान्ति से चतुर्थ नक्षत्र बृहत् संज्ञक में हो और मंगलवार भी हो तो, सुभिक्ष, और कल्याण करता है, और वही सूर्य शत्रु ग्रहों से युक्त हो, तथा पापग्रहों से विद्ध होकर

1. धिष्ण्यं for धिष्ण्याद् Bh. 2. निशि for यदि Bh. 3. ०मौ for ०मौ Bh.

तुच्छमुहूर्तसङ्क्रान्तिः पूर्वस्माद् द्विकपञ्चके[1] ।
सप्तविकल्पसङ्क्रान्तौ दुर्भिक्षं जायते ध्रुवम् ।। ९८१ ।।

[पूर्णिमाचन्द्रयोगेनाप्यर्घवृद्धिहानी]

तुल्यार्घं पूर्णिमायां तु मृगादिधिष्ण्यपञ्चके ।
मघाचतुष्के दुर्भिक्षं चित्राद्येऽष्टसु[2] दुस्तटम् ।। ९८२ ।।
कर्णादौ दशके धिष्ण्ये सुभिक्षं सततं भवेत् ।
अमावास्यादिने योगे पुनर्वस्वादिपञ्चके ।। ९८३ ।।
समर्घमघ[3]दुर्भिक्षमुत्तरादिचतुष्टये ।
विशाखा[4]ज्येष्ठके रौद्रं दुर्भिक्षं तु विजायते ।। ९८४ ।।

नीच में हो और सुम संक्रान्ति करता हो, पूर्व के संक्रान्ति से द्वितीय या पञ्चम, तुच्छ मुहूर्त में इन सातों की विकल्पक संक्रान्ति में ध्रुव ही दुर्भिक्ष होता है ।। ९७६-९८१ ।।

पूर्णिमा में, मृगशिरा आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, इन नक्षत्रों का योग हो तो अर्थ की समता रहती है, और मघा, पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी, हस्त, इन नक्षत्रों के योग होने से दुर्भिक्ष होता है, और चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, इन नक्षत्रों के योग में भी दुर्भिक्ष होता है ।।९८२।।

श्रवण आदि दश नक्षत्रों के योग होने से सर्वदा सुभिक्ष होता है । अमावास्या के दिन, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वफल्गुनी, इन पांच नक्षत्रों का योग हो ।।९८३।।

तो समर्घ होता है, और उत्तरफल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती इन चार नक्षत्रों का योग हो तो दुर्भिक्ष होता है और विशाखा, आदि के आठ नक्षत्रों में बहुत कठिन दुर्भिक्ष होता है ।।९८४।।

1. त्रिक for द्विक A[1] 2. ज्येष्ठाःसु for ०द्येऽष्टसु Bh. 3. ०मथ for ०मर्घ Bh. 4 ०खा० for ०ज्ये० A.

भवेच्छतभिषक्[1]दश नक्षत्रेषु सुभिक्षकम् ।
एवं पक्षद्वये प्रोक्तं योगे योगे फलं वदेत् ॥ ९८५ ॥
तिथिनक्षत्रयोः सौम्यमृगादिधिष्ण्यपञ्चके ।
पूर्णिमायां विधोर्योगे तुल्याघशमनं[2] भवेत् ॥ ९८६ ॥
सौम्यैकवक्रोऽप्यशुभोऽतिचार : करोति सर्वं विफलं समर्घम् ।
क्रूरैकवक्त्रः शुभदोऽतिचारो धान्यं विधत्ते भुवने महर्घम् ॥९८७
सुभिक्षं च तदैव स्याद्वक्रत्वं सितसौम्ययोः ।
वक्रत्वे तु गुरोर्नूनं राशिप्रान्ते समर्घकम् ॥ ९८८ ॥
कन्यायां बुधवक्रत्वे सुभिक्षं निश्चितं मतम् ।
वर्षाकालेऽप्यतीचारे समर्घं भुवि जायते ॥ ९८९ ॥
भौमार्क्योरप्यतीचारे सुभिक्षं भवति स्फुटम् ।
सौम्यानामप्यतीचारे धिष्ण्यहानौ च निष्फलम् ॥ ९९० ॥

---

शतभिषा से दश नक्षत्रों में सुभिक्ष होता है, इस प्रकार दोनों पक्षों में कहा और योग योग में ऐसे फल कहे ॥९८५॥

इस प्रकार शुभ तिथि नक्षत्रों के योग से सुभिक्ष होता है, पूर्णिमा में मृगशिरा आदि के पांच नक्षत्रों में चन्द्रमा का योग हो तो तुल्यार्घ तथा शान्ति होती है ॥९८६॥

एक शुभग्रह वक्र हो, और अशुभग्रह अतिचार हो तो वह सब समर्घ को नष्ट करता है, और एक पापग्रह वक्र हो और शुभग्रह अतिचार हो तो वह धान्य को महर्घ करता है ॥९८७॥

बुध, शुक्र, वक्र हो तो सुभिक्ष होता है, और, गुरु यदि वक्र हो तो राशि के अन्त में समर्घ होता है । ९८८॥

कन्याराशि बुध वक्री हो तो निश्चय सुभिक्ष होता है, और वर्षा काल में भी अतिचार हो तो भी पृथ्वी में समर्घ होता है ॥९८९॥

भौम, शनि के भी अतिचार में सुभिक्ष होता है । शुभ ग्रहों के अतिचार में भी यदि नक्षत्र की हानि हो तो निष्फल होता है ॥९९०॥

---

1. भावदश for भवेच्छतं A[1]. . 2. ०र्घ्यमशनं for र्घशमनं A, Bh.

मेषादित्रितये सूर्ये शुभयुक्ते तिथिक्षये ।
कर्णादौ पूर्णिमायोगे महर्घं तु हठाद्भवेत् ॥[1] ९९१ ॥
स्वातिमुख्याष्टमे जीवे अश्विन्यादित्रिकेऽपि वा ।
शनिराहुकुजैश्चैवं प्रत्येकं सहितो भवेत् ॥ ९९२ ॥
सञ्चरन्ति यदा काले सुभिक्षं जायते क्षितौ ।
मृगादिदशके जीवे धनिष्ठापञ्चकेऽपि वा ॥ ९९३ ॥
भौमादिसहितो गच्छेद् दुर्भिक्षं तत्र जायते ।
एकराशिगत चैवमेकर्क्षं[2] च महद् भवेत् ॥ ९९४ ॥
त्रिकपञ्चकयोगौ विस्तरतो व्याख्यायेते ।
स्वात्याद्यष्टकसंयुक्तमश्विन्यादित्रिकं पुनः ।
त्रिकसंज्ञं बुधैर्वाच्यमघंकाण्डं विशारदैः ॥ ९९५ ॥

मेषादि, तीन राशि मे शुभ युक्त सूर्य हो और तिथि क्षय हो और पूर्णिमा मे श्रवण आदि नक्षत्रों का योग हो तो हठात् महर्घ होता है ॥९९१॥

स्वाती आदि के आठ नक्षत्रों मे वा अश्विन्यादि तीन नक्षत्रों मे बृहस्पति हो और शनि, राहु, मंगल इन प्रत्येक से युक्त हो ॥९९२॥

पूर्वोक्त योग विशिष्ट गुरु जब सञ्चार करे उस काल मे पृथ्वी मे सुभिक्ष होता है, मृगशिरा आदि के दश नक्षत्र मे वा धनिष्ठा, आदि के पांच नक्षत्रों मे बृहस्पति ॥९९३॥

मंगल, शनि, राहु से युक्त गुरु पूर्व नक्षत्र में संचार करें तो दुर्भिक्ष होता है, यदि ये एक राशि मे हों तो एक वर्ष पर्यन्त महान् भय होता है ॥९९४॥

अथ त्रिकपञ्चकयोगौ विस्तरतो व्याख्यायेते—

स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ श्रवण, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, इन नक्षत्रों का त्रिक संज्ञक, अर्घकाण्ड में निपुण पंडित कहते हैं ॥९९५॥

1. A. adds:—धनुर्मकरकुंभेषु यत्क्रीतं धान्यजीवनम् ।
तत्कर्क मिथुने देयं पतिता सितपंचमी ॥

2. ०मेवर्ष for ०मेकर्क्ष Bh.

मृगादिदशकं चापि धनिष्ठापञ्चसंयुतम् ।
पञ्चकनामकं ज्ञेयमर्घनिर्णयहेतुकम् ॥ ९९६ ॥
त्रिकयोगे त्रिको योगः पञ्चके पञ्चकः पुनः ।
गृह्यते च त्रिके योगे दीयते पञ्चके धनम् ॥ ९९७ ॥
त्रिके च जीवराशेश्च क्रूरा यदि त्रिके गताः ।
अन्योन्यं वा[1] त्रिके च स्युर्गृह्यते तत्क्रयाणकम् ॥ ९९८ ॥
पञ्चके जीवराशेस्तु गच्छन्ति यदि पञ्चके ।
अन्योऽन्यं पञ्चकं वा स्युर्दीयते तत्तदैव हि ॥ ९९९ ॥
यथा धिष्ण्ये त्रिके चन्द्रः क्रेतव्यं तत्क्रयाणकम् ।
यदा च पञ्चके चन्द्रो विक्रेतव्यं तदाखिलम् ॥ १००० ॥

मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी, हस्त, चित्र, और धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्र, उत्तरभाद्र, रेवती, इन नक्षत्रों को अर्घ निर्णय के लिये पंडित पञ्चक संज्ञक कहते हैं ॥९९६॥

---

त्रिकयोग में त्रिकयोग होता है और पञ्चक नक्षत्र के योग में पञ्चक योग होता है, त्रिक योग में वस्तु ग्रहण करना चाहिये, और पञ्चक योग में वस्तु देना चाहिये ॥९९७॥

यदि गुरु के राशि त्रिक में हों या पापग्रह त्रिक में वा दोनों परस्पर त्रिक में हों तो खरीद करने योग्य वस्तु को ग्रहण करना चाहिये ॥९९८॥

यदि गुरु की राशि पञ्चक में हो या पापग्रह पञ्चक में हो वा दोनों परस्पर पञ्चक में हों तो उस वस्तु को उसी समय देना चाहिये ॥९९९॥

जब चन्द्रमा त्रिक में हो तो खरीदने योग्य वस्तु को खरीदना चाहिये, यदि चन्द्रमा पञ्चक में हो तो उस सब वस्तु को उसी समय बेच लेना चाहिये ॥१०००॥

---

1 पञ्चके for वात्रिके A[1]

जीवात्त्रिके तमः सौरिर्भौमा एभ्यो गुरुस्त्रिके ।
अन्योऽन्यं पञ्चके जीवे[1] देहि लाहि त्रिके क्रमात् ॥१००१॥
मासार्घवर्षार्घाः ।
त्रिके यदि ग्रहाः सर्वे जीवान्मन्दतमः कुजः ।
तदा भुवि महर्घं स्यात्तिथौ वृद्धौ विशेषतः ॥ १००२ ॥
यदा स्याज्जीवयोगेन भतृके धिष्ण्यपञ्चके ।
तदा किञ्चिन्महर्घं स्यात् सौम्यवासरगं[2] पुनः ॥ १००३ ॥
पञ्चके चेद्ग्रहाः सर्वे संमिलन्ति यदैव हि ।
तदा भुवि महर्घं स्याद् धिष्ण्यहानौ विशेषतः ॥ १००४ ॥
राशिपञ्चकयोगे तु धिष्ण्यत्रिकं यदा भवेत् ।
तदा किञ्चित्समर्घं स्यात्सौम्यवक्रे[3] शुभं बहु ॥ १००५ ॥
संसिरा तु[4] यदा जीवो राशिनक्षत्रपञ्चके ।
घोरं दौस्थ्यं तदा ज्ञेयमृक्षे न्यूनेति गौरवम् ॥ १००६ ॥

---

गुरु से त्रिक में राहु, शनि, मंगल, हो और उन से त्रिक मे गुरु हो या परस्पर दोनों पञ्चक मे हों तो क्रयाणक वस्तु देनी चाहिये, यदि दोनों परस्पर त्रिक में हों तो उस वस्तु को ग्रहण करें ॥१००१॥

अथ मासार्घ वर्षार्घा:—

यदि जीव से त्रिक में शनि, राहु, मंगल हों तो पृथ्वी में महर्घ होता है, और तिथि वृद्धि हो तो विशेष महर्घ होता है ॥१००२॥

यदि त्रिक, या पञ्चक नक्षत्र में जीव का योग हो तो कुछ महग होती है; और शुभ ग्रहों का योग हो तो विशेष महग होती है ॥१००३॥

पञ्चक में सब ग्रह सम्मिलत हो जाय तो पृथ्वी में महर्घ होता है, और नक्षत्र का क्षय हो तो विशेष महर्घ होता है ॥१००४॥

पञ्चक, तथा त्रिक, नक्षत्र राशि के योग से कुछ समर्घ होता है, और शुभ ग्रहों को वक्र होने पर बहुत शुभ होता है ॥१००५॥

संसिरा जीव यदि पञ्चक राशि नक्षत्र मे हो तो घोर, दौस्थ्य होता है और नक्षत्र का क्षय होने से अत्यन्त गौरव होता है ॥१००६॥

---

1. केप्यैसे लबेलाहि for जीवे देहि लाहि Bh. 2. वेधेन्वक for वासरगं A, योगेधिकं Bh. 3 चक्रे for वक्रे Bh. 4. मंगलराहु for संसिरा तु Bh.

राशिधिष्ण्ये त्रिके पूर्वे ग्रहाः सर्वे भवन्ति चेत् ।
महासौस्थ्यं सदा भूम्यां सौम्यवक्रे महोत्सवः ॥ १००७ ॥
इत्यर्घकाण्डम् ।

नक्षत्रपद्धत्या त्रिकपञ्चकयोगो दर्शितः । साम्प्रतं द्वितीयराशिपद्धत्या त्रिकपञ्चकयोगौ प्रतिपद्भयन् सांवत्सरिकमर्घं प्रति पादयति —

भानुवक्र[1]तमःक्रोडास्तृतीयस्था[2] गुरोर्यदि ।
सुभिक्षं जायते सत्यमीदृशे योगसंकटे ॥१००८॥
तमोवक्रमविश्राद्याश्चत्वारः क्रूरखेचराः ।
तृतीयस्थाः शनेरेते सौस्थ्यसद्भिक्षकारकाः ॥१००९॥
भानुवक्रतमः क्रोडाः पञ्चमस्था गुरोर्यदि ।
दुर्भिक्षं जायते तत्र घोरं योगे समागते ॥१०१०॥
भानुवक्रतमः क्रोडा द्विपञ्चनवसप्तगाः ।
द्वादशस्था गुरोरेते भञ्जन्ति सकलं जगत् ॥१०११॥

---

त्रिक राशि नक्षत्र में सब ग्रह हों तो पृथ्वी पर महान् सौस्थ्य होता है और शुभ ग्रह वक्री हो तो महान् उत्सव होता है ॥१००७॥

नक्षत्र पद्धति से त्रिक पञ्चक योग दिखाया, अब द्वितीय राशि पद्धति से त्रिक पञ्चक योग को कहते हुए संवत्सर का अर्घ काण्ड कहते हैं ।

यदि सूर्य, मंगल, राहु, ये गुरु से तृतीय में हों तो ऐसे योग संकट में सुभिक्ष होता है ॥१००८॥

यदि शनि से राहु, मंगल, सूर्य आदि के चार पापग्रह तृतीय में हों तो स्वस्थता तथा सुभिक्ष को करते हैं ॥१००९॥

यदि गुरु से सूर्य, मंगल, राहु, ये पंचम में हों तो ऐसे योग में दुर्भिक्ष होता है ॥१०१०॥

यदि गुरु से सूर्य, मंगल, राहु, ये पापग्रह द्वितीय, पञ्चम, सप्तम, नवम द्वादश मे हों सम्पूर्ण संसार को नष्ट करता है ॥१०११॥

---

1. तमोवक्र for भानुवक्र A, A[1]. 2. पञ्चमस्था for तृतीयस्था A, A[1].

तमोवक्रसवित्राद्याश्चत्वारः क्रूरखेचराः ।
पञ्चमस्थाः शनेरेते दौस्थ्यदुर्भिक्षकारकाः ॥१०१२॥
मन्दराह्वोरपि क्रूरास्तृतीये सौस्थ्यकारकाः ।
एतयोः पञ्चमाः क्रूराः दुःखदुर्भिक्षहेतवः ॥१०१३॥
बृहस्पतितमःसौरिमङ्गलानां यदैककः ।
त्रिके च पञ्चके कार्यौ धान्यस्य क्रयविक्रयौ ॥१०१४॥
सत्यारतमसो[1] युक्ता धनुर्मीने स्थिता यदा ।
पृथ्वीत्रिभागशेषा च दुर्भिक्षं च तदा भवेत् ॥१०१५॥
त्रिकपञ्चकयोगौ द्वौ व्याख्यातौ गुरुदर्शितौ ।
योगं वदामि रोहिण्या ग्रहयोगाच्छुभाशुभम् ॥१०१६॥
रोहिण्या सौम्ययोगेन क्रूरदर्शनवर्जिते ।
उत्तरगै[2] ग्रहैः सर्वैः सुभिक्षं निश्चितं भवेत् ॥१०१७॥

यदि शनि से पञ्चम में राहु, मंगल, सूर्य, आदि के चार पापग्रह हों तो दुःस्थिति तथा दुर्भिक्ष करते हैं ॥१०१२॥

और शनि, राहु से भी तृतीय में पापग्रह हों तो स्वास्थ्यकारक होते हैं, तथा इन दोनों से पञ्चम में पापग्रह हों तो दुःख, और दुर्भिक्ष का कारण होते हैं ॥१०१३॥

बृहस्पति, राहु, शनि, मंगल, ये एक एक करके यदि त्रिक संज्ञक में हो तो धान्य खरीदना चाहिये, और यदि वे पञ्चक संज्ञक में हों तो धान्य का विक्रय करना चाहिये ॥ १०१४ ॥

शनि, मंगल, राहु, ये सब ग्रह यदि धनु, या मीन में स्थित हों तो पृथ्वी का तृतीयांश ही शेष बचता है और दुर्भिक्ष होता है ॥१०१५॥

गुरु से दिखाये हुए उन दोनों त्रिक, पञ्चक योगों को मैंने कहा, और अब ग्रहों के योग से रोहिणी का शुभाशुभ फल कहता हूं ॥१०१६॥

रोहिणी में शुभग्रहों का योग हो और उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि नहीं हो और सब ग्रह उसके उत्तर मार्ग में हों तो निश्चय सुभिक्ष होता है ॥ १०१७ ॥

1. शन्यारतमः सौ for सत्यारतमसो A. 2. उत्तरगै० for उत्तरगै० A.

चन्द्रस्तोकमपि व्योम्नि रोहिणीशकटं स्पृशन्[1] ।
उद्गच्छति यदा वाच्यं दुर्भिक्षं तत्र नित्यशः ॥१०१८॥
रोहिण्या यदि मध्येन चन्द्रो गच्छति पाटयन्[2] ।
तदा दुस्थं विजानीयात्[3] क्रूरयुक्ते विशेषतः १०१९॥
अथ चन्द्रो यदा ब्राह्मीं दक्षिणेनैव गच्छति ।
दुर्भिक्षेण तदा भूमेर्युगान्त इव जायते ॥१०२०॥
रोहिण्यामेकनक्षत्रे स्यातां चन्द्रदिवाकरौ[4] ।
द्वितीयायां प्रजाहानिर्दुर्भिक्षेण भयेन वा ॥१०२१॥
कुजः शनिर्वा राहुर्वा भिनत्ति यदि रोहिणीम् ।
ध्रुवं तदा पयोम्भोधौ निमज्जति जगज्जनः ॥१०२२
यदि तत्र च चन्द्रारराहुमन्दास्तु दक्षिणाः ।
तस्यास्तदा बुधैर्वाच्यो महांश्च प्रलयो भुवः ॥१०२३॥

आकाश में चन्द्रमा थोड़ा भी रोहिणी शकट का भेदन करता हुआ उदय हो तो वहां नित्य दुर्भिक्ष होता है ॥ १०१८ ॥

यदि चन्द्रमा रोहिणी शकट के मध्य को भेदन करता हुआ उदय हो तो दुस्थिति होती है और यदि पापग्रह का योग हो तो विशेष दुःस्थिति होती है ॥ १०१९ ॥

यदि चन्द्रमा रोहिणी शकट के दक्षिण से जाय तो पृथ्वी में युगान्त के समान दुर्भिक्ष होता है ॥ १०२० ॥

यदि चन्द्रमा, सूर्य, दोनों एक साथ, द्वितीया को रोहिणी नक्षत्र में हों तो दुर्भिक्ष से तथा भय से प्रजा की हानि होती है ॥ १०२१ ॥

मंगल, शनि, वा राहु, यदि रोहिणी शकट को भेदन करें तो निश्चय संसार के लोग पानी में डूबते हैं ॥ १०२२ ॥

यदि चन्द्रमा, मगल, राहु, शनि, रोहिणीशकट के दक्षिण में हों तो पण्डित लोग पृथ्वी का महाप्रलय कहें ॥ १०२३ ॥

1. स्पृशेत् for स्पृशन् A. 2. गच्छन् विपाटयन् for गच्छति पाटयन् A. 3. तदा हि दुस्थं जानीयात् for तदा दुस्थं विजानीयात् A. 4. चेत्स्यातां चन्द्रभास्करौ for स्यातां चन्द्रदिवाकरौ A.

चन्द्रमण्डलमध्येन वेधं कुर्वन्ति चेद्ग्रहाः ।
दुर्भिक्षं जायते ऽवश्यं विग्रहोऽप्यन्तरान्तरा ॥१०२४॥
यदा ग्रहेण सौम्येन क्रूरेणापि च सम्मुखः ।
विद्धः क्रूरः शुभो वापि दुर्भिक्षं तत्र निश्चितम् ॥१०२५॥
सर्वनक्षत्रमध्येन रोहिणी पतिता त्रिके ।
सौम्ययोगे शुभे च स्यादशुभा क्रूरयोगतः ॥१०२६॥
इति रोहिणीयोगाः ।
अथाषाढीयोगं वच्मि —
मीनसंक्रान्तिकाले च पौष्णभागे दिने भवेत् ।
यत्र विद्युच्छुभो वातस्ततो गर्भो ध्रुवो भवेत् ॥१०२७
मेषसंक्रान्तिकालात्तु नवस्वपि दिनेष्वपि ।
यत्राभ्रं वातविद्युत्स्यादार्द्रादौ तत्र वर्षति । ॥१०२८॥

---

यदि चन्द्रमण्डल के मध्य से ग्रह वेध करें तो अवश्य दुर्भिक्ष होता है और मध्य मध्य में विग्रह भी होता है ॥ १०२४ ॥

यदि शुभग्रह या पाप ग्रह से पाप, या शुभ ग्रह का सम्मुख वेध हो तो निश्चय दुर्भिक्ष होता है ॥ १०२५ ॥

त्रिक नक्षत्र में सब नक्षत्र से रोहिणी यदि पतित हो तो शुभग्रह के योग से शुभ होता है और अशुभ ग्रह के योग से अशुभ होता है ॥ १०२६ ॥

इति रोहिणीयोग:

मीन संक्रांति काल में रेवती नक्षत्र हो उस दिन यदि विद्युत् तथा शुभ वायु बहे तो वहां निश्चय गर्भ समझना चाहिये ॥ १०२७ ॥

मेष संक्रांति काल से नौ दिनों में जिस दिन जहां पर मेघ, वायु, विद्युत हो तो आर्द्रा आदि क्रम से उस नक्षत्र में वहां वर्षा होती है ॥ १०२८ ॥

किं वा नवसु यामेषु वाताआदि शुभं भवेत् ।
तस्यां च दिशि[1] संपूर्णं तद्दिनेऽप्यखिले जलम् ॥१०२९॥
आषाढ्यां घटिकाषष्ट्यां मासद्वादशनिर्णयः ।
द्वादश पञ्चका षष्ठिरित्येवं क्रममादिशेत् ॥१०३०॥

पञ्चनाडी भवेन्मासः षष्ठ्या[2] वर्ण[3]स्य निर्णयः ।
सर्वरात्रं यदाभ्राणि वातौ पूर्वोत्तरौ यदि ॥१०३१॥
तत्र वर्षे कणाः पुष्टा भवन्ति जगतीप्सिताः ।
यदि नाभ्रस्य लेशोऽपि वातौ पूर्वोत्तरौ नहि ॥१०३२॥

न वर्षति तदा देवो[4] दुष्टकालो भवेदिह ।
यद्यभ्रं स्वल्पकं जातं मध्ये वातेषु वर्षति ॥१०३३॥
आद्ये मासे यदाभ्राणि वातौ पूर्वोत्तरौ यदि ।
आद्ये मासे भवेद्वृष्टिर्वाञ्छितादधिका क्षितौ ॥१०३४॥

---

वा, मेष संक्रांति काल से नौ प्रहरों में जिस दिशा में शुभ वायु, मेघ, विद्युत हो तो, उस दिशा में आर्द्रा आदि क्रम से उस नक्षत्र में वर्षा होती है ॥ १०२६ ॥

आषाढ़ी पूर्णिमा में साठ घटी पर से द्वादश मासों का निर्णय करें, साठ घड़ी को द्वादश भाग करने पर पांच पांच घटी के क्रमसे आदेश करें ॥ १०३० ॥

पांच घटी से एक मास का तथा साठ घटी से वर्ष का फल निर्णय करें, यदि सम्पूर्ण रात्रि मेघ, तथा पूर्वी उत्तरी वायु वहे तो ॥ १०३१ ॥

उस वर्ष में अभीप्सित धान्य होता है, और यदि आषाढ़ी में मेघ का लेश भी नहीं हो तथा पूर्वी, उत्तरी वायु नहीं वहे ॥ १०३२ ॥

तो इन्द्र वर्षा नहीं करते हैं और दुष्ट काल होता है, यदि थोड़ा भी मेघ, तथा वायु वहे तो वर्षा होती है ॥ १०३३ ॥

यदि पहले मास के घटी विभाग में मेघ, तथा पूर्वी उत्तरी वायु वहे तो पहले मास में इच्छा से अधिक वर्षा होती है ॥ १०३४ ॥

---

1. तस्यां च दिशि for यस्यां दिशि च A. 2. षष्ठ्यां for षष्ठ्या A, Bh. 3. वर्षस्य for वर्णस्य Bh. 4. मेघो for देवो A.

आषाढ्यां च विनष्टायां नूनं भवति निष्कणम् ।
ग्रहणाद्यैरिधपाताद्यैः सत्यं नश्यति पूर्णिमा ॥१०३५॥
दिनभागे निशाभ्राणि यदा भवन्ति तत्क्षणम् ।
तत्र मासे भवेद्वृष्टिर्वातैरपि शुभैः शुभा ॥ १०३६ ॥
यथाषाढीदिने रात्रिस्तथाषाढश्च निश्चितः ।
प्रमाणघटिकाः[1] पञ्च पञ्चैव श्रावणः स्मृतः ॥ १०३७ ॥
पञ्चभाद्रपदो मासस्ततः पञ्चाश्विनः स्मृतः ।
यथाभ्रकुल[2]नाडीषु वातौ पूर्वोत्तरौ यदि ॥ १०३८ ॥
तत्र मासे भवेद् वृष्टिः पवनाभ्रादि मानतः ।
तत्र रात्रावपि ज्ञेयाः पवनाभ्राः सर्वदिग्गताः ॥ १०३९ ॥
वृष्ट्यादिरहितैरभ्रैः पूर्णिमा सुखदायिनी ।
वृष्टिकणान् धनान् दत्ते पर्वाद्युत्पातवर्जिताः ॥ १०४० ॥

---

यदि आषाढ़ी पूर्णिमा नष्ट हो तो निश्चय धान्य नहीं होता, ग्रहण आदि से तथा नक्षत्रपात से पूर्णिमा नष्ट होती है ॥ १०३५ ॥

दिन या रात्रि में जिस क्षण में मेघ दीख पड़े उस मास में वर्षा होती है और शुभ वायु से शुभ होता है ॥ १०३६ ॥

आषाढ़ी पूर्णिमा की रात्रि में आषाढ़ का निश्चय करें, पांच पांच घटी का एक एक मास का प्रमाण होता है, इस तरह पांच घटी का श्रावण मास हुआ ॥ १०३७ ॥

पांच घटी का भाद्रमास, और पांच घटी का आश्विन मास, मासों में जिस मास के घटीविभाग में मेघ तथा पूर्वी उत्तरी वायु बहें ॥ १०३८ ॥

उस मास में वायु तथा मेघ आदि के मान से वर्षा होती है, और उस रात्रि में भी सब दिशाओं में वायु तथा मेघ, आदि का विचार करें ॥ १०३९ ॥

वृष्टि आदि से तथा उत्पात से रहित मेघ पूर्णिमा में दिखाई दे तो वह पूर्णिमा सुख, वर्षा, धान्य, तथा धन आदि देने वाली होती है ॥ १०४० ॥

---

1. प्रथम for प्रमाण A. 2. यथाभ्र for यथाभ्र A.

दिने रात्रिविभागे च यदाभ्राणि भवन्ति चेत् ।
तत्र काले ध्रुवं वृष्टिर्भुक्तनाडीप्रमाणतः ॥ १०४१ ॥
येषु मासेषु ये दग्धा गर्भाः पौषादिसम्भवाः ।
तद्रात्रौ पञ्चनाडीषु चन्द्रो भवति निर्मलः ॥ १०४२ ॥
दग्धा गर्भाश्च ये पूर्वमुत्पातैः शीतकालजैः ।
आषाढीमध्यतस्तेन चन्द्रमास्तत्र निर्मलः ॥१०४३॥
पौषादिसम्भवे गर्भे ध्रुवमुत्पातसम्भवः ।
तेनाषाढीदिनं सर्वं द्रष्टव्यं वृष्टिहेतवे ॥ १०४४॥
यथाषाढीदिनं रात्रिरभ्रैर्वातैश्च पूरितम् ।
तदा गर्भाःशुभा ज्ञेयाः शीतकालेऽपि धीमता ॥१०४५॥
एकमेव दिनं प्रेक्ष्यं कालनिष्पत्तिहेतवे ।
अष्टयामाभ्रवातौ चेद्वर्षं यावत्तदा शुभम् ॥१०४६॥

---

दिन या रात्रि में जिस घटीविभाग में मेघ हो, भुक्तघटी के प्रमाण से उस मास में अवश्य वर्षा होती है ॥ १०४१ ॥

जिन मासों का पौष आदि मासों में गर्भ नष्ट हो गया हो उस रात्रि में उन मासों के पांच घटीविभाग में चन्द्रमा निर्मल दिखाई देते हैं ॥ १०४२ ॥

पहले शीत काल में जिस मास का गर्भ नष्ट हो गया हो, आषाढ़ी पूर्णिमा में उस मास के घटीविभाग में चन्द्रमा निर्मल दिखाई देते हैं ॥ १०४३ ॥

पौष आदि मासों में गर्भ सम्भव में अवश्य उत्पात का सम्भव होता है, इसलिये आषाढ़ी पूर्णिमा में सम्पूर्ण दिन वर्षा के लिये देखना चाहिये ॥ १०४४ ॥

जैसे आषाढ़ी पूर्णिमा के सम्पूर्ण दिन रात्रि मेघ तथा वायु से युक्त हो तो शीत काल में भी गर्भ शुभ जाने ॥ १०४५ ॥

काल निष्पत्ति के लिये एक ही दिन देखना चाहिये, यदि आठों प्रहर में मेघ तथा वायु हो तो वर्षपर्यन्त शुभ होता है ॥ १०४६ ॥

आषाढ्यां पूर्विकाषाढा वर्षं यावत् शुभंकराः ।
आवर्षं मध्यमं धान्यं देशे सर्वत्र कथ्यते[1] ॥१०४७॥
अभ्रं विना यदा रम्यौ वातौ पूर्वोत्तरौ यदि ।
यत्र याम्यार्द्धके[2] तत्र मासे वृष्टिर्हठाद्भवेत् ॥१०४८॥
आषाढीयोगाः ।
मासाभिधाननक्षत्रं राकायां क्षीयते यदा ।
महर्घं च तदावश्यं वृद्धौ ज्ञेया समर्घता ॥१०४९॥
मासनामकनक्षत्रं राकायां न भवेद्यदा[3] ।
महर्घं च तदावश्यं तन्नियोगे[4] विशेषतः ॥१०५०॥
धिष्ण्यवृद्धिदिने चन्द्रः क्रूरैर्यदि न दृश्यते ।
समर्घं जायते पुष्टं क्रूरदृष्टे महर्घता ॥१०५१॥

---

आषाढ़ी पूर्णिमा में यदि पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र हो तो वर्ष पर्यन्त शुभ होता है, और सम्पूर्ण वर्ष धान्य की निष्पत्ति तथा प्रजा का सौख्य इत्यादिक सब देशों में होता है ॥ १०४७ ॥

आषढ़ी पूर्णिमा में जिस यामार्द्ध में मेघ को छोड़कर सुन्दर पूर्वी तथा उत्तरी वायु वहे तो उस मास में हठात् वर्षा होती है ॥१०४८॥

इति आषाढीयोगाः ।

मासों का नाम नक्षत्र पूर्णिमा में यदि क्षय हो जाय तो महर्घ होता है और यदि उस नक्षत्र की वृद्धि हो तो समर्घ होता है ॥१०४६॥

मासों का नाम नक्षत्र यदि पूर्णिमा में नहीं हो तो अवश्य महर्घ होता है उसके नियोग में विशेष रूप से कहते हैं ॥१०५०॥

जिस दिन नक्षत्र की वृद्धि हो और चन्द्रमा पापग्रहों से नहीं देखे जाते हों तो समर्घ होता है, और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो महर्घ होता है ॥१०५१॥

---

1. For this line A reads, आवर्षं धान्यनिष्पत्तिः प्रजासौख्यमविग्रहात । 2. यामार्द्धिके for याम्यार्द्धिके A. 3. क्षीयते यदि for न भवेद्यदा Bh. 4. तिथि for तन्नि Bh. तत्र A.

धिष्ण्यवृद्धिर्दिने यत्र तिथेः पार्श्वाद् गरीयसी ।
दिने तत्र समर्घं स्यात्तिथिवृद्धौ महर्घता ॥१०५२॥

ऋक्षवृद्धौ रसाधिक्यं कणाधिक्यं च निश्चितम् ।
योगाधिक्ये रसोच्छेदो दिनार्घः प्रत्यहं स्फुटम् ॥१०५३॥

षड्भिश्च नाडिकाभिश्च धिष्ण्यवृद्धिः क्रमाद् यदा ।
प्रत्येकं च तिथेर्यत्र समर्घं तत्र जायते ॥१०५४॥

षड्भिश्च नाडिकाभिश्च धिष्ण्यवृद्धिः क्रमाद् यदा ।
प्रत्येकं तत्र धिष्ण्ये च महर्घं विद्धि निश्चितम् ॥१०५५॥

तिथिनक्षत्रयोर्वृद्धिं विज्ञाय प्रत्यहं द्वयोः ।
सर्वं टिप्पनकं ज्ञात्वा लाभालाभौ विनिर्दिशेत् ॥१०५६॥

यावन्नाड्य उडोवृद्धिः समर्घं तद्विशोपकाः ।
यावन्नाड्यस्तिथेर्वृद्धिर्महर्घं तत्प्रमाणकम् ॥१०५७॥

---

जिस दिन नक्षत्र की वृद्धि हो तो उस दिन वहां समर्घ होता है, और तिथि वृद्धि हो तो महर्घ होता है ॥१०५२॥

नक्षत्र की यदि वृद्धि हो तो रस, तथा कण का आधिक्य होता है, और योग का आधिक्य होने पर रस का उच्छेद होता है ऐसे अर्घ का निश्चय करें ॥१०५३॥

जब छः छः घटी के क्रम से नक्षत्र की वृद्धि हो तथा प्रत्येक तिथि की वृद्धि हो तो वहां समर्घ होता है ॥१०५४॥

जब छः छः नाड़ी के क्रम से नक्षत्र की वृद्धि हो तो प्रत्येक नक्षत्र में महर्घ होता है ॥१०५५॥

तिथि, और नक्षत्र, इन दोनों की वृद्धि प्रत्येक दिन जान कर तथा पूर्वोक्त सब विषयों को विचार कर लाभ या हानि का आदेश करें ॥१०५६॥

जितनी घड़ी नक्षत्र की वृद्धि हो उतने विशोपक प्रमाण समर्घ होता है, और जितनी घटी तिथि वृद्धि हो उतने प्रमाण महर्घ होता है ॥१०५७॥

भाद्रपदपौषमाघे सितपक्षे पतति या तिथिस्तस्याः ।
द्विगुणदिनैर्नृपमरणं यदि वा दुर्भिक्षमतिरौद्रम् ॥१०५८॥

पूर्णिमास्याममावास्यां संलग्नस्तारकाक्षयः ।
महर्घं तत्र पूर्वार्घान्मासमध्येऽपि जायते ॥१०५९॥

मासमध्ये यदा द्वौ तु योगौ च त्रुटयतः क्रमात् ।
महर्घे घृततैले द्वे योगे वृद्धौ समघके ॥१०६०॥

वर्षाकाले त्रिमासेषु नक्षत्रं वर्द्धते स्फुटम् ।
तिथिस्त्र्युटयति संलग्ना शुभः कालस्तदा बहु ॥१०६१॥

वर्षाकाले त्रिमासेषु नक्षत्रं त्रुटति स्फुटम्[1] ।
तिथिश्च वर्धते तत्र ध्रुवं लोको विनश्यति ॥१०६२॥

अधिकोना समा वा स्यान्नक्षत्रात् पूर्णिमा यदा ।
महर्घं च समर्घं च तुल्यार्घमशनं क्रमात् ॥१०६३॥

भाद्र, पौष, माघ, इन मासों के शुक्ल पक्ष में जिस तिथि का क्षय हो तो उस से उस तिथि के द्विगुण दिन मे जाकर राजा का मरण होता है वा दुर्भिक्ष और अत्यन्त रौद्र समय होता है ॥१०५८॥

यदि पूर्णिमा, अमावास्या, दोनों में लगातार तारा का क्षय हो तो वहां मास के मध्य मे भी पूर्वार्घ से महर्घ होता है ॥१०५९॥

एक मास के मध्य मे यदि दो योगों का क्षय हो तो क्रम से घृत तैल दोनों महर्घ होता है, और योग की वृद्धि हो तो समर्घ होता है ॥१०६०॥

वर्षा काल मे तीनों मास मे लगातार नक्षत्र की वृद्धि, तथा तिथि का क्षय हो तो बहुत शुभ काल होता है ॥१०६१॥

यदि वर्षा काल मे तीनों मास में नक्षत्र का क्षय हो और तिथि की वृद्धि हो तो अवश्य लोगों का नाश होता है ॥१०६२॥

यदि पूर्णिमा मे उस मास के नाम नक्षत्र से अधिक या, ऊन, या, सम नक्षत्र हो तो क्रम से महर्घ, समर्घ, तुल्यार्घ, होता है ॥१०६३॥

1. ध्रुवम् for स्फुट A.

पूर्वात्रयं मूलमघा च सार्पिरौद्री च हीना तिथितो यदि स्यात् ।
कुहूदिने चैव कणा महर्घाः पूर्वार्धतः स्युर्जगतीविहीनाः॥१०६४॥

मार्गादिपञ्चमासेषु आद्यपक्षे[1] तिथिक्षयः[2]
दौस्थ्यं वा छत्रभंगो वा जायते राजविग्रहः ॥१०६५॥

शुक्लपक्षे यदा शुक्रः करोत्यस्तमनोदयम् ।
राजपुत्रसहस्राणां मही पिबति शोणितम् ॥१०६६॥

आदित्यग्रासकाले च दुर्भिक्षं प्रायशः पुनः ।
तत्तिथिधिष्ण्यवाच्यानि महर्घाणि भवन्ति हि ॥१०६७॥

द्वयोराषाढयोर्मध्ये यदा पर्वत्रयं भवेत् ।
क्षितौ भवेन्महायुद्धं नृपमृत्युः स्फुटः स्मृतः ॥१०६८॥

तिष्यपुष्यमघाब्राह्मी रेवतीत्युत्तरेषु च ।
यदा शनिर्भवेद् वाच्यो विग्रहोऽपि तदा महान् ॥१०६९॥

---

पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्वभाद्र, मूल, मघा, अश्लेषा, आर्द्रा, ये नक्षत्र यदि तिथि से हीन हों तो अमावास्या में पूर्वार्ध से कण महर्घ होता है और पृथ्वी शस्यहीन होती है ॥१०६४॥

मार्गशीर्ष आदि पांच मासों के शुक्ल पक्ष में यदि तिथिक्षय हो तो दुःस्थिति, तथा छत्रभंग, राजाओं में विग्रह होता है ॥१०६५॥

जब शुक्ल पक्ष में शुक्र का अस्त तथा उदय हो तो हजारों क्षत्रियों का शोणित पृथ्वी पीती है ॥१०६६॥

सूर्य के ग्रहण काल में प्रायः दुर्भिक्ष होता है, उस तिथि नक्षत्र में महर्घ होता है ॥१०६७॥

पूर्वाषाढ़ तथा उत्तराषाढ़ नक्षत्र के मध्य में तीनों पर्व ( चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा ) हों तो पृथ्वी पर महायुद्ध होता है और राजा का नाश होता है ॥१०६८॥

स्वाती, पुष्य, मघा, रोहिणी, रेवती, उत्तरफल्गुनी; उत्तराषाढ़, उत्तरभाद्र, इन नक्षत्रों में यदि शनि हो तो महान् विग्रह होता है ॥१०६९॥

1. शुक्ल for आद्य A. 2. ०क्षये for ०क्षयः A.

वर्षाकाले परीवेषः सूर्येन्दोश्चेद् यदा भवेत् ।
चतुर्दिवसमध्ये च देवो वर्षति भूतले ॥१०७०॥
ऐन्द्रं धनुर्यदोदेति प्रभाते पश्चिमाश्रितम् ।
तद्दिने[1] पञ्चमे यामे घनः प्लावयति महीम् ॥१०७१॥
यत्र राशौ भवेत्पर्व तस्या वाच्यं क्रयाणकम् ।
अत्यर्घं लभ्यते मूल्यं[2] पीड्यमानं च राहुणा ॥१०७२॥
यत्र राशौ कुजो याति चक्रं[3] तत्र सुनिश्चितम् ।
तद्वाच्यानि क्रयाणानि महर्घाणि भवन्ति हि ॥१०७३॥
मकरे मङ्गले सौख्यं ततः[4] कुम्भे च पञ्चके ।
यदा गच्छेत्तदा दौस्थ्यं तुलायामपि मंगलः ॥१०७४॥
पञ्चवर्षं[5] परीवेषो वारुणे मण्डले यदा ।
तदा वेगवती वृष्टिर्जायते यामपञ्चके ॥१०७५॥

---

वर्षाकाल में सूर्य चन्द्रमा का यदि परिवेष हो तो चार दिन के अन्दर पृथ्वी पर वर्षा होती है ॥१०७०॥

प्रातःकाल में पश्चिम दिशा में यदि इन्द्रधनुष का उदय हो तो उसी दिन पांच प्रहर में मेघ पृथ्वी को डुबा देता है ॥१०७१॥

जिस राशि में पर्व हो उस राशि से क्रयाणक कहें, यदि वह राशि राहु से पीडित हो तो बहुत महर्घ वस्तु मिले ॥१०७२॥

जिस राशि में मंगल जाता है उस राशि में निश्चय क्रयाणक महर्घ होता है ॥१०७३॥

मकर में मंगल हो तो सौख्य होता है, और कुम्भ से पांच राशि में यदि मंगल जाय तो दौस्थ्य होता है ॥१०७४॥

यदि वारुण मण्डल में पांच याम परिवेष हो तो पांच वर्ष तक बहुत वृष्टि होती है ॥१०७५॥

---

1. तद्दिनात् for तद्दिनं Bh 2. शून्यं for मूल्यं A. 3. वक्रं for चक्रं Bh. 4. तमः for ततः Bh 5. वर्षा for वर्षं A.

चटन्ति भुजगा वृक्षे यदि भूतापपीडिताः ।
चतुर्दिवसमध्ये तु वृष्टिसिक्ता धरा मता ॥१०७६॥

ऊर्ध्वा चेद्गडरी[1] शेते घर्मातिशयपीडिता ।
तदा वर्षति पर्जन्यश्चतुर्दिवसमध्यतः ॥१०७७॥

अम्लं तक्रं च तत्कालं लोहे कट्टस्तथैव[2] हि ।
चतुर्दिवसमध्ये तु मेघवृष्टिर्घना मता ॥१०७८॥

कर्पासरसमांजिष्ठा बहुमूल्यास्तदा स्मृताः ।
सक्रूरे मंगले विद्धे क्रूरान्तरगतेऽपि च ॥१०७९॥

चतुर्दशी तु आषाढी हीना वर्षे यदा भवेत् ।
भावाश्रयेण तद् वाच्यं महर्घं च समे समम् ॥१०८०॥

आषाढी त्वधिका तस्याः समर्घं तु तदा मतम् ।
संवत्सरस्य वर्तिन्याः शून्यपाते तु निष्कणम् ॥१०८१॥

---

सर्प यदि पृथ्वी के ताप से पीडित होकर वृक्ष पर चढ़ें तो चार दिन के अन्दर पृथ्वी वर्षा से सिक्त होती है ॥१०७६॥

घर्म से अतिशय पीड़ित होकर यदि गडरी उर्ध्वाभिमुख सोवे तो इन्द्र चार दिन के अन्दर वर्षा करते हैं ॥१०७७॥

यदि अम्ल, तक्र, लोहा, कट्ट आदि का पात हो तो चार दिन के अन्दर वर्षा होती है ॥१०७८॥

मंगल और पापग्रहों से युक्त हो, या विद्ध हो या पाप ग्रहों के अन्तर में हो तो कार्पास आदि का बहुत मूल्य होता है ॥१०७९॥

जिस वर्ष में आषाढ़ की पूर्णिमा तथा चतुर्दशी की हानि हो तो महर्घ होता है, इस प्रकार भाव के आश्रय से महर्घ और सम होने से समान कहना चाहिये ॥१०८०॥

यदि आषाढ़ी अधिक हो तो समर्घ होता है, इस प्रकार जिस वर्ष में उसका क्षय हो तो कण नहीं होता है ॥१०८१॥

---

1. कुररी for गडरी Bh. we have adopted the reading of A. Amb. text reads उर्ध्वे गडरी शेते । A[1] reads ऊर्ध्वा चेद्गाड्री शेते । 2. किट्ट for कट्ट A.

इत्यघकाण्डे त्रिकपञ्चकयोगाः । आषाढीयोगाः रोहिणी—
योगाश्च[1] समाख्याताः ॥
अतः परं चूडामणिसारोद्धारेणार्घकाण्डमुच्यते ।
अर्घकाण्डं प्रवक्ष्यामि नरेन्द्रक्षोभकारकम् ।
येन विज्ञातमात्रेण क्षेमलाभौ यथा ध्रुवौ ॥१०८२॥
पूर्वमासाभिधानं च प्रष्टुर्नाम[2] लिखेत्ततः ।
स्थापयेद् ध्रुवकं भिन्नं सूक्ष्मवर्णक्रमेण च ॥ १०८३ ॥
कुसुमा निर्मलाः ख्याताः प्रश्ना ग्राह्या यथोद्भवाः ।
स्वराणां द्विगुणा संख्या वर्णसंख्या समा भवेत् ॥ १०८४ ॥
मासभाण्डस्थितो राशिर्गणयेत् प्रश्नसंख्यया ।
मात्रासंख्याहते भागे शेषांकैः फलमादिशेत् ॥१०८५ ॥
मासस्य ध्रुवके हीनं भाण्डस्थाने ध्रुवं भवेत् ।
तस्मिन् मासे च तद् भाण्डं महर्घं च भविष्यति ॥१०८६॥

---

इत्यर्घकाण्डे त्रिकपञ्चकयोगाः । आषाढीयोगाश्च
रोहिणीयोगाश्च समाख्याताः ॥
अतः परं चूडामणिसारोद्धारेणार्घकाण्डमुच्यते ॥

अब अर्घ काण्ड को कहते हैं जो कि राजा को भी क्षोभ कारक होता है, जिसको जानते ही निश्चय क्षेम और लाभ होता है ॥१०८२॥

पहले अभीष्ट मास का नाम उसके बाद भाण्ड का नाम लिखें तब सूक्ष्म वर्णों के क्रम से पृथक् ध्रुवा की स्थापना करें ॥१०८३॥

प्रश्न में ख्यात निर्मल पुरुषों का नाम ग्रहण करके उसकी स्वर संख्या को द्विगुण करें और वर्ण संख्या को समान ही स्थापित करें ॥१०८४॥

मास और भाण्डस्थित राशि को मात्रा संख्या से गुणा करें और वर्णों की संख्या से भाग देवें जो शेष बचे उससे फल का आदेश करें ॥१०८५॥

यदि मास की ध्रुवा ( शेष ) हीन हो और भाण्ड स्थान में अधिक हो तो उस मास में वह भाण्ड महर्घ होगा ॥ १०८६ ॥

---

1. A adds जलयोगाश्च before समाख्याताः 2. भाण्ड० for प्रष्टु० Bh.

विलोमं दृश्यते यत्र समर्घं तत्र जायते ।
उभये विषमे तद्वद् व्याख्यातं च समे समम् ॥ १०८७ ॥
मासस्य ध्रुवके भूरिभाण्डस्थानेऽणुकं यदि ।
समर्घं च तदादिष्टं वीतरागेण जन्मिनाम् ॥ १०८८ ॥
उभयोः स्थानके शून्यं महर्घमिति दृश्यते ।
अर्घान्तरमिति ज्ञात्वा प्रमाणं तत्र कारयेत् ॥ १०८९ ॥
इति चूडामणिसूक्ष्माक्षराङ्कप्रमाणेनार्घकाण्डम् ।
मण्डलाभिप्रायेणापि कथ्यते ।
अग्निमण्डलनक्षत्रैर्यदा संक्रमते रविः ।
सहितो भौमवारेण मस्पृहा धातुजातयः ॥ १०९० ॥
रूप्यसौवर्णकांस्यादित्रपुताम्राणि पित्तलम् ।
[1]वातधिष्ण्यैस्तु सङ्क्रान्तिः शनौ वारे विशेषतः ॥ १०९१ ॥

यदि विलोम हो अर्थात् मास की ध्रुवा अधिक हो और भाण्ड की हीन हो तो उस मास में समर्घ होता है। दोनों के विषम होने पर ऐसा फल होता है, और यदि दोनों समान हों तो समान फल होता है ॥१०८७॥

यदि मास की ध्रुवा अधिक हो और भाण्ड की ध्रुवा हीन हो तो समर्घ होगा ऐसा आदेश करें ॥ १०८८ ॥

यदि दोनों के स्थान में ध्रुवा शून्य हो तो महर्घ होता है, इस प्रकार अर्घान्तर को भी देखकर इसका प्रमाण करें ॥ १०८९ ॥

इति चूडामणिसूक्ष्माक्षराङ्कप्रमाणेनार्घकाण्डम् ।
अथ मण्डलाभिप्रायेणापि कथ्यते ।

यदि अग्निमंडलनक्षत्र में मंगलवार रवि की संक्रान्ति हो तो धातुजाति सस्पृहा होती है ॥ १०९० ॥

यदि वायु मंडल नक्षत्र में शनिवार रवि की संक्रान्ति हो तो चान्दी सोना, कांस्य, त्रपु, ताम्र, पित्तल, आदि धातुओं की विशेष मांग होती है ॥ १०९१ ॥

1. शत० for वात० A.

लोहभेदाः रसाः सर्वे शीघ्रं भवन्ति सस्पृहाः ।
नक्षत्रैर्वारुणैर्वापि बुधवारेण संक्रमे ॥ १०९२ ॥
पच्यन्ते धान्यभेदास्तु रत्नान्यम्भोधिजानि च ।
नक्षत्रैः पार्थिवैर्वापि सूर्यवारसमन्वितैः ॥ १०९३ ॥
सस्पृहा ये सुगन्धाढ्या वारणादि[1]चतुष्पदाः ।
अथवा सर्वमासेषु पूर्णिमायां दिवानिशम् ॥ १०९४ ॥
अन्वेषयेत्तदुत्पातात् परिवेषोर्कसोमयोः ।
यस्मिन्मण्डलधिष्ण्ये च दुर्निमित्तं च दृश्यते ॥ १०९५ ॥
तन्मण्डलस्य वाच्याश्च क्षणाद्भवन्ति सस्पृहाः ।
एवं द्वारेण संक्रान्तेरर्घकाण्डं प्रदर्शितम् १०९६ ॥

अथ मण्डलानि

ज्येष्ठानुराधारोहिण्यौ धनिष्ठा श्रवणस्तथा ।
अभीचिरुत्तराषाढा शुभं माहेन्द्रमण्डलम् ॥ १०९७ ॥

---

यदि वारुण मंडल नक्षत्र में बुधवार रवि की संक्रान्ति हो तो लोहा तथा रस जाति सस्पृहा होती है ॥ १०६२ ॥

यदि माहेन्द्र मण्डल नक्षत्र में रविवार रवि की संक्रान्ति हो तो धान्यादि, तथा रत्न, और समुद्र से उत्पन्न होने वाले मुक्ता आदि पचित होते हैं ॥ १०६३ ॥

और सुगन्धित द्रव्य, हाथी आदि के चतुष्पद भी सस्पृह होते हैं. अथवा सब मासों में पूर्णिमा को रात्रिन्दिवा देखें ॥ १०६४ ॥

उत्पात से तथा सूर्य चन्द्रमा के परिवेष से अन्वेषण करें जिस मण्डल के नक्षत्र में दुर्निमित्त देख पड़े ॥ १०६५ ॥

उस मण्डल को उसी क्षण सस्पृहा कहें. इस प्रकार संक्रान्ति के द्वारा अर्घ काण्ड को दिखलाया ॥ १०६६ ॥

अथ मण्डलानि

ज्येष्ठा, अनुराधा, रोहिणी, धनिष्ठा, श्रवण, तथा अभिजित् उत्तराषाढ़ा, ये नक्षत्र माहेन्द्र मंडल कहलाते हैं यह मण्डल शुभकारक होता है ॥ १०६७ ॥

---

1. वारुण for वारण A. A[1].

आर्द्राश्लेषा शतभिषक् पूर्वाषाढा च रेवती ।
मूलमुत्तरभद्रा च वारुणं शुभकारणम् ॥ १०९८ ॥
भरणी कृत्तिका पुष्यो विशाखा पूर्वफाल्गुनी ।
पूर्वभद्रा मघा चेति चाग्नेयमशुभप्रदम् ॥ १०९९ ॥
चित्रास्वातिमृगाश्विन्यः पुनर्वसुकरौ तथा ।
उत्तरा फाल्गुनी चैव वायव्यमशुभप्रदम् ॥ ११०० ॥
उल्कापातादयः सर्वेऽमीषु स्वसुफलप्रदाः ।
वर्षाकालं विना ज्ञेया वर्षाकाले च वृष्टिदाः[1] । १००१॥
माहेन्द्रं सप्तरात्रेण सद्यो वारुणमण्डलम् ।
आग्नेयमर्द्धमासेन फले मासेन पावनम् ॥ ११०२ ॥
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं राज्ञां सन्धिः परस्परम् ।
आद्यं मण्डलयोर्ज्ञेयं तद्विपरीतमन्त्ययोः ॥ ११०३ ॥

आर्द्रा, अश्लेषा, शतभिषा, पूर्वाषाढा, रेवती, मूल, उत्तराभाद्र, ये नक्षत्र वारुण मण्डल कहलाते हैं, यह मण्डल शुभकारक होता है ॥ १०९८ ॥

भरणी कृत्तिका, पुष्य, विशाखा, पूर्वफल्गुनी, पूर्वभाद्र, मघा, ये नक्षत्र आग्नेय मण्डल कहलाते हैं, यह मण्डल अशुभ कारक होता है ॥ १०९९ ॥

चित्रा, स्वाती, मृगशिरा, अश्विनी, पुनर्वसु, हस्त, उत्तराफाल्गुनी ये वायव्य मण्डल कहलाते हैं. यह मण्डल अशुभ कारक होता है ॥ ११०० ॥

वर्षा काल को छोड़ कर और समय में यदि इन मण्डलों मे उल्कापात इत्यादिक हो तो शुभ फल देते हैं, और वर्षा काल में हो तो वर्षा होती है ॥ ११०१ ॥

माहेन्द्र मण्डल में सात दिन में वारुण मण्डल में सद्यः आग्नेय मण्डल में आधा मास में और वायु मण्डल में मास में फल होता है ॥ ११०२ ॥

पहले दोनों ( माहेन्द्र, वारुण, ) मंडल में सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्य और राजाओं में परस्पर सन्धि होती है, और अन्त्य के दोनों (आग्नेय, वायव्य, ) मण्डल मे उसका विपरीत फल होता है ॥ ११०३ ॥

1. वर्षदाः for वृष्टिदाः A.

माहेन्द्रे वारुणे चैव हृष्टा भवन्ति धनवः ।

उत्पाताः प्रलयं यान्ति धरणी वर्द्धते शिवैः[1] ॥ ११०४ ॥

फलन्ति तरवः कल्पद्रुमा इव नवैः फलैः ।

प्राप्नुवन्ति प्रजासौख्यं राज्यानीव हि भूमिपाः[2] ॥११०५ ॥

वायौ वह्निमहोत्पाताः पीडयन्ति प्रजापुरः ।

गावः शुष्यन्ति वृक्षाश्च पीड्यन्ते विग्रहैर्जनाः ॥ ११०६ ॥

निष्कणा जायते पृथ्वी राजानो जनपीडकाः ।

उद्वशाः सततं देशाः मेघो नव प्रवर्षति ॥ ११०७ ॥

एतैश्च मण्डलैर्ज्ञात्वा सुखदुःखं प्रजोद्भवम् ।

शान्तिं कुर्वन्ति धीमन्तो बलिपूजाविधानतः ॥ ११०८ ॥

पुष्पवत्प्रचुरभाग्यो हेम पुंसा[3] निधिर्नवः ।

वाञ्छितः फलदो नन्द्यादर्घकाण्डं तरुः फली ॥ ११०९ ॥

---

माहेन्द्र, और वारुण मण्डल में गाय प्रसन्न होती हैं, और उत्पात नष्ट होता है, तथा पृथ्वी मंगलों से बढ़ती है ॥ ११०४ ॥

कल्पद्रुम जैसे वृक्षों मे नवीन, नवीन, फल, फूल, हुआ करते हैं, जैसे राजा को राज्य से सुख होता है, वैसे प्रजाओं को सौख्य होता है ॥ ११०५ ॥

वायव्य तथा अग्निमण्डल मे बहुत उत्पात होता है और प्रजा लोग पीड़ित होते हैं, गौ तथा वृक्ष शुष्क होते हैं और विग्रह से लोग पीड़ित होते हैं ॥ ११०६ ॥

और पृथ्वी में कण नहीं होता। राजा लोग लोगों को पीड़ा करते हैं, और देश किसी के वश नहीं रहता। मेघ वर्षा नहीं करते ॥११०७॥

इन मण्डलों के विचार से प्रजाओं का सुख दुःख जानकर, बुद्धिमान लोग पूजा की बलि इत्यादिक विधान से शान्ति करते हैं ॥ ११०८ ॥

इस प्रकार अर्घ काण्डरूपी फल वाला वृक्ष पुष्प जैसे पुरुषों को बहुत भाग्य, हेम, तथा नया निधि, इत्यादि इच्छानुकूल फल देता है ॥ ११०९ ॥

---

1. शवैः for शिवैः A 2. महीश्वराः for हि भूमिपाः A. 3. हेमः पुमान् for हेम पुंसा A.

इति दिनमासवर्षार्घकाण्डे मण्डलपद्धतिः समाप्ता ।

करस्थं धारयेन्मूलं केतकीतालवृक्षयोः ।
मदोन्मत्तो गजस्तस्य द्वारेणैव[1] हि गच्छति ॥ १११० ॥
अमृतोष्णमरीचीनां दिव्याङ्गकोटिकारणम् ।
स्फुरद्भामण्डलव्याजाद्दर्शयन्तं तु केवलम् ॥ ११११ ॥
दहन्तं तु भयोद्यानं द्योतयन्तं जगत्त्रयम् ।
लक्ष्मीलक्षविधातारं नत्वा पार्श्वं जिनेश्वरम् ॥ १११२ ॥
श्रीमद्देवेन्द्रशिष्याणुः सर्वशास्त्राब्धिपारगः ।
श्रीमान् हेमप्रभः सूरिरर्घकाण्डं स्मरत्यसौ ॥ १११३ ॥
सेतिकामानपल्लीनां संख्यां विज्ञाय साम्प्रतम् ।
बहुष्वप्यर्घकाण्डेषु तथ्य[4]शास्त्रं विरच्यते ॥ १११४ ॥
एकदिनार्धमध्ये तु घटिकार्घस्य कारणम् ।
क्रयं त्रिशतषष्टेश्च मूल्यनिश्चयहेतवे ॥ १११५ ॥
चैत्रे यश्च प्रधानोऽर्घः स पण्यार्घोऽत्र गृह्यते ।
प्रत्यहं प्रसभं वापि[5] प्रतिपण्यं च नूतनः ॥ १११६ ॥

इति दिनमासवर्षार्घकाण्डे मण्डलपद्धतिः समाप्ता ।

जो केतकी, तथा ताल वृक्ष के मूल को हाथ में धारण करते हैं और जिन के द्वारा मदोन्मत्त हाथी चलता है, और जो चन्द्रमा, सूर्य के दिव्याङ्ग का कोटि कारण है तथा अपने देदीप्यमान तेजमण्डल को व्याज से दिखलाने वाले, जो भय रूपी उद्यान को दग्ध करते हैं, और तीनों संसार को प्रकाश करते है, तथा लाखों प्रकार से लक्ष्मी को देते हैं, ऐसे जिनेश्वर देव को नमस्कार करके श्रीमन् देवेन्द्र के शिष्य सब शास्त्ररूपी समुद्र में पारंगत श्रीमान् हेमप्रभ सूरि अर्घ काण्ड को स्मरण करते हैं॥१११०-१११३॥

सेतिका तथा पल्लियों की मानसंख्या को सम्प्रति जानकर बहुत अर्घ काण्ड में तथ्य शास्त्र को करते हैं, ॥ १११४ ॥

एक दिनार्ध के मध्य में होने पर भी घटिकार्घ का कारण होता है, तीन सौ साठ खरीदने योग्य वस्तु को मूल्य निश्चय करने के लिये चैत्र में जो प्रधान अर्घ होता है, उस प्रतिपण्यार्घ को प्रतिदिन हठात् ग्रहण करते हैं ॥ १११५-१११६ ॥

1. दूरेणैव for द्वारेणैव A. 2. भयो॰ for भयो॰ A. A[1]. 3. सति॰ for सेति॰ Bh. 4. नव्यं for तथ्य A. 5. प्रातर्भं चापि for प्रसभं वापि A.

त्रिशतषष्टिपण्यानां चतुर्भेदवतामपि ।
प्रत्येकं गणितादीनां चैत्रार्घेणैव निश्चयः ॥ १११७ ॥
वाणीदेवीप्रसादाच्च गुरोः शुद्धोपदेशतः ।
सत्यो भवति शास्त्रार्घो नु भवन्नेव निश्चयः ॥ १११८ ॥
वक्रं याति ग्रहः कश्चिदश्विनाषाढयोर्यदि ।
कर्कतोऽलिनि संक्रान्तौ कर्कतुलार्घसंभवः ।, १११९ ॥
मृगश्चित्रा धनिष्ठा च पुनर्वसू च वासवम् ।
शताख्यं चाग्निदेवं च पञ्चत्रिंशच्छतं भवेत् ॥ ११२० ॥
अश्विनी भरणी कर्णा स्वातिश्च नवतिः पुनः ।
विशाखा रोहिण पौष्णं शतं सार्द्ध बुधैः स्मृतम् ॥११२१॥
आर्द्रानुराधिकाधिष्ण्यशतं[1] विंशतिमिश्रितम् ।
अधिकं पञ्चसप्तत्या पुष्यं हस्तं शतं स्मृतम् ॥ ११२२ ॥

तीन सौ साठ पण्यों का तथा उस के चारों भेदों का प्रत्येक के गणितादि का विचार चैत्रार्घ से ही निश्चित होता है ॥ १११७ ॥

सरस्वती देवी की प्रसन्नता से तथा गुरु के शुद्धोपदेश से अर्घ शास्त्र निश्चय सत्य होता है ॥ १११८ ॥

आश्विन, आषाढ़, में तुल, कर्क के संक्रान्ति में कोई ग्रह वक्री हो तो कर्क तुला का अर्घ सम्भव होता है ॥ १११६ ॥

मृगशिरा, चित्रा, धनिष्ठा, पुनर्वसु, धनिष्ठा, शतभिषा, कृत्तिका इन नक्षत्रों की एक सौ पैंतीस संख्या होती है ॥ ११२० ॥

अश्विनी, भरणी, श्रवणा, स्वाति, इन नक्षत्रों की ६० संख्या होती है, विशाखा, रोहिणी, रेवती, इन नक्षत्रों की १५० संख्या होती है ॥ ११२१ ॥

अनुराधा, आर्द्रा, में १२० संख्या, और तथा हस्त, नक्षत्र में १७५ संख्या होती है, ॥ ११२२ ॥

1· आर्द्रानुराधाधिष्ण्यं च for आर्द्रानुराधिकाधिष्ण्य A. A[1].

शतं च भवत्यश्लेषा पञ्चनवतिपूरितम् ।
एकादशाधिकान्यत्र मघानवशतानि च ॥ ११२३ ॥
सप्तदशाधिकं चात्र शतद्वयं च फाल्गुनी ।
द्वे तु भद्रपदे चैवमेतदृक्षचतुष्टयम् ॥११२४॥
पूर्वाषाढाशते द्वे च पञ्चाशदधिके मते ।
द्वे शते ऽप्युत्तराषाढा पञ्चपञ्चाशदुत्तरे ॥ ११२५ ॥
मूले षष्टिर्भवेदेवं धिष्ण्यसंख्या प्रकीर्तिता[1] ।
षण्णवतिशतान्यष्टौ चतुस्सहस्रपिण्डकः ॥ ११२६ ॥
नक्षत्रसंख्यापिण्डः ४८९६
सिंहधनुर्घटाः सर्वे नवतिसंख्यका मताः ।
शतसंख्यो भवेत्कर्कस्त्वेकविंशतिर्मिश्रितः ॥ ११२७ ॥
पञ्चोत्तरशतं शेषा मेषादय उदाहृताः ।
द्वादशैव शतान्यत्राप्येकत्रिंशद् युतानि च ॥ ११२८ ॥
१२३१ सर्वराशिसंख्यापिण्डः कथितः ।
प्रत्येकं खलु खेटानां संख्यां ब्रवीमि शाश्वतीम् ।

---

अश्लेषा नक्षत्र में १९५ संख्या, और मघा मे ९११ संख्या होती है ॥ ११२३ ॥

पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी, नक्षत्र में २१७ और पूर्वभाद्र, उत्तर भाद्र नक्षत्र में २ संख्या होती हैं यह नक्षत्रचतुष्टय होता है ॥ ११२४ ॥

पूर्वषाढ़ नक्षत्र मे २५० और उत्तराषाढ़ नक्षत्र में २५५ संख्या होती है ॥ ११२५ ॥

मूल नक्षत्र में साठ होता है इस प्रकार नक्षत्रों की संख्या कही, इस प्रकार नक्षत्र संख्या पिण्ड ४८९६ होता है ॥ ११२६ ॥

सिंह, धनुष, कुम्भ में ९० संख्या, कर्क मे १२१, संख्या होती है ॥ ११२७ ॥

और शेष मेषादिक राशियों की १०५ संख्या, सब को मिला कर १२३१ संख्या पिण्ड होता है ॥ ११२८ ॥

---

1. प्रदर्शिता for प्रकीर्तिता A.

चन्द्रे बुधे कुजः षष्टिः पञ्चत्रिंशच्छतं रविः[1] ॥ ११२९ ॥
गुरुश्च पञ्च पञ्चाशत् शुक्रोऽपि पञ्चसप्ततिः ।
पञ्चषष्टिः शनिर्वाच्यो राहुर्नवतिसंख्यकः ॥ ११३० ॥
ष शतान्यत्र जायन्ते ग्रहाः सर्वेऽपि पिण्डिताः ।
ग्रहनक्षत्रराशीनां संख्यां संकल्य[2] चैकतः ॥११३१ ॥
गुणितं ग्रहसंख्येन स्थाप्यं राशिद्वयं पृथक् ।
अधोराशेस्ततो भागं गृह्णीयाच्चैत्रजाघतः ॥ ११३२ ॥
यत्तत्र जायते लब्धं भसंख्यां तत्र निक्षिपेत् ।
मेलयित्वा[3] च तां संख्यां भागं गृह्णीत तत्क्षणात् ॥ ११३३ ॥
उपरिभे[4] धृते राशौ सम्यगङ्कप्रवर्तनैः[5] ।
यत्तत्र च भवेल्लब्धं संस्थाप्यं तदुपर्यधः ॥११३४॥
ग्रहाङ्कैर्भाजितैर्लब्धमुपरि पूर्ववत् क्षिपेत् ।
न्यस्ते च जायते योऽङ्कस्तावत्यः सेतिका मिताः ॥११३५ ॥

प्रत्येक ग्रहों की संख्या को मैं कहता हूँ, चन्द्रमा, बुध, मंगल, इन ग्रहों की ६० संख्या, और रवि की १३५. संख्या होती है ॥११२६॥

गुरु की ५५ संख्या, और शुक्र की ७५, शनि की ६५, तथा राहु की ६० संख्या होती है ॥ ११३० ॥

इन ग्रहों की संख्या को एकत्र कर ६०० पिण्ड होता है, ग्रह, नक्षत्र, राशि, इन को संख्या को एक जगह इकट्ठा करके ॥ ११३१ ॥

उसको ग्रह की संख्या से गुणन कर पृथक् २ दो जगह स्थापित करें, उस मे से आधी राशि को चैत्रजार्घ से भाग देवें ॥ ११३२ ॥

जो लब्धि हो उस में नक्षत्र की संख्या को जोर देवें । उस भाग को लेकर ऊपर स्थापित अङ्क मे मिला कर जो हो उसको ऊपर में उस से नीचे स्थापित करें ॥ ११३३-११३४ ॥

उस को ग्रह की संख्या से भाग देवें लब्धि जो हो उस को पूर्ववत् भ संख्या में क्षेप करके न्यास करने पर जो अंक आवे उतने ही सेतिका का प्रमाण होता है ॥ ११३५ ॥

1· पञ्चत्रिंशत्तमा Bh. 2. संमील्य for संकल्य A. 3 मीलयित्वा for मेलयित्वा A. 4. उपरि मिते for उपरिभे Bh. 5. सम्यगेक प्रवर्तनैः A.

चतुर्भक्ते ततो जाताः माणकाः कणसंग्रहे[1] ।
घृते धान्ये तिले तैले[2] दृष्टि[3]भाण्डे सुगन्धिकम् ॥ ११३६ ॥
अनेनैव क्रमेणात्र सर्वेषामर्घनिश्चयः ।
त्रिगुणश्च भवेदर्घोऽप्युच्चैर्वक्रे च खेचरे ॥ ११३७ ॥
गेहे मित्रे स्वके चांशे द्विगुणोऽर्घो[4] ध्रुवं मतः ।
शनौ नीचे तथा पापे तदंशेऽपि ग्रहे सति ॥ ११३८ ।

लब्धार्घस्य बुधैर्हेयं चार्द्धमर्घ[5]परीक्षणे ।
शेषेषु च यथासंख्यं तथैवार्घं[6] विनिर्दिशेत् ॥ ११३९ ॥
क्षयवृद्धिद्वयं कृत्वा ऽर्घं न्यस्य स्थानयोर्द्वयोः ।
चतुर्युग्मे चतुर्भागं लब्धं क्षिपेत्तथोपरि ॥ ११४० ॥

उस को चार से भाग देवें तो कण संग्रह में, घृत, धान्य, तिल, तैल, भाण्ड, सुगन्धित द्रव्य, इत्यादि का परिमाण हो जायगा ॥११३६॥

इस क्रम से सब का अर्घ निश्चय होता है, यदि ग्रह उच्च का हो वक्री हो तो अर्घ त्रिगुण होता है ॥ ११३७ ॥

यदि मित्र के घर में या अपने घर में वा मित्र तथा अपनी नवमांश ग्रह हो तो द्विगुण अर्घ होता है।

यदि शनि तथा अन्य पापग्रह नीच में हो या उसके अंश में हो या शत्रु आदि के घर में हो तो पंडित लोग लब्धार्घ में आधा घटा देवें। इस प्रकार शेष का भी यथा संख्या पर से अर्घ का निश्चय करें ॥११३८-११३९॥

इस प्रकार क्षय वृद्धि करके दो स्थानों में अर्घ को स्थापित करें और उसको चार से भाग देकर लब्धि को ऊपर में फिर क्षेप करें ॥११४०॥

1. गण for कण Bh. 2. चैव for तैले Bh. 3. दृष्टे for दृष्टि Bh. 4. ०र्घो for ०र्घो Bh. 5. मघ० for ०मर्घ Bh. 6. ०र्थार्थ for ०र्थार्घ Bh.

मरण्यादिचतुष्कं च आर्द्रादिषु चतुष्टयम् ।
मेघाद्याः पञ्चधिष्ण्यास्तु स्वातित्रिकेन्द्रपञ्चकम् ॥११४१ ॥

धनिष्ठाद्यं ततः षट्कं चैवं भसप्तविंशतिः ।
पञ्चवेदेन भागोऽपि गृह्यतेऽधमराशितः ॥ ११४२ ॥

यत्तत्रापि पुनर्लब्धं राशिस्तु शोध्यते ततः ।
त्रिषट्केन च गृह्णीत तिस्रः संख्यास्त्वधाधमे ॥ ११४३ ॥

गृहीत्वा तु पुनर्लब्धं राशावुपरि भे न्यसेत् ।
उदयास्तमने वक्रे ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ ११४४ ॥

ग्रहयुद्धे राशिसंक्रान्तौ कणार्घ[1]स्त्वेव[2] जायते ।
आदित्येनात्र पूर्णार्घः स्वदेशे चैव लभ्यते ॥ ११४५ ॥

चन्द्रेण तु परे देशे शुक्रेणापि स्वमण्डले ।
पूर्वेणास्तमितः शुक्रः पश्चिमस्यामुदेति चेत् ॥ ११४६ ॥

भरणी आदि के चार नक्षत्र, तथा आर्द्रा आदि के चार, मघा आदि के पांच नक्षत्र, स्वाती आदि के तीन, ज्येष्ठा आदि के पांच नक्षत्र ॥११४१॥

धनिष्ठा आदि के छः नक्षत्र इस प्रकार सत्ताईस नक्षत्र हुए, पांच चार का अधम राशि से भाग लेने पर जो वहां लब्ध हो उस राशि को घटा देते हैं, फिर तीन छः से भाग लेने पर तीन संख्या अधमाधम राशि में ग्रहण करते हैं ॥११४२-११४३॥

उस लब्ध राशि को ऊपर के नक्षत्र में न्यास करें, ग्रहों के उदय अस्त, तथा वक्र में और चन्द्र सूर्य का ग्रहण में ॥११४४॥

ग्रह युद्ध से राशि संक्रान्ति में यह कणार्घ होता है, सूर्य से स्वदेश में ही पूर्णार्घ लाभ होता है ॥१०४५॥

चन्द्रमा से अन्य देश में और शुक्र से भी अपने देश में, यदि पूर्व में अस्त होकर पश्चिम में उदित हो तो ॥११४६॥

1. कणार्घ० for कणार्घ Bh. 2. ०षु for ०ष Bh.

स्वातित्रिके निजं भागं शोधयत्यर्घपद्धतौ ।
अस्तमितः प्रतीच्यां चेदुदेति पूर्वतः पुनः ११४७ ॥

तदा पञ्चसु ज्येष्ठादौ पञ्चमं भागकं क्षिपेत् ।
यावन्तो ग्रहयोगास्ते तावत्संख्याः पृथक् पृथक् ।
गुणाकारो भवेत्तावान् भागाहारोऽपि तादृशः ॥ ११४८ ॥

इत्यर्घकाण्डम्

उदिताद्या ग्रहा यत्र धिष्ण्ये तिष्ठन्ति संस्थिताः ।
तन्नक्षत्रतद्राशेश्च संख्यां संमील्य तावतीम् ॥ ११४९ ॥

हन्तव्या तद्ग्रहेणैव द्विस्थं राशिं ततः कुरु ।
द्विस्थस्याधः स्थितं राशिं चैत्रार्घेण[1] तु तं[2] भजेत् ॥ ११५० ॥

यल्लब्धं तेन खेटेन त्वेकीकृत्यापि मूलके ।
पिण्डे भागस्तु हर्तव्यो लब्धमर्घस्ततो भवेत् ॥ ११५१ ॥

स्वाती त्रिक नक्षत्र में अपने भाग को घटायें, यदि पश्चिम में अस्त होकर पूर्व में उदित हो तो ज्येष्ठा आदि के पांच नक्षत्र में पञ्चम भाग को क्षेप करें ।

जितने संख्यक ग्रह योग हों उतने संख्यक पृथक पृथक् गुणक या भागहार भी होते हैं ॥११४७-११४८ ॥

इत्यर्घकाण्डम्

उदितादि ग्रह जिस राशि और नक्षत्र में हों उस राशि नक्षत्र की संख्या को एकत्र करें ॥११४९॥

उसको उस ग्रह की संख्या से गुणा कर दो जगह स्थापित करें उसमें अधःस्थित राशि को चैत्रार्घ से भाग देवें ॥११५०॥

जो लब्ध हो उसमें ग्रह को मिलाकर फिर पिण्ड में भाग दें तो लब्ध अर्घ होगा ॥११५१॥

1. चैत्रार्घेण for चैत्रार्घेण Bh. 2. तां for तं Bh.

ये लब्धा सितिकाः[1] शेषं चतुर्गुण्यं हृतं ततः ।
तेनैव पूर्वभागेन भक्तेन माणकाः[2] पुनः ॥ ११५२ ॥

यच्छेषं तच्चतुर्गुण्यं तेन भागेन पल्लिका ।
ततोऽपि मूललब्धार्घं द्विधा कृत्वा पुनर्भजेत् ॥ ११५३ ॥

त्रिकवेदशराश्चैव लब्धमुपरि[3] भे क्षिपेत् ।
तल्लब्धं सेतिकामध्ये वक्रश्चेत् त्रिगुणं क्षिपेत् ॥ ११५४ ॥

स्वगेहे[4] मित्रगेहे[5] च द्विगुणमेव विन्यसेत् ।
शत्रौ पापे च नीचे च लब्धार्घं तत्र पातयेत् ॥ ११५५ ॥

संगुण्यभागकैः शेषं लब्धं च माणकास्ततः ।
श्रीमद्धेमप्रभेणैवं वर्तिनी दर्शिता स्वयम् ॥ ११५६ ॥
श्रीमद्देवेन्द्रशिष्यश्रीहेमप्रभसूरिविरचितमर्घकाण्डम् ।

लब्ध सेतिका हुआ शेष को चार से गुणा कर उसी पूर्व के भाजक से भाग दे तो माणक हो जायगा ॥११५२॥

तब जो शेष बचे उसको चार से गुणा कर उसी से फिर भाग दे तो पल्लिका होगी, तो भी मूल लब्धार्घ को दो जगह स्थापित करके फिर उस भाजक से भाग दें तीन, चार, पांच लब्ध के उपर के नक्षत्रों जोड़ दें. तब जो लब्ध हो वह सेतिका में यदि वक्र हो तो त्रिगुणित क्षेप करें ॥११५३-११५४॥

यदि अपने घर में या मित्र के घर में हो तो द्विगुणा न्यास करें और शत्रु या पाप के घर में या नीच में हो तो लब्धार्घ में आधा घटा देवें ॥११५५॥

उसको चार से गुणा कर भाजक से भाग देवें तो माणक होता है यह प्रकार श्रीमान् हेमप्रभसूरि ने स्वयं दिखलाया है ॥११५६॥

इति श्री महेन्द्र शिष्य श्रीहेमप्रभसूरिविरचितमर्घकाण्डम् ।

1. सेतिकाः for सितिकाः Bh. 2. भक्तेन बलकाः for भक्तेन माणकाः Bh. 3. लब्धस्वपरिनि for लब्धमुपरि भे Bh. 4 पर for मित्र Bh. 5. द्विगुणेनैव for द्विगुणमेव A.

घने चक्रं यदा खेटाः कुर्वन्ति मिलिता घनाः ।
तदा धान्यमहर्घं स्यात्सर्वं पण्यौघमध्यतः ॥११५७॥
रणे वक्रं यदा यान्ति सर्वेऽपि मिलिता ग्रहाः ।
तदा धान्यं समर्घं स्यात् जायते भुवि वै मतम् ॥११५८॥
अपात्रदानतोऽपुण्यं पुण्यं सत्पात्रदानतः ।
इत्यपात्रे न दातव्यमर्घकाण्डमहोदयम् ॥११५९॥
प्रतिमास्वल्पदेवानां यावन्तः परिमाणवः ॥
तावद्युगसहस्राणि कर्तुर्भोगभुजः फलम् ॥११६०॥

इति त्रैलोक्यप्रकाशो ग्रन्थः समाप्तः ॥

यदि घन में सब ग्रह मिलकर एकत्रित हो जाय तो सब धान्य महर्घ होता है ॥११५७॥

यदि रण में सब ग्रह मिलकर वक्री हो जाय तो पृथ्वी पर सब धान्य महर्घ होता है ॥११५८॥

अपात्र को दान देने से पाप होता है और सत्पात्र को दान देने से पुण्य होता है, इसलिये अपात्र को महान उदयवाला अर्घ काण्ड नहीं देना चाहिये ॥११५६॥

सब देवताओं की जितनी मूर्तियां है उतने सहस्र महायुग पर्यन्त महान् सुख को भोग करने के लिये पात्र को यह देना चाहिये ॥११६०॥

इति त्रैलोक्यप्रकाशो ग्रन्थः समाप्तः ।